हिन्दी के आराधक

रामेश्वर दयाल दुबे

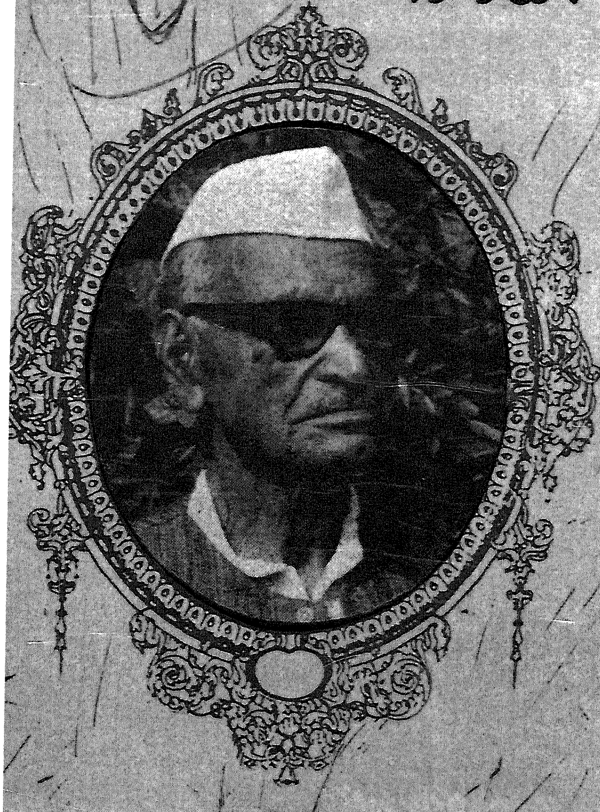

गौरव ग्रंथ

भारत जननी एक हृदय हो

८१०.९२
त्रिभु|हि

A5

B5

हिन्दुस्तानी एकेडेमी पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या ८१०.९२
पुस्तक संख्या त्रिपाठी/हि
क्रम संख्या ६६५३

167

हिन्दी के आराधक
रामेश्वर दयाल दुबे
गौरव ग्रंथ

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक

डा० त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'

सम्पादकगण

राम अवधेश त्रिपाठी — द्वारका दास वेद

कान्तिलाल जोशी — शिव शंकर मिश्र

डा० राम प्रसाद त्रिवेदी — डा० गोपाल नारायण श्रीवास्तव

प्रकाशन समिति :

डा० त्रिभुवन नाथ शर्मा

श्री राम अवधेश त्रिपाठी

श्री शिवशंकर मिश्र

श्री बैजनाथ प्रसाद शुक्ल 'भव्य'

प्रथम संस्करण

वर्ष १९९२

मूल्य : १००-००

मुद्रक :

अल्पना प्रिन्टिग प्रेस

सत्य प्रेमीनगर

बाराबंकी (उ० प्र०)

हिन्दी के आराधक

रामेश्वर दयाल दुबे

गौरव ग्रंथ

रामेश्वर दयाल दुबे

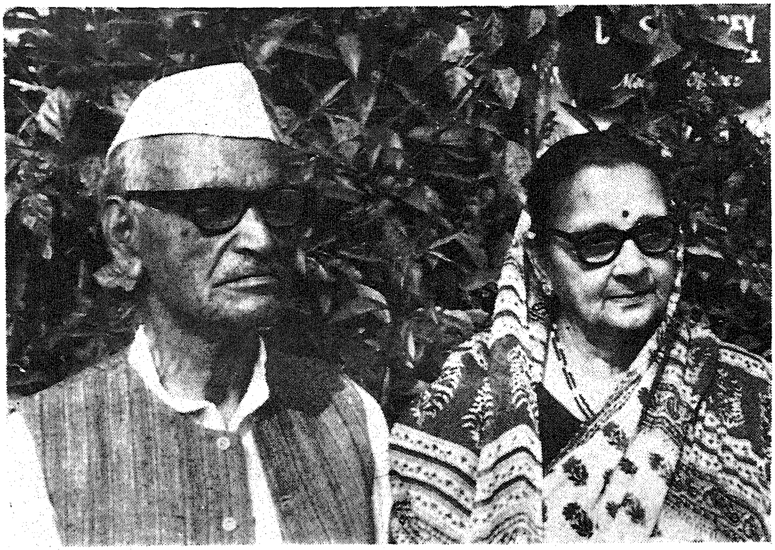

पत्नी शीलादेवी दुबे के साथ

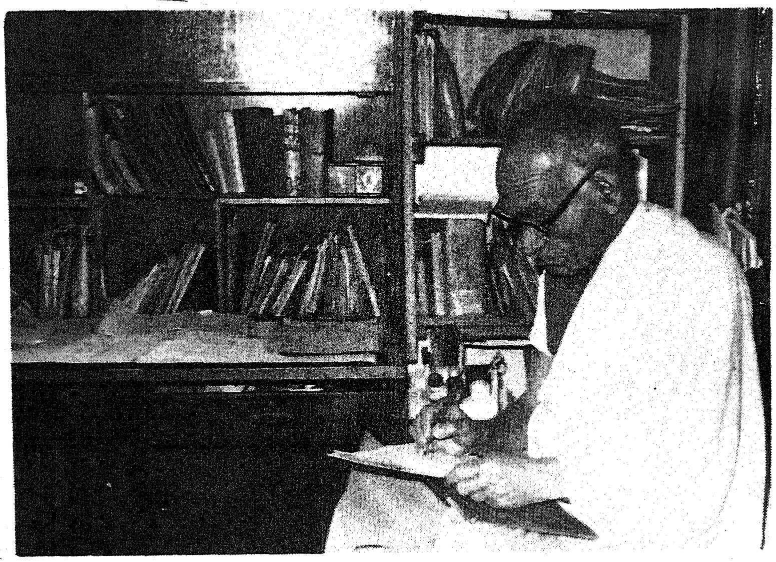

अध्ययन कक्ष में

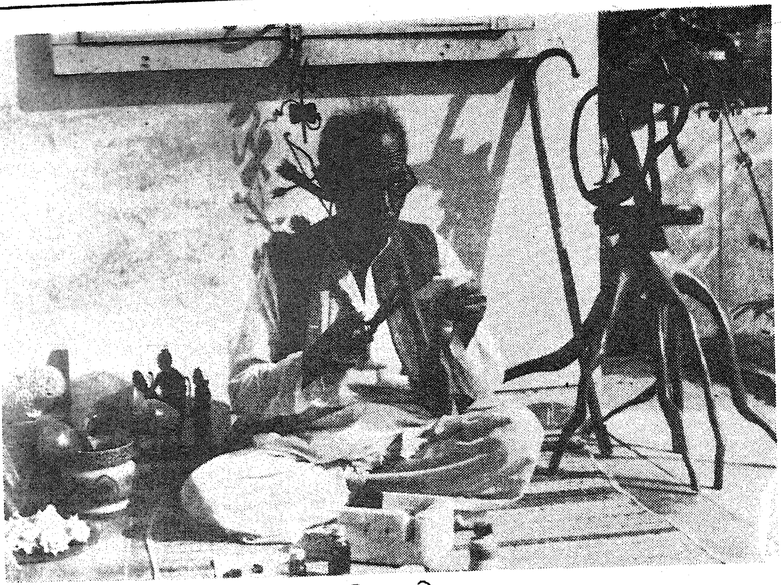

कला कृतिया बनाते हुये

गृहवाटिका मे काम करते हुये

बाल प्रेमी दुबेजी

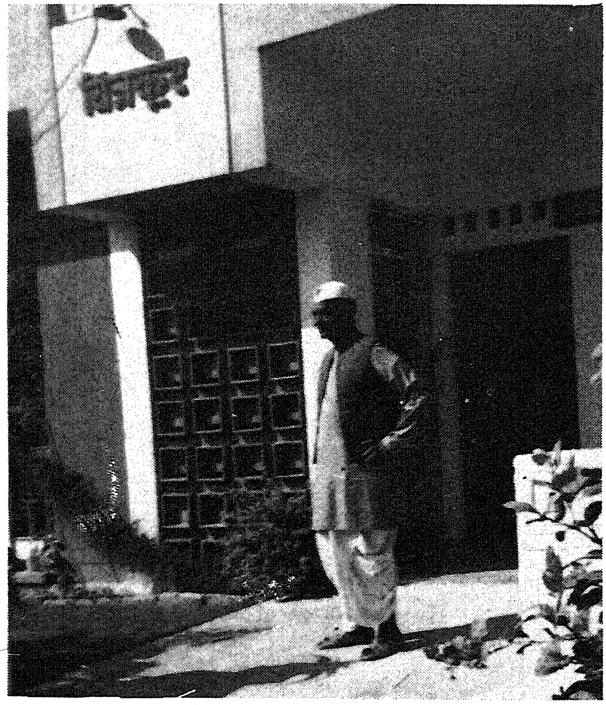

निवासस्थान
"चित्रकूट"
लखनऊ.

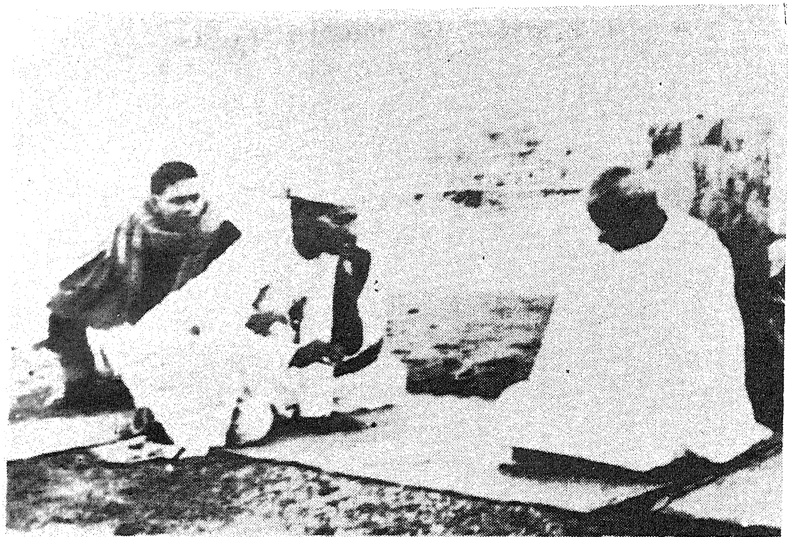

गांधाजी से बात करते हुये दुबेजी

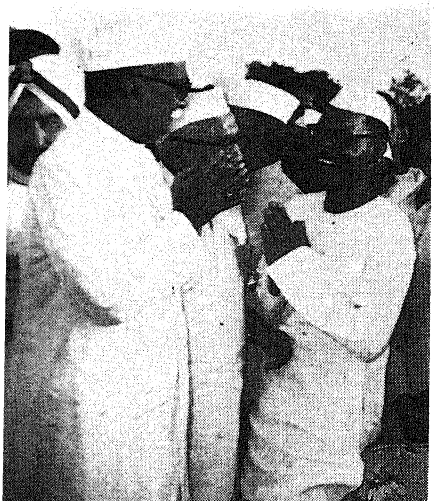

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद
के साथ दुबेजी

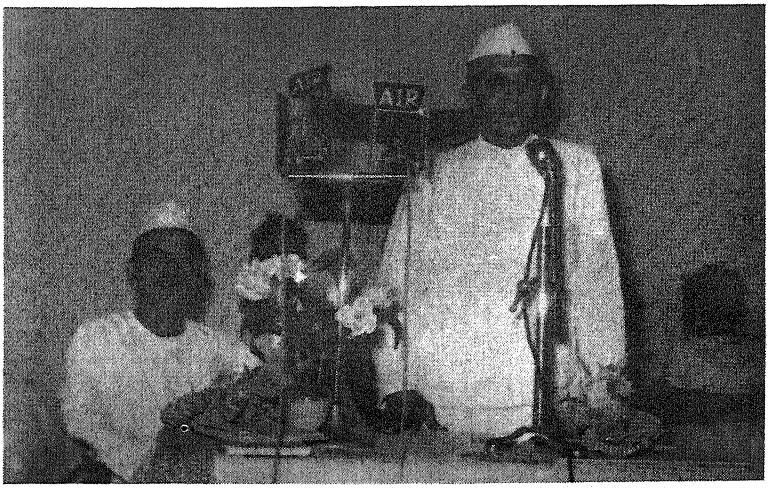

गोवा में मोरारजी देसाई के साथ...

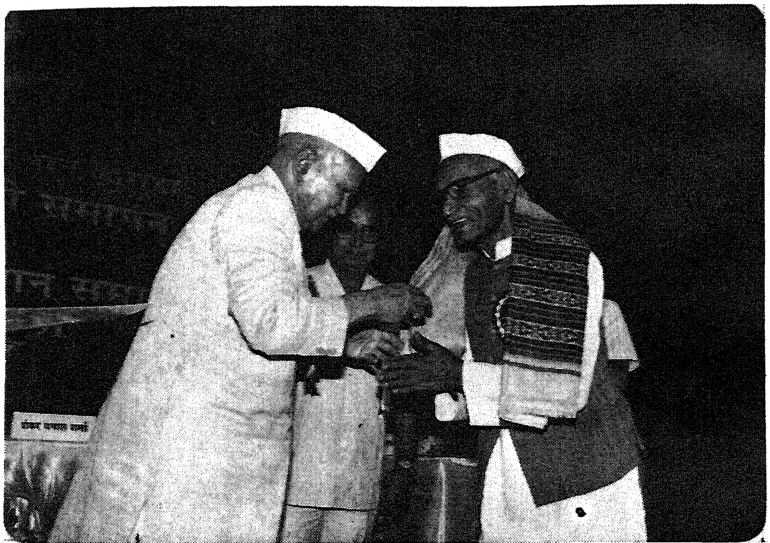

उपराष्ट्रपति हिन्दी गीत-लेखक का सम्मान करते हुये

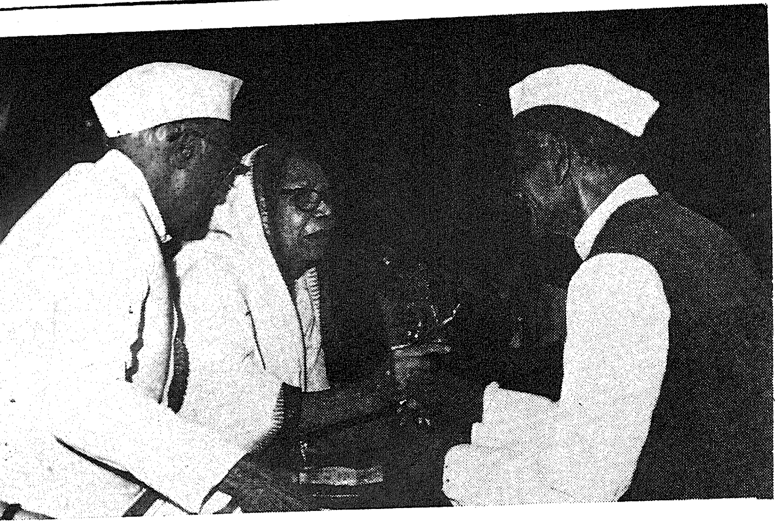

तृतीय विश्व हिन्दी संम्मेलन में
महादेवीजी सम्मान करती हुई

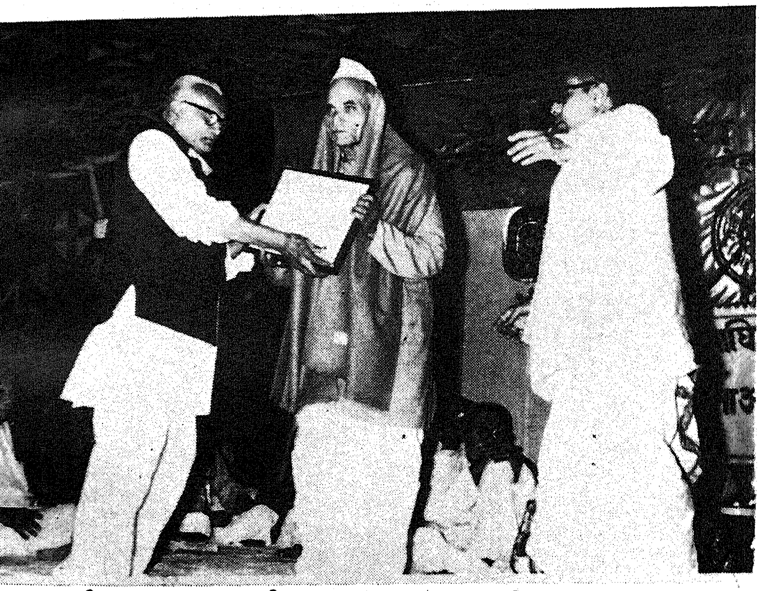

हित्य महोपाध्याय' उपाधी प्रदान करतें हुयें संम्मेलन अध्यक्ष

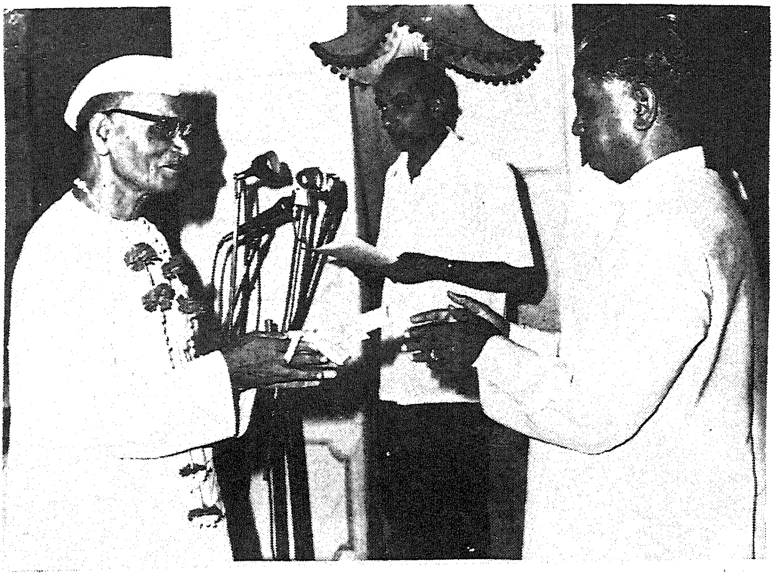

राज्यपाल चन्नारेड्डी
खंडकाव्य का सम्मान
करते हुये

मुख्यमंत्री कल्याणसिंह
बाल साहित्य भारती
पुरस्कार देते हुये

सम्पादकीय

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार - प्रसार कार्य में जिन शीर्षस्थ व्यक्तियों का य योगदान रहा है उनमें श्री रामेश्वर दयाल दुबे एक प्रमुख व्यक्ति लगभग ५५ वर्ष पहले सन् १९३७ में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की से हिन्दी - प्रचार के लिए वर्धा (महाराष्ट्र) पहुँचे थे, जहाँ अनेक वर्षों ाष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, आचार्य विनोबा भावे, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, काका कालेलकर आदि विशिष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य उन्हें हुआ । दुबेजी ने उनसे बहुत कुछ सीखा और उसे अपने जीवन में उतारा । ामस्वरूप उनके जीवन में सहजता, सरलता, सहृदयता और उदात्तता देखी कती है । इसी कारण हम सबके लिए वे अभिनन्दनीय हैं ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में सहायक मन्त्री और परीक्षा मन्त्री के र को उन्होंने पूरी निष्ठा एवं योग्यता के साथ ४० वर्ष तक निभाया । ा की आराधना और अपनी सहृदयता के बल पर उन्होंने सम्पूर्ण भारत के कुछ अन्य देशों के भी हिन्दी सेवियों, विशेषत: हिन्दी प्रचारकों के दिलों में ा स्थान बना लेने में सफलता प्राप्त की है ।

दुबेजी ने हिन्दी का प्रचार कार्य तो किया ही है, अपनी साहित्य साधना ारा श्रेष्ठ कवि, समर्थ लेखक, कुशल सम्पादक, नाटककार, बाल साहित्य ाकार, अनुवादक के रूप में भी वे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में जुटे रहे फलत: उन्होंने बहुचर्चित ख्याति अर्जित की है । उनकी संवेदनशीलता और ाई सरलता की सर्वत्र सराहना होती रहती है । इसी का परिणाम है कि ो अनेक कृतियाँ विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान पाकर दृत हो चुकी हैं । इनके प्रशंसनीय साहित्यिक योगदान के लिए हिन्दी जगत ा ऋणी रहा है और रहेगा ।

८५ वर्षीय दुबेजी की अनवरत चलती चली जा रही सुन्दर साधना हम के लिए प्रोत्साहन का प्रतीक बनी हुई है । लोकमंगल की भावना से मंडित हित्य के प्रणेता श्री दुबेजी हमारे लिए श्रद्धा के पात्र हैं ।

श्री दुबेजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व हिन्दी जगत में परिचित : अपरिचित सबके समक्ष उभरकर सामने आ जाय — यह वांछनीय था ही । बरेली निवासी साहित्यकार प्रिय बन्धु श्री चक्रधर नलिन ने कुछ वर्ष पहले जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित एक गौरव ग्रंथ प्रकाशित करने की ाना बनाई थी । अनेक व्यक्तियों और साहित्यकारों से पत्र - व्यवहार कर के लेख प्राप्त किए थे, परन्तु कुछ कारणों से उनकी यह योजना मूर्तरूप न पा सकी थी ।

पिछले अनेक वर्षों से मैं दुबेजी के निकट सम्पर्क में रहा हूँ । अस्तु, इस पुनीत कार्य को सम्पन्न करने की दिशा में मैं स्वयं सक्रिय हो उठा । भाई नलिन जी द्वारा एकत्र की गई सम्पूर्ण सामग्री प्राप्त की । उनके प्रारम्भिक श्रम का जो लाभ मुझे प्राप्त हुआ, उसके लिए उनका हृदय से आभारी हूँ ।

सौभाग्य से इसी बीच मेरा परिचय एक ऐसे सज्जन से हुआ जिनके दर्शन से ही मैं अभिभूत हो गया था । दुबेजी से उनका सम्बन्ध बहुत पुराना है । यह हैं — अहमदाबाद निवासी, हिन्दी - भक्त, साहित्य - सेवी श्री रामअवधेश जी त्रिपाठी । यह बराबर दुबेजी के सम्पर्क में रहे हैं । त्रिपाठी जी के रूप में मुझे एक अत्यन्त अनुभवी तथा उत्साही सहयोगी मिल गये । उनके परामर्श से ही हमने एक निवेदक समिति बना डाली, जिसका उद्देश्य ग्रन्थ के प्रकाशन - हेतु धन - संग्रह करना तथा दुबेजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व सम्बन्धी सामग्री के अतिरिक्त उनके साथियों, सहकर्मियों की सम्मतियाँ एकत्र करना था । श्री त्रिपाठी जी के साथ ही मेरी पत्नी श्रीमती कान्ति शर्मा ने अपने स्वभावानुसार प्रति पल मुझे प्रेरणा - शक्ति - सहयोग प्रदान किया है, जिससे मेरा रोम-रोम आह्लादित है ।

"ते ते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर" का ध्यान रखते हुए विस्तृत सम्मतियों को संक्षिप्त रूप दे दिया गया है और अधिक लम्बे लेखों को छोटा करना पड़ा, जिसके लिए हम अपने विचारवान-मनीषी-लेखकों से क्षमा प्रार्थी हैं ।

इस महत्वपूर्ण कृति को चार भागों में विभक्त कर दिया गया है । (१) जीवन - परिचय (२) हिन्दी - सेवा (३) साहित्य - साधना (४) शुभ - कामनाएँ (इसके अन्तर्गत स्नेह - सम्मति और सम्मान का समावेश है) परिशिष्ट में आर्थिक सहयोगियों के नाम - पते तथा उनकी सहयोग - राशि की सूची प्रस्तुत कर दी गई है ।

श्री दुबेजी के सम्बन्ध में अधिकृत जानकारी देने में यह गौरव ग्रन्थ अधिक सहायक सिद्ध होगा । शोध छात्रों के लिए तो यह एक मूल्यवान सन्दर्भ ग्रन्थ है । विज्ञ पाठकों तथा सुधी समीक्षकों का अभिमत प्राप्त होगा, ऐसा विश्वास है ।

मेरी अधिक अस्वस्थता के कारण, एक विशिष्ट सहयोगी की सलाह पर ग्रंथ के मुद्रण का काम लखनऊ की एक प्रेस को दिया गया, जहाँ कई महीने के अन्तराल से प्रारम्भ के बत्तीस पृष्ठ ही जैसे - तैसे छप सके । दुःखी होकर पाण्डुलिपि को वापस मँगवा लिया और पूर्ण स्वस्थ हो जाने के बाद ही हमने अपने यहाँ की प्रेस में इसके मुद्रण का कार्य करवाकर सम्पन्नता दिलवाई । ग्रंथ के प्रकाशन में अधिक विलम्ब का प्रमुख कारण यही है ।

मधु - निवास
बाराबंकी (उ०प्र०)

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'
१५–३–१९९२

अनुक्रम

न परिचय

	जीवन परिचय	डॉ० गोपाल नारायण श्रीवास्तव	३
	मेरे रमेश भाई	शालिग्राम शर्मा	१३
	मेरे मास्टर साहब	बिमल टंडन	१६
	मेरे गुरू जी	डॉ० मदन मोहन शर्मा	१९
	दुबेजी घर में	शीला देवी दुबे	२२
	दुबेजी का घर - संसार	नर्मदा शंकर पांडेय	२९
	मेरे शुभ चिन्तक : दुबेजी	डॉ० त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'	३६
	दुबेजी - एक संस्था	रामअवधेश त्रिपाठी	३८
	पं० रामेश्वर दयाल दुबे - अभिव्यक्ति के विविध रूप	शिवशंकर मिश्र	४१
	श्री रामेश्वर दयाल दुबे : बहुआयामी व्यक्तित्व	डॉ० शीलम वेंकटेश्वर राव	४४

दी सेवा

	समिति के पर्याय : दुबेजी	डॉ० जी० एन० श्रीवास्तव	४७
	अत्यन्त लोकप्रिय परीक्षा मंत्री	मोहनलाल भट्ट	५४
	चुम्बकत्वशील व्यक्तित्व : रामेश्वर दयाल दुबे	द्वारकादास वेद	५८
	समिति के सजग प्रहरी	श्रीमती मदालसा नारायण	५९
	कर्मरत जीवन के प्रतीक	रामकृष्ण बजाज	६१
	कुछ शब्द : दुबेजी के सम्बंध में	रसूल अहमद 'अबोध'	६३
७	सहजता के प्रतीक : रामेश्वर दयाल दुबे	डॉ० गिरिजाशंकर त्रिवेदी	६५
८	हिं० सा० सम्मेलन में १४ माह	हरिमोहन मालवीय	६७
९	हिन्दी प्रचार - प्रसार के स्तम्भ	डॉ० मो० दि० पराड़कर	७०
०	श्री रामेश्वर दयाल दुबे	विष्णु प्रभाकर	७१
१	ऋषि जीवन की झलकियाँ	डॉ० डी० शंकर	७३
२	रामेश्वर दयाल दुबे - एक योगी	भूपसिंह गुप्त	७६
३	मेरे मित्र : दुबेजी	उमाशंकर शुक्ल	७८
४	व्यक्तित्व की एक झाँकी : दुबेजी	नागा शास्त्री नागप्पा	८०
५	अनन्य हिन्दी सेवी : दुबेजी	पी० नारायण	८३

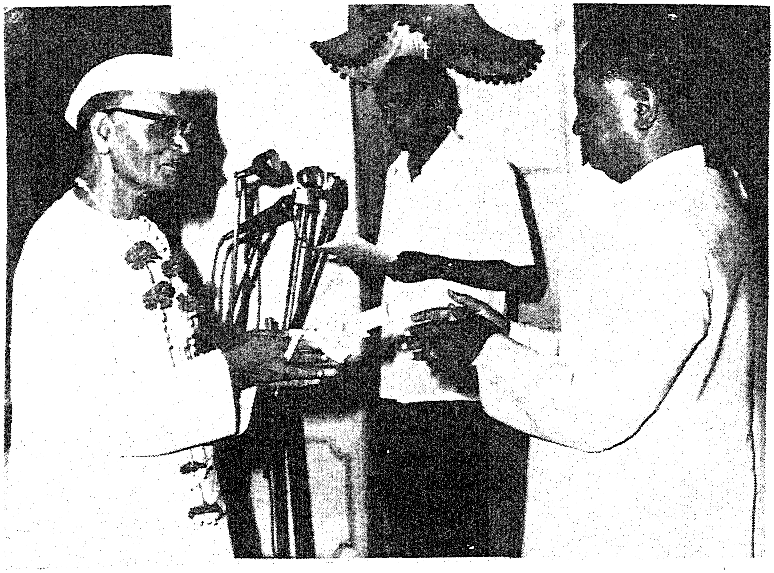

राज्यपाल चन्नारेड्डी खंडकाव्य का सम्मान करते हुये

मुख्यमंत्री कल्याणसिंह, बाल साहित्य भारती पुरस्कार देते हुये

सम्पादकीय

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार कार्य में जिन शीर्षस्थ व्यक्तियों का स्मरणीय योगदान रहा है उनमें श्री रामेश्वर दयाल दुबे एक प्रमुख व्यक्ति हैं। लगभग ५५ वर्ष पहले सन् १९३७ में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की प्रेरणा से हिन्दी-प्रचार के लिए वर्धा (महाराष्ट्र) पहुँचे थे, जहाँ अनेक वर्षों तक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा भावे, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, काका साहेब कालेलकर आदि विशिष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। दुबेजी ने उनसे बहुत कुछ सीखा और उसे अपने जीवन में उतारा। परिणामस्वरूप उनके जीवन में सहजता, सरलता, सहृदयता और उदात्तता देखी जा सकती है। इसी कारण हम सबके लिए वे अभिनन्दनीय हैं।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में सहायक मन्त्री और परीक्षा मन्त्री के पदभार को उन्होंने पूरी निष्ठा एवं योग्यता के साथ ४० वर्ष तक निभाया। हिन्दी की आराधना और अपनी सहृदयता के बल पर उन्होंने सम्पूर्ण भारत के तथा कुछ अन्य देशों के भी हिन्दी सेवियों, विशेषत: हिन्दी प्रचारकों के दिलों में अपना स्थान बना लेने में सफलता प्राप्त की है।

दुबेजी ने हिन्दी का प्रचार कार्य तो किया ही है, अपनी साहित्य साधना के द्वारा श्रेष्ठ कवि, समर्थ लेखक, कुशल सम्पादक, नाटककार, बाल साहित्य रचनाकार, अनुवादक के रूप में भी वे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में जुटे रहे हैं। फलत: उन्होंने बहुचर्चित ख्याति अर्जित की है। उनकी संवेदनशीलता और भाषाई सरलता की सर्वत्र सराहना होती रहती है। इसी का परिणाम है कि इनकी अनेक कृतियाँ विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान पाकर समादृत हो चुकी हैं। इनके प्रशंसनीय साहित्यिक योगदान के लिए हिन्दी जगत सदैव ऋणी रहा है और रहेगा।

८५ वर्षीय दुबेजी की अनवरत चलती चली जा रही सुन्दर साधना हम सबके लिए प्रोत्साहन का प्रतीक बनी हुई है। लोकमंगल की भावना से मंडित साहित्य के प्रणेता श्री दुबेजी हमारे लिए श्रद्धा के पात्र हैं।

श्री दुबेजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व हिन्दी जगत में परिचित और अपरिचित सबके समक्ष उभरकर सामने आ जाय — यह वांछनीय था ही। रायबरेली निवासी साहित्यकार प्रिय बन्धु श्री चक्रधर नलिन ने कुछ वर्ष पहले दुबेजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित एक गौरव ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना बनाई थी। अनेक व्यक्तियों और साहित्यकारों से पत्र-व्यवहार कर के लेख भी प्राप्त किए थे, परन्तु कुछ कारणों से उनकी यह योजना मूर्तरूप न पा सकी थी।

पिछले अनेक वर्षों से मैं दुबेजी के निकट सम्पर्क में रहा हूँ। अस्तु, इस पुनीत कार्य को सम्पन्न करने की दिशा में मैं स्वयं सक्रिय हो उठा। भाई नलिन जी द्वारा एकत्र की गई सम्पूर्ण सामग्री प्राप्त की। उनके प्रारम्भिक श्रम का जो लाभ मुझे प्राप्त हुआ, उसके लिए उनका हृदय से आभारी हूँ।

सौभाग्य से इसी बीच मेरा परिचय एक ऐसे सज्जन से हुआ जिनके दर्शन से ही मैं अभिभूत हो गया था। दुबेजी से उनका सम्बन्ध बहुत पुराना है। यह हैं — अहमदाबाद निवासी, हिन्दी-भक्त, साहित्य-सेवी श्री रामअवधेश जी त्रिपाठी। यह बराबर दुबेजी के सम्पर्क में रहे हैं। त्रिपाठी जी के रूप में मुझे एक अत्यन्त अनुभवी तथा उत्साही सहयोगी मिल गये। उनके परामर्श से ही हमने एक निवेदक समिति बना डाली, जिसका उद्देश्य ग्रन्थ के प्रकाशन-हेतु धन-संग्रह करना तथा दुबेजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व सम्बन्धी सामग्री के अतिरिक्त उनके साथियों, सहकर्मियों की सम्मतियाँ एकत्र करना था। श्री त्रिपाठी जी के साथ ही मेरी पत्नी श्रीमती कान्ति शर्मा ने अपने स्वभावानुसार प्रति पल मुझे प्रेरणा-शक्ति-सहयोग प्रदान किया है, जिससे मेरा रोम-रोम आह्लादित है।

"ते ते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर" का ध्यान रखते हुए विस्तृत सम्मतियों को संक्षिप्त रूप दे दिया गया है और अधिक लम्बे लेखों को छोटा करना पड़ा, जिसके लिए हम अपने विचारवान-मनीषी-लेखकों से क्षमा प्रार्थी हैं।

इस महत्वपूर्ण कृति को चार भागों में विभक्त कर दिया गया है। (१) जीवन-परिचय (२) हिन्दी-सेवा (३) साहित्य-साधना (४) शुभ-कामनाएँ (इसके अन्तर्गत स्नेह-सम्मति और सम्मान का समावेश है) परिशिष्ट में आर्थिक सहयोगियों के नाम-पते तथा उनकी सहयोग-राशि की सूची प्रस्तुत कर दी गई है।

श्री दुबेजी के सम्बन्ध में अधिकृत जानकारी देने में यह गौरव ग्रन्थ अधिक सहायक सिद्ध होगा। शोध छात्रों के लिए तो यह एक मूल्यवान सन्दर्भ ग्रन्थ है। विज्ञ पाठकों तथा सुधी समीक्षकों का अभिमत प्राप्त होगा, ऐसा विश्वास है।

मेरी अधिक अस्वस्थता के कारण, एक विशिष्ट सहयोगी की सलाह पर ग्रंथ के मुद्रण का काम लखनऊ की एक प्रेस को दिया गया, जहाँ कई महीने के अन्तराल से प्रारम्भ के बत्तीस पृष्ठ ही जैसे-तैसे छप सके। दुःखी होकर पाण्डुलिपि को वापस मँगवा लिया और पूर्ण स्वस्थ हो जाने के बाद ही हमने अपने यहाँ की प्रेस में इसके मुद्रण का कार्य करवाकर सम्पन्नता दिलवाई। ग्रंथ के प्रकाशन में अधिक विलम्ब का प्रमुख कारण यही है।

मधु-निवास
बाराबंकी (उ०प्र०)

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'
१५-३-१९९२

अनुक्रम

ान परिचय			
	जीवन परिचय	डॉ० गोपाल नारायण श्रीवास्तव	३
	मेरे रमेश भाई	शालिग्राम शर्मा	१३
	मेरे मास्टर साहब	विमल टंडन	१६
	मेरे गुरू जी	डॉ० मदन मोहन शर्मा	१९
	दुबेजी घर में	शीला देवी दुबे	२२
	दुबेजी का घर - संसार	नर्मदा शंकर पांडेय	२९
	मेरे शुभ चिन्तक : दुबेजी	डॉ० त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'	३६
	दुबेजी - एक संस्था	रामअवधेश त्रिपाठी	३८
	पं० रामेश्वर दयाल दुबे - अभिव्यक्ति के विविध रूप	शिवशंकर मिश्र	४१
	श्री रामेश्वर दयाल दुबे : बहुआयामी व्यक्तित्व	डॉ० शीलम वेंकटेश्वर राव	४४
न्दी सेवा			
	समिति के पर्याय : दुबेजी	डॉ० जी० एन० श्रीवास्तव	४७
	अत्यन्त लोकप्रिय परीक्षा मंत्री	मोहनलाल भट्ट	५४
	चुम्बकत्वशील व्यक्तित्व : रामेश्वर दयाल दुबे	द्वारकादास वेद	५८
(	समिति के सजग प्रहरी	श्रीमती मदालसा नारायण	५९
(	कर्मरत जीवन के प्रतीक	रामकृष्ण बजाज	६१
६	कुछ शब्द : दुबेजी के सम्बंध में	रसूल अहमद 'अबोध'	६३
७	सहजता के प्रतीक : रामेश्वर दयाल दुबे	डॉ० गिरिजाशंकर त्रिवेदी	६५
८	हिं० सा० सम्मेलन में १४ माह	हरिमोहन मालवीय	६७
९	हिन्दी प्रचार - प्रसार के स्तम्भ	डॉ० मो० दि० पराड़कर	७०
०	श्री रामेश्वर दयाल दुबे	विष्णु प्रभाकर	७१
१	ऋषि जीवन की झलकियाँ	डॉ० डी० शंकर	७३
२	रामेश्वर दयाल दुबे - एक योगी	भूपसिंह गुप्त	७६
३	मेरे मित्र : दुबेजी	उमाशंकर शुक्ल	७८
४	व्यक्तित्व की एक झाँकी : दुबेजी	नागा शास्त्री नागप्पा	८०
५	अनन्य हिन्दी सेवी : दुबेजी	पी० नारायण	८३

२६ भाषा जीवन उच्च विचार के प्रतीक: श्री रामेश्वर दयाल दुबे — एम० के वेलायुधन नायर — ८५
२७ भोपाल के प्राण : दुबेजी — उद्धव मेश्राम — ८६
२८ [illegible] — आशाराम वर्मा — ८९
२९ मतभेद होने पर भी मनभेद हो न पाये — यदुनाथ थत्ते — ९१
३० दुबेजी की देन: हिन्दी नगर डाकघर — 'स्वर्णांकिता' पुस्तक से — ९३

साहित्य साधना

३१ साहित्य सृजन के अजस्र स्रोत : पं० रामेश्वर दयाल दुबे — डॉ० रामप्रसाद त्रिवेदी — ९७
३२ रामकथा के गायक : पं० रामेश्वर दयाल दुबे — डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र — १०४
३३ श्री रामेश्वर दयाल दुबे के काव्य में सांस्कृतिक चेतना — डॉ० (श्रीमती) उर्वशी जे० सूरती — १०९
३४ पं० रामेश्वर दयाल दुबे : उनके खंडकाव्य — डॉ० सोमनाथ राव — ११३
३५ कोणार्क — डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी — ११६
३६ कठिन कार्य में सफलता — महादेवी वर्मा — ११९
३७ पंचप्रभा : मूल्यचेतना और प्रगतिशीलता का काव्य — डॉ० सुरेशचन्द्र त्रिवेदी — १२१
३८ हिन्दी गीत, जिसने इतिहास बनाया — डॉ० विद्याविन्दु सिंह — १२६
३९ साहित्य - सेतु पं० रा० द० दुबे — डॉ० सरला शुक्ला — १२८
४० दुबेजी का हास्य प्रधान साहित्य — कौशलेन्द्र पाण्डेय — १३०
४१ बाल साहित्य के अनन्य सेवक : पं० रामेश्वर दयाल दुबे — चक्रधर नलिन — १३४
४२ दुबेजी का पद्यानुवाद कार्य — आलोक त्रिवेदी — १३७
४३ रामेश्वर दयाल दुबे [illegible] गणित साहित्य [illegible] — [illegible] ना० श्री० — १३९
४४ दुबेजी की नाट्य[illegible] — [illegible] राकेश शर्मा — १४६

शुभकामनाएँ

१५१
४५ स्नेह — १५२
४६ सम्मति — १७१
४७ सम्मान

परिशिष्ट

१७२
४८ [illegible]

जीवन परिचय

सुप्रभातम्

प्रभो ! ईश जगदीश हे विश्व स्वामी
अखिल सृष्टि प्रेरक सदा त्राणकर्ता ।
नमन लें, करें कोर करुणा—कृपा की
बने मांगलिक नित्य मेरा प्रभातम् ।।

सुगन्धा धरित्री लिए गोद सब को
महापूत पावक, गगन शब्द-स्वामी ।
उदक मात्र जीवन, अनिल प्राण-दाता
करें मांगलिक नित्य मेरा प्रभातम् ।।

परम पूज्य माँ, पूज्य वत्सल पिताश्री
सुपथ मार्ग—दर्शक, गुरू और गुरुजन ।
शुभाशीष सबका, करे स्नेह वर्षा
बने मांगलिक नित्य मेरा प्रभातम् ।।

सदा स्वस्थ रह तन करे नित परिश्रम
न कलुषित बने मन कभी एक क्षण भी ।
रहें पूत ही भाव मेरे हृदय में
बनें मांगलिक नित्य मेरा प्रभातम् ।।

गहूँ न्याय का, नीति का पथ सदा ही
रहूँ सत्य का ही सदा मैं उपासक ।
सभी के भले की करूँ कामना मैं
बने मांगलिक नित्य मेरा प्रभातम् ।।

—रामेश्वर दयाल दुबे

पं० रामेश्वर दयाल दुबे जीवन परिचय

डा० गोपाल नारायण श्रीवास्तव

प्रख्यात् हिन्दी सेवी एवम् साहित्यकार पं० रामेश्वर दयाल दुबे का जन्म २१ जून सन् १९०८ में मैनपुरी, उत्तर प्रदेश, के हिन्दूपुर नामक ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता पं० देवीदयाल दुबे गाँव के सम्मानित व्यक्ति होने के साथ ही साहित्य के विशेष प्रेमी एवम् हिन्दी तथा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। पिता की गोदी में बैठकर अनुश्रवण पद्धति से बालक दुबे ने तुलसी, कबीर एवम् रहीम के अनेक दोहे तथा संस्कृत के प्रसिद्ध नीति-श्लोक कंठस्थ किये। इस प्रकार पिता की गोद ही उनके जीवन की सच्ची प्राथमिक पाठशाला थी। उनकी माँ आदर्श भारतीय महिला थीं। दुबे जी का शैशव, जो अधिकांशत: स्नेह के वातावरण में पल्लवित हुआ, उसका सम्पूर्ण श्रेय उनके पूज्य पिता तथा अनन्त ममतामयी माँ को है।

शिक्षा

दुबे जी की शिक्षा-दीक्षा का इतिवृत्त श्रम और अध्यवसाय के अधिकरण पर टिका हुआ है। उनकी बाल्यावस्था में हिन्दूपुर के विद्यालय में केवल कक्षा दो तक का ही अध्यापन होता था। इसके बाद कक्षा चार तक की शिक्षा दुबे जी ने वहाँ से लगभग दो मील दूर अर्जुनपुर तथा ढाई मील दूर विशुनबढ़ स्थित शिक्षालयों से ग्रहण की। इस अवधि में वे घर से विद्यालय तक पैदल आते-जाते रहे। यहाँ तक तो स्थिति सामान्य ही रही, किन्तु परवर्ती शिक्षा सहज नहीं थी। मिडिल स्कूल छिबरामऊ में था, जिसकी हिन्दूपुर से दूरी लगभग आठ मील थी। ऐसी स्थिति में प्रतिदिन घर से आकर अध्ययन करना संभव नहीं था। अत: छोटी-सी अवस्था में ही उन्हें माता-पिता के सान्निध्य से दूर अकबरपुर में अपने पिता की बहन के पास रहना पड़ा। छिबरामऊ स्थित स्कूल यहाँ से भी लगभग तीन मील दूर था और दुबे जी को प्रतिदिन यह श्रम-साध्य यात्रा करनी पड़ती थी।

हिन्दूपुर में प्रतिवर्ष कार्तिक मास में 'धनुषयज्ञ' का आयोजन होता था। इसका अधिकांश प्रबन्ध दुबे जी के पिता जी स्वयं करते थे। यह सम्पूर्ण कार्यक्रम लगभग दो सप्ताह तक ग्रामांचल का आकर्षण बनता था। अपने बचपन में दुबे जी इस आयोजन में लक्ष्मण की भूमिका अभिनीत करते थे। उन दिनों रामचरित मानस का अखण्डपाठ जन-सामान्यकी स्वीकृत पाठशिक्षा का रूप ले चुका था। दुबेजी इन सभी कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। इस प्रकार शैशवकाल से ही रामकथा के संदर्भों से जुड़ने और भक्ति के प्रांजल स्वरूप से अभिज्ञ होने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ, जो कालान्तर में उनके सृजनात्मक साहित्य में प्रकट हुआ।

दुबे जी के बाल्यकाल में सम्पूर्ण देश में स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन जन-जागृति एवम् नवोन्मेष का निकष बना हुआ था। गाँधी जी के 'सत्याग्रह' और 'असहयोग' अभियान ने तत्कालीन अंग्रेज शासकों को कर्तव्य विमूढ़ और स्तब्ध कर दिया था। भारत के प्रत्येक ग्राम में स्वराज्य का उद्घोष बन्देमातरम् की जयकार गूँज रही थी। हिन्दूपुर जैसे धुर देहात में भी जागरण की आँधी आयी हुयी थी। गाँव के अधिकांश लोग प्रति सायं दुबे जी के पैत्रिक आवास पर एकत्र होकर तत्कालीन राजनीति एवम् सामाजिक हलचल पर घंटो बहस करते थे। पं० माखनलाल चतुर्वेदी का प्रसिद्ध गीत 'पुष्प की अभिलाषा' प्रत्येक भारत वासी का कंठहार बना हुआ था। इसी समय गाँधीजी के निर्देशानुसार हिन्दूपुर गाँव में भी पं० मनसुखलाल दुबे ने 'ग्राम सेवा समिति' की स्थापना की। दुबे जी इसके सक्रिय सदस्य थे। उन दिनों सेवा-समिति का सदस्य बनकर 'स्वयं सेवक' कहलाना बड़े गौरव की बात समझी जाती थी।

प्रत्येक समाज में वैचारिक क्रान्ति और राष्ट्रीय चेतना को निरन्तर उद्बुद्ध करने में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका सदैव ही प्रधान रही है। उस समय कानपुर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र 'प्रताप' की धूम मची हुयी थी। दुबे जी के हिन्दूपुर गाँव में यह एकमात्र पत्र केवल उन्हीं के यहाँ आता था। 'प्रताप' में सम-सामयिक सामग्री के साथ बड़ी रोचक एवं प्रेरक कविताएं भी प्रकाशित होती थीं। दुबे जी इन्हें बड़े उत्साह से पढ़ते। इसी अवधि में उन्हें धमियापुर ग्रामवासी एक सहपाठी से उसके बड़े भाई द्वारा रचित कविताएं सुनने का अवसर मिला। इसके परिणामस्वरूप कविता के प्रति उनका सहज आकर्षण संकल्प के नए क्षितिज खोजने की ओर प्रवृत्त हुआ।

उसी काल में दुबे जी का झुकाव कविता की ओर हुआ था। वे सोचते कि क्या वे कविता नहीं लिख सकते? जब वे कक्षा पाँच में ही पढ़ रहे थे, तब उन्होंने अपनी प्रथम कविता लिखी थी, जिसमें उनके ग्राम का वर्णन था—

पूरब में कोठी बनी, पश्चिम ताल महान।
उत्तर में बम्बा बहे, दक्षिण ईसन आन ।।
धनुषयज्ञ होती हर वर्ष, सबके मन में होता हर्ष ।।

लाख प्रयत्न करने पर भी इन पंक्तियों के आगे कविता नहीं बनी। फिर भी प्रयास होने के नाते इन पंक्तियों का विशेष महत्व है ही।

दुबे जी के अग्रज पं० मनसुखलाल दुबे को भी स्फुट रूप से कवितायें लिखने का चित व्यसन था। समस्यापूर्ति में वे अधिक रुचि रखते थे। इसके अतिरिक्त काव्य- काव्य-पाठ और कवितायें सुनने में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी। ऐसे वातावरण जी जब बड़े भाई के साथ मैनपुरी में रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तब वे वहाँ ख्यात कवि और अपने अग्रज के घनिष्ठ मित्र श्री कौशलेन्द्र जी के सम्पर्क में आये। के परामर्श से बाद में दुबे जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा विशारद परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। इसी संदर्भ में उनका आवागमन स्थानीय र चतुर्वेदी पुस्तकालय में प्रारम्भ हुआ। कालान्तर में वे वहाँ के उत्सव, कवि- ष्ठयों एवम् सांस्कृतिक सम्मेलनों में भी उपस्थित रहने लगे। इन साहित्यिक गोष्ठियों यः कवियों को समस्यायें दी जाती थीं। दुबे जी ने भी धीरे-धीरे तुकबन्दियों द्वारा याओं की अपने ढंग से पूर्ति करना प्रारम्भ किया। किन्तु यह सारा साहित्य-अभ्यास न्त गुप्त रूप से चोरी-छिपे ही किया जाता रहा।

एक बार मैनपुरी में प्रदर्शनी के अन्तर्गत आयोजित विराट कवि-सम्मेलन में संयो- दुबे जी के अग्रज उपस्थित नहीं थे। अतः यहाँ उन्हें आगे बढ़कर अपनी समस्या- सुनाने का अवसर मिल गया। समस्या पूर्ति का विषय था—'तुम्हारी है'। इस अव- पर दुबे जी द्वारा पठित छन्द में उपालम्भ और चेतावनी की मिश्रित हास्य योजना से गण आनन्दित हो उठे। छन्द की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार थीं——

कान खोलि सुनि लेहु, तारिहों नही तौ फिर
लठिया हमारी और खोपड़ी तुम्हारी है।

प्रदर्शनी में हुये इस काव्य-पाठ के कारण दुबे जी मैनपुरी जनपद के अन्यान्य हित्य-प्रेमियों की दृष्टि-परिधि में आये। प्रदर्शनी के संयोजक श्री खड्गजीत मिश्र ने माधुरी सार' की एक प्रति पुरुस्कार स्वरूप दी।

इससे जहाँ इनका उत्साहवर्द्धन हुआ, वहीं रचनाधर्मिता के साथ उनकी रुचि भी बढ़ी। इस प्रकार सम्पूर्ण शिक्षावधि में स्फुट रूप से कवितायें लिखने का उनका कार्य अवाधगति से चलता रहा।

दुबे जी की माध्यमिक शिक्षा मैनपुरी में बड़े भाई पं० मनसुखलाल दुबे एडवोकेट की अभिरक्षा में हुयी। यहाँ के मिशन स्कूल में उन्होंने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया। बड़े भाई के साथ रह कर ही उन्होंने भोजन परिपाक सम्बन्धी आत्मनिर्भरता प्राप्त की। मैनपुरी के राजकीय स्कूल में भी वे दो वर्ष तक पढ़े, किन्तु परिस्थितिवश बाद में उन्हें दिल्ली बोर्ड की हाई-स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ी। दिल्ली में ही दरियागंज स्थित कामर्स कालेज में उनकी परवर्ती शिक्षा प्रारम्भ हुई। अपनी शिक्षा के अर्थभार से बड़े भाई को यथासंभव बचाने के उद्देश्य से उन्होंने एन. सी. सी. का प्रशिक्षण लेना स्वीकार किया। इण्टर (कामर्स) की परीक्षा दुबे जी ने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

इसी अवधि में उनका विवाह फर्रुखाबाद जनपद के सौरिख नामक गाँव के एक सम्भ्रान्त परिवार की सुयोग्य कन्या के साथ हुआ। इसके बाद उन्होंने दिल्ली के ही कश्मीरी गेट स्थित हिन्दू कालेज से कला स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

उरई में छ वर्ष

स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त दुबे जी की इच्छा शिक्षक बनने की थी। आगे की पढ़ाई वह आत्मनिर्भर होकर करना चाहते थे। किन्तु प्रशिक्षित न होने के कारण उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। इसी समय उनके पूर्व गुरु पं० दिवाकर शुक्ल ने उनके समक्ष नहर विभाग के एक बड़े अधिकारी [इन्जीनियर] के घर पर बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने का प्रस्ताव रखा। दुबे जी ने इस विचार से कि जब तक कोई अच्छी स्थाई व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक ट्यूशन कर लेने में कोई हानि नहीं है, इस प्रस्ताव को अन्तरिम रूप से स्वीकार कर लिया। कालान्तर में इस परिवार से दुबे जी का सम्पर्क अत्यधिक घनिष्ठ हो गया। यहाँ तक कि जब अधिकारी का स्थानान्तरण मैनपुरी से उरई हुआ, तब भी वे दुबे जी को अपने साथ ही ले गये और वहीं अपने बँगले पर उनके रहने की सम्पूर्ण व्यवस्था की। इस परिवार के साथ रहकर ही दुबे जी ने अजमेर होते हुए आबू पर्वत की यात्रा की।

कालान्तर में दुबे जी ने व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में साहित्यरत्न और एम०ए० की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। उन दिनों व्यक्तिगत परीक्षार्थियों को स्नातकोत्तर परीक्षा में प्रवेश प्राप्त करने हेतु शिक्षक का अनुभव प्राप्त करना आवश्यक था। इसी प्रकार

वैकल्पिक विषय संस्थागत परीक्षार्थियों के अनुरूप लेने की बाध्यता थी। दुबे जी ने इन चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना किया और अपने लक्ष्य की पूर्ति की।

इन्जीनियर साहब के विभागीय दौरे होते रहते थे। एक बार दुबे जी को उनके परिवार के साथ चिरगांव पहुँचने का लाभ मिला, जहाँ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के सम्पर्क में आये।

चिरगाँव में पूरा परिवार तीन दिन ठहरा। समय लेने के लिए पत्र-व्यवहार पहले कर ही लिया गया था। प्रातःकाल सब लोग गुप्त जी की हवेली जाते थे और सन्ध्या समय गुप्त जी अपने अनुज सियारामशरण गुप्त तथा दो-तीन अन्य व्यक्तियों के साथ डाक बँगले पर आया करते थे। वहीं पर मुन्शी अजमेरी जी से भी परिचय हुआ था।

इन्जीनियर साहब के परिवार के साथ दुबे जी को कश्मीर यात्रा का और वहाँ लगातार चार माह तक रहने का अमूल्य लाभ भी मिला था। श्रीनगर के दर्शनीय स्थान, गुलमर्ग आदि को तो देखा ही, कश्मीर के अन्तराल में विभिन्न घाटियों और हिम मन्डित शिखरों के बीच एकान्त शान्त जंगलों में पूरा एक माह बिताना, बर्फ पर मीलों चलना और रहना एक अत्यन्त सुखद अनुभव रहा। इस अवधि में पूरी मंडली ने सौनमर्ग,लद्दाख घाटी, कृष्णसर, विष्णुसर, मज्दे गली, अमरनाथ, कुल्हाई ग्लेशियर आदि का सौन्दर्य पान कर हिमालय के हृदय के दर्शन किये। दुबे जी के लिए कश्मीर की यह यात्रा एक विशेष उपलब्धि रही।

दुबेजी के मन में शिक्षक बनने की प्रबल इच्छा तो थी ही, कश्मीर से लौटनेके पश्चात उन्होंने इलाहाबाद जाकर आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने का निश्चय किया, किन्तु इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। उस समय प्रयाग में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन जी रहते थे। दुबे जी से उनका परिचय पहले ही सन् १९३३ में हो चुका था। टण्डन जी के सम्पर्क में आने का वह प्रसंग इस प्रकार था–

दुबेजी 'साहित्यरत्न' की परीक्षा देने प्रयाग गये थे। तीसरे प्रश्न-पत्र के दिन इतने बीमार हो गये कि परीक्षाके बाद सम्मेलन कार्यालय की झोपड़ी में ही रात बितानी पड़ी। टण्डन जी निकट में ही रहते थे। सम्मेलन के माली ने, जो शायद फूल देने गया था, बाबू जी को जानकारी दी कि एक परीक्षार्थी कार्यालय में बीमार पड़ा है। थोड़ी देर में ही टंडन जी खाट के पास आ खड़े हुए। हालचाल पूछ कर धीरज बँधाया और माली

को आदेश दिया कि इस लड़के को पँ० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के यहाँ ले जाओ। कह देना टंडन जी ने भेजा है। वे कुछ औषधि दे देंगे।

इस प्रसंग ने दुबे जी को टण्डन जी के निकट पहुँचा दिया था। सम्बन्ध आत्मीय बन गया। अतः प्रयाग छोड़ने से पहले दुबे जी ने बाबू जी से भेंट करना उचित समझा। टण्डन जी ने उन्हें वर्धा में रहकर हिन्दी प्रचार का कार्य करने की सलाह दी। उन्होंने यह भी जानकारी दी कि गाँधी जी की देखरेख में हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना हुई है। "यदि तुम वर्धा जाकर यह कार्य करोगे, तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

दुबे जी को अपने भावी कार्यक्रम के बारे में अब तय करना था। वर्धा पहुँच कर गाँधी जी के सम्पर्क में आने का लाभ कम आकर्षक नहीं था।

सौभाग्य से उस समय दुबे जी के सहपाठी श्रीमन्नारायण, गाँधी जी के पास रह कर वर्धा में काम कर रहे थे। दुबे जी ने उनसे पत्र-व्यवहार किया। उन्होंने दुबे जी को वर्धा आने का निमन्त्रण दिया। पत्र में दुबे जी को लिखा कि वर्धा में नवभारत विद्यालय के अन्तर्गत एक शिक्षक का पद रिक्त है। इसके अतिरिक्त हिन्दी प्रचार समिति में भी उत्साही युवकों की आवश्यकता है। वातावरण का परिचय प्राप्त करने के लिए दुबे जी ने एक बार वर्धा हो आना उचित समझा। वे वर्धा पहुँचे। श्रीमन जी के साथ उन्होंने गाँधी जी के दर्शन किये। काका साहेब कालेलकर, आचार्य विनोबा भावे, सेठ जमनालाल बजाज आदि महापुरुषों से मिले। वर्धा के त्यागमय सात्विक जीवन ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया।

स्वतन्त्रता आन्दोलन का जो वातावरण दुबे जी को बाल्यावस्थामें प्राप्त हुआ था, वह उनके विद्यार्थी जीवन के उत्तरार्ध में संस्कार का स्वरूप लेकर अधिकाधिक भास्वर हो उठा। अतः महात्मा गांधी के आकर्षण से प्रभावित होकर उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत रचनात्मक सहयोग करने का निश्चय किया और अपने बड़े भाई का आशीर्वाद लेकर वर्धा के लिए १९३७ के प्रारम्भ में प्रस्थान किया।

वर्धा में चालीस वर्ष

वर्धा में दुबे जी को नवभारत विद्यालय एवम् हिन्दी प्रचार समिति दोनों ही थाओं में एक साथ कार्य करना पड़ा। उनके कठोर परिश्रम और कर्तव्य-निष्ठा का ऐसा व्यापक प्रभाव पड़ा कि विद्यालय के आचार्य आर्यनायकम् और समिति के कार्याध्यक्ष काका साहेब कालेलकर में से कोई भी उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं था। उधर दो संस्थाओं का श्रमसाध्य कार्य करते हुए दुबेजी को अपना कार्यक्षेत्र अनिश्चित-सा लग रहा

ा । कालान्तर में काका साहेब के प्रयास से उन्हें समिति में स्वतन्त्र रूप से कार्य रने का अवसर प्राप्त हुआ । उस समय राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर के प्रधानाध्यापक हिन्दी-प्रचार के पुराने कार्यकर्ता पं० हृषीकेश शर्मा थे । उनके अनुरोध से दुबे जी को छात्रावास के व्यवस्थापक का कार्य भी देखना पड़ा । गांधी जी के आदर्श से अनुप्राणित अध्यापन मन्दिर आश्रम-पद्धति पर संचालित था । अत: सारा कार्यक्रम प्रात: ४ बजे से आरम्भ हो जाता । सामूहिक प्रार्थना, सूत कताई, विशिष्ट व्यक्तियों के व्याख्यान, दैनिक खेलकूद, सायंकालीन प्रार्थना आदि अनेक कार्यक्रम वहाँ नित्य होते थे, जिनका सम्पूर्ण संचालन व्यवस्थापक के रूप में दुबे जी को करना पड़ता था ।

समिति ने कुछ समय उपरान्त ही परीक्षा संचालन का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया । इसके लिए पहले एक पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया, फिर उसी के अनुरूप पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने का कार्यक्रम बना । उस समय परीक्षामंत्री का दायित्व दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के कर्मठ कार्यकर्ता श्री हरिहर शर्मा पर था । उन्होंने पाठ्य-पुस्तकों के सम्पादन का महत्वपूर्ण कार्य दुबे जी को सौंपा । उनकी अनुपस्थिति या दौरों की कालावधि में उनका सम्पूर्ण दायित्व भी दुबे जी को ही संभालना पड़ता था । इस प्रकार समिति के प्रत्येक विभाग से सम्बन्धित कार्यों की उन्हें अच्छी जानकारी हो गयी, जिसके परिणाम स्वरूप समिति के उच्चाधिकारियों को प्रत्येक कार्य के लिए दुबे जी की सहायता अपेक्षित रहती । इससे उनका महत्व एवम् सम्मान निरन्तर बढ़ता गया ।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से वर्धा उन दिनों भारतवर्ष की अघोषित राजधानी थी । गांधी जी का सेवाग्राम आश्रम वहीं स्थित था । उनसे मिलने के लिए देश-विदेश के अनेक नेता एवम् गण्यमान्य महापुरुष वहाँ प्राय: आया करते थे । कांग्रेस कार्यकारिणी की अधिकांश बैठकें भी वहाँ होती थीं । अत: दुबे जी को राजेन्द्र बाबू, सुभाषचन्द्र बोस, आचार्य कृपलानी, महादेव भाई, सी. एफ. एण्ड्रूज, शंकरराव देव, सर राधाकृष्णन, राजगोपालाचार्य प्रभृति अनेक महापुरुषों का साहचर्य प्राप्त हुआ । इससे उनके विचारों को नवीन दिशा मिली और वे जीवन–कर्म को चरित्र के आदर्श निदर्शन के अनुरूप ढालने की ओर प्रवृत्त हुये । दुबे जी के सद्प्रयास से महात्मा गांधी ने अध्यापन मन्दिर के लिए प्रत्येक रविवार को प्रात: अपना अमूल्य समय देना स्वीकार किया ।

इन पन्द्रह मिनटों में गांधी जी अध्यापन मन्दिर सम्बन्धी विविध जानकारी प्रश्नों द्वारा प्राप्त करते और सुझाव देते थे । राष्ट्रभाषा हिन्दी, उर्दू, राष्ट्रलिपि देवनागरी आदि पर चर्चा चलती । छात्रों की विविध समस्याओं का समाधान करते, बीच-बीच में विनोद चलता रहता । गांधी जी कहते कि हिन्दी प्रचार तो राष्ट्रसेवा का काम है । उसे

पूरी निष्ठा से पूरा करना चाहिये।

राष्ट्रभाषा अध्यापन सन्दिर में पाँच वर्ष तक दुबे जी ने अध्यापक और व्यवस्थापक का काम किया। इसी अवधि में सन् ३८ से ४० तीन वर्ष तक समिति कार्यालय के निकट स्थित 'वासुदेव आर्टस कालेज' (वर्धा) में कालेज मैनेजमेन्ट के अनुरोध पर काका साहब की इच्छानुसार अवैतनिक हिन्दी-प्रोफेसर की हैसियत से श्री दुबे जी ने अपनी सेवायें दीं, जहाँ इण्टर और बी. ए. के छात्रों को पढ़ाते रहे।

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर सन् १९४२ तक विधिवत चलता रहा। इस अवधि में हिन्दीतर प्रदेशों के लगभग डेढ़ सौ प्रचारकों ने वर्धा आकर दस-दस माह का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके बाद अपने-अपने प्रान्तों में जाकर हिन्दी-प्रचार का उल्लेखनीय कार्य किया। पाँचवें सत्र की समाप्ति के साथ ही कार्याध्यक्ष काका कालेलकर जी ने अध्यापन मन्दिर को बन्द करने का निर्णय लिया। अतः इस कार्य में लगे कर्मचारियों की सेवाओं का भी अन्त हो गया।

भारी मन के साथ दुबे जी उत्तर प्रदेश लौट आये और कानपुर में अपने बहनोई पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र की सहायता से प्रसिद्ध उद्योगपति लक्ष्मीचन्द सिंहानिया से भेंट की। उन्होंने गंगा तट पर स्थित अपने बंगले गंगाकुटी के निकट रहने की व्यवस्था कराने का आश्वासन दिया और अपने परिवार के बच्चों के पढ़ाने का काम देने की व्यवस्था की। साथ ही गुरुनारायण खत्री हाई स्कूल में कार्य करने का आश्वासन मिला। किन्तु इसके लिए शिक्षा-सत्र के प्रारम्भ होने तक प्रतीक्षा करनी थी। अतः दुबे जी अपने गाँव चले गये।

यहाँ उन्हें वर्धा से श्रीमन्नारायणजी का एक तार मिला कि वे यथाशीघ्र इलाहाबाद में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन से मिलें। दुबे जी अभी सोच विचार कर ही रहे थे कि इलाहाबाद से भी इसी आशय का टण्डन जी के द्वारा प्रेषित दूसरा टेलीग्राम आ पहुंचा। अतः उन्हें बाध्य होकर इलाहाबाद जाना पड़ा वहाँ श्री टण्डन जी ने उन्हें पुनः वर्धा जाकर समिति के सहायक मन्त्री के रूप में कार्य करने हेतु आदेशित किया। दुबे जी को यह अच्छा नहीं लग रहा था। क्योंकि वर्धा से लौटकर उन्होंने अपनी दूसरी योजना बना ली थी। टण्डन जी के आग्रह के सामने स्पष्टरूप से कुछ कहने की स्थिति में भी वे नहीं थे। टण्डन जी के निर्देश पर वे उदयनारायण तिवारी और बौद्धभिक्षु कौसल्यायन से भी मिले। अन्ततः उन्हें वर्धा जाकर पुनः समिति का कार्यभार ग्रहण करने हेतु बाध्य होना पड़ा।

दुबे जी के वर्धा पहुँचने के तीन दिन बाद सेवाग्राम स्थित गांधी जी की कुटी में

ाष्ट्रभाषा प्रचार समिति की एक बैठक ता० १२-६-४२ को श्री टण्डन जी की अध्यक्षता ं हुई, जिसमें भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी को समिति का मन्त्री रामेश्वर दयाल बे जी को सहायक मन्त्री और परीक्षा-मन्त्री मनोनीत किया गया। दोनों मन्त्रियों ने मिति की बागडोर अपने हाथों में ली, परन्तु प्रारम्भ के दो-तीन वर्ष तक श्री कौसल्यायनजी ा वर्धा रहना अधिक न हो सका। मुख्यतः दुबे जी को ही समिति की सम्पूर्ण व्यवस्था ा भार उठाना पड़ा। सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण समिति के सामने भी ीषण परिस्थिति पैदा हो गई थी, परन्तु दोनों मंत्रियों की सूझ-बूझ से उसे सँभाल लिया या था। समिति का काम चल पड़ा था, उन्नति हो रही थी।

इस अवधि में (१९४२) दुबे जी को एक वज्राघात सहना पड़ा। पत्नी का चिर वियोग हो गया। एक वर्ष तक दुबे जी अव्यवस्थित रहे। जीवन में सुख-दुख की ूप-छाँह चलती ही रहती है। परिजनों के आग्रह के कारण जीवन से समझौता करते हुए उन्होंने १९४३ में अपना दूसरा विवाह किया। उससे उन्हें जीवन-पथ पर चलने में अधिक ेरणा मिली।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी गांधीवादी विचारधारा के समर्थक नहीं थे। उनके विचारों में तत्कालीन साम्यवादी विचार-पद्धति का व्यापक प्रभाव था। जब कि दुबे जी महात्मा गांधी के सिद्धान्तों और आदर्शों के अनुयायी थे। वैचारिक भिन्नता के अवन्तर ी कौसल्यायन जी एवं दुबे जी के सौहार्द एवंकर्तव्यनिष्ठा में समिति का कार्य सुचारू रूप े चलता रहा। उसमें व्यवधान उस समय उपस्थित हुआ, जब समिति में अनेक साम्यवादी विचार के नवीन कार्यकर्ता आये। कार्य के प्रति उन लोगों की अत्यधिक उदासीनता एवम् ापरवाही से समिति का संचालन बाधित होने लगा। जब स्थिति बिगड़ने लगी, तो ुबे जी ने समिति छोड़ने का निश्चय किया, किन्तु कार्य समिति के किसी भी सदस्य ने से स्वीकार नहीं किया। श्री टण्डन जी के आग्रह भरे आदेश पर श्री दुबे जी को अपना निश्चय बदलना पड़ा।

सहायक मन्त्री और परीक्षा मन्त्री का भार ग्रहण करने के बाद सन् १९४२ से दुबेजी अपनी निष्ठा और लगन के कारण समिति के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने लगे थे। कहना न होगा कि उनका जीवन और समिति का जीवन एक हो गया था। वर्ष में दो ार परीक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती थी, लाखों विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठते थे, हजारों चारकों और केन्द्र-व्यवस्थापकों से सम्बन्ध रखना पड़ता था। वर्धा कार्यालय का कार्य ो वे देखते ही थे, हिन्दी-प्रचार के लिए सारे देश में उन्हें परीक्षामन्त्री के रूप में घूमना ी पड़ता था।

सन् १६५१ में समिति को उस समय संकटकालीन परिस्थिति का सामना करना पड़ा, जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के एक प्रभावशाली गुट से सम्बन्ध जोड़कर साम्यवादी विचारधारावाले समिति के कुछ कार्यकर्ताओं ने वर्धा समिति पर अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न किया और समिति के मन्त्री श्री आनन्द जी का ही विरोध करने लगे। समिति पर संकट के बादल घहराने लगे। इस संकटापन्न परिस्थिति में दुबे जी ने बड़ी सूझबूझ से काम लिया और कार्य समिति के सदस्यों के सहयोग से समिति के अस्तित्व की रक्षा की। किन्तु श्री कौसल्यायन जी को समिति का मंत्रीपद छोड़ना पड़ा। नये मन्त्री श्री मोहनलाल भट्ट का आगमन हुआ, जिनके साथ दुबे जी ने २० वर्ष तक समिति के काम को आगे बढ़ाया।

समय-समय पर आने वाली कठिनाइयों को दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए दुबे जी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को विकास, विस्तार एवं महत्व की उन बुलन्दियों तक पहुँचा दिया, जहाँ संस्था स्वयम् एक मानदंड अथवा प्रतिमान का पर्याय बन जाती है। इस प्रकार हिन्दी-सेवा और हिन्दी-प्रचार को जीवन का उद्देश्य और समिति को अपनी कर्मभूमि मानकर दुबे जी ने सन् १६७८ तक पूरी निष्ठा एवं परिश्रम से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया। इस काल में ही समिति के बहुविध कार्यों की अति व्यस्तता के अनन्तर प्रतिदिन नियमित रूप से दो घण्टे के समय की अनिवार्य बचत करते हुए उन्होंने हिन्दी की अनेक विधाओं पर प्रचुर साहित्य भी रचा है, जो उनकी कर्मठता और साहित्यिक प्रतिभा का सुन्दर परिचय देता है। ऐसे बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी दुबे जी सम्भवतः जीवन पर्यन्त राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की सेवा करते रहते, यदि उन्हें जीवन की कतिपय त्रासद अनुभूतियों का सामना न करना पड़ता। वर्तमान अति यथार्थवादी युग में, जहाँ आदर्श और सिद्धान्त के आराधकों को प्रतिपल अनेकानेक विरोधी विसंगतियों एवं चुनौतियों से टकराना पड़ता है, वहीं दुराग्रह एवं अपमान का विष पीना कभी-कभी उनके आत्माभिमानी स्वभाव के लिए असह्य-सा हो जाता है। ऐसी ही व्यथा का गुरुतर भार लेकर दुबे जी ने अपने महान उद्योग से लालित-पालित समिति को उसी प्रकार स्वतंत्र छोड़ दिया, जैसे एक पिता निर्मोही होने का आडम्बर रचाकर अपने वयस्क पुत्र को आत्मनिर्भर बनने हेतु छोड़ देता है। इस प्रकार अपने त्यागपत्र द्वारा समिति को अलविदा कह कर दुबे जी अपने गृह-प्रदेश लौट आये।

सम्प्रति वे 'चित्रकूट' निराला नगर लखनऊ में एक निस्पृह जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किन्तु यहाँ भी उनका हिन्दी-प्रचार कार्य एवं साहित्य-साधना बन्द अथवा मन्द नहीं हुई है, अपितु अब वह कहीं अधिक उर्वर और ऊर्ध्वमुखी हो उठी है।

मेरे रमेश भाई

शालिग्राम शर्मा

बात सन् १९२७ के जुलाई मास की है, जब मेरे रमेश भाई (रामेश्वर दयाल दुबे) हाईस्कूल पास कर इण्टर में भरती होने के विचार से दिल्ली आये और अपने दूर के एक रिश्तेदार के यहाँ ठहरे, जो नई सड़क की एक गली में रहते थे। दिल्ली में वे अपने रिश्तेदार की सलाह पर दरियागंज के कामर्शियल कालेज में भर्ती हो गये। उन दिनों कामर्शियल कालेज लाला (सर) श्रीराम जी की कृपा से नया-नया खुला था। अतः प्रवेश सम्बन्धी कोई विशेष कठिनाई वहाँ नहीं थी। मैं सागर मध्य प्रदेश के एक गाँव से वहाँ पहुँचा था। मेरे स्थानीय अभिरक्षक उस समय दिल्ली की ही एक फर्म में काम करते थे। उन्होंने मेरा प्रवेश भी कामर्शियल कालेज में ही करा दिया। यहीं मेरा परिचय रमेश भाई से हुआ।

रमेश भाई का और मेरा स्वभाव तथा आर्थिक परिस्थितियाँ लगभग समान थीं। इसीलिए हम दोनों में धीरे-धीरे निकटता बढ़ी और शीघ्र ही हम एक दूसरे के निकट आ गये। इण्टर की प्रथम वर्ष की परीक्षा हम दोनो ने अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। उन दिनों हमारे साथ कन्हैयालाल गुप्त नाम का एक और लड़का भी पढ़ता था। मेरे साथ ही साथ उसने भी लक्ष्य किया कि रमेश भाई के दिमाग में प्रायः एक चंचल किस्म का कीड़ा फड़फड़ाता रहता है, जो पढ़ाई के लिए काफी घातक सिद्ध हो सकता था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कीड़े का नाम कविता प्रसविनी पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ न था। कन्हैयालाल और मैंने इनके राधा-कृष्ण विषयक शृंगारी एवम् भक्ति रस प्रधान छन्दों को सुनकर इन्हें 'बिहारी जी' कहना प्रारम्भ कर दिया। फिर तो कालेज के सभी संगी-साथी उन्हें इसी नाम से जानने-पहचानने लगे। एक दिन मैंने समझाया, 'मियाँ कविता के पीछे अगर मँजनू बन गये, तो फिर न घर के रहोगे न घाट के।' किन्तु मेरे समझाने का कोई असर नही हुआ। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे उस कीड़े के पंख निकल आये, फिर वह पक्षी बनकर आकाश में उड़ने लगा। आज तक तो उसने न जाने कितनी दिगन्तगामी यात्रायें पूरी कर ली हैं।

कामर्स कालेज की प्रथम वर्ष की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद अगले वर्ष हम लोग फिर मिले। दोनों एक ही बात से परेशान थे कि जहाँ टिके थे, वहाँ पढ़ाई की समुचित सुविधा न थी। अतः एक दिन हम नये ठिकाने की तलाश में निकल पड़े। सौभाग्य से

पूरी निष्ठा से पूरा करना चाहिये।

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर में पाँच वर्ष तक दुबे जी ने अध्यापक और व्यवस्थापक का काम किया। इसी अवधि में सन् ३८ से ४० तीन वर्ष तक समिति कार्यालय के निकट स्थित 'वासुदेव आर्टस कालेज' (वर्धा) में कालेज मैनेजमेन्ट के अनुरोध पर काका साहब की इच्छानुसार अवैतनिक हिन्दी–प्रोफेसर की हैसियत से श्री दुबे जी ने अपनी सेवायें दीं, जहाँ इण्टर और बी. ए. के छात्रों को पढ़ाते रहे।

राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर सन् १९४२ तक विधिवत चलता रहा। इस अवधि में हिन्दीतर प्रदेशों के लगभग डेढ़ सौ प्रचारकों ने वर्धा आकर दस-दस माह का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके बाद अपने-अपने प्रान्तों में जाकर हिन्दी-प्रचार का उल्लेखनीय कार्य किया। पाँचवें सत्र की समाप्ति के साथ ही कार्याध्यक्ष काका कालेलकर जी ने अध्यापन मन्दिर को बन्द करने का निर्णय लिया। अतः इस कार्य में लगे कर्मचारियों की सेवाओं का भी अन्त हो गया।

भारी मन के साथ दुबे जी उत्तर प्रदेश लौट आये और कानपुर में अपने बहनोई पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र की सहायता से प्रसिद्ध उद्योगपति लक्ष्मीचन्द सिंहानिया से भेंट की। उन्होंने गंगा तट पर स्थित अपने बंगले गंगाकुटी के निकट रहने की व्यवस्था कराने का आश्वासन दिया और अपने परिवार के बच्चों के पढ़ाने का काम देने की व्यवस्था की। साथ ही गुरुनारायण खत्री हाई स्कूल में कार्य करने का आश्वासन मिला। किन्तु इसके लिए शिक्षा-सत्र के प्रारम्भ होने तक प्रतीक्षा करनी थी। अतः दुबे जी अपने गाँव चले गये।

यहाँ उन्हें वर्धा से श्रीमन्नारायणजी का एक तार मिला कि वे यथाशीघ्र इलाहाबाद में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन से मिलें। दुबे जी अभी सोच विचार कर ही रहे थे कि इलाहाबाद से भी इसी आशय का टण्डन जी के द्वारा प्रेषित दूसरा टेलीग्राम आ पहुंचा। अतः उन्हें वाध्य होकर इलाहाबाद जाना पड़ा वहाँ श्री टण्डन जी ने उन्हें पुनः वर्धा जाकर समिति के सहायक मन्त्री के रूप में कार्य करने हेतु आदेशित किया। दुबे जी को यह अच्छा नहीं लग रहा था। क्योंकि वर्धा से लौटकर उन्होंने अपनी दूसरी योजना बना ली थी। टण्डन जी के आग्रह के सामने स्पष्टरूप से कुछ कहने की स्थिति में भी वे नहीं थे। टण्डन जो के निर्देश पर वे उदयनारायण तिवारी और बौद्धभिक्षु कौसल्यायन से भी मिले। अन्ततः उन्हें वर्धा जाकर पुनः समिति का कार्यभार ग्रहण करने हेतु बाध्य होना पड़ा।

दुबे जी के वर्धा पहुँचने के तीन दिन बाद सेवाग्राम स्थित गांधी जी की कुटी में

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की एक बैठक ता० १२-६-४२ को श्री टण्डन जी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी को समिति का मन्त्री रामेश्वर दयाल दुबे जी को सहायक मन्त्री और परीक्षा-मन्त्री मनोनीत किया गया। दोनों मन्त्रियों ने समिति की बागडोर अपने हाथों में ली,परन्तु प्रारम्भ के दो-तीन वर्ष तक श्री कौसल्यायनजी का वर्धा रहना अधिक न हो सका। मुख्यतः दुबे जी को ही समिति की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार उठाना पड़ा। सन् १६४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण समिति के सामने भी भीषण परिस्थिति पैदा हो गई थी, परन्तु दोनों मंत्रियों की सूझ-बूझ से उसे सँभाल लिया गया था। समिति का काम चल पड़ा था, उन्नति हो रही थी।

इस अवधि में (१६४२) दुबे जी को एक वज्राघात सहना पड़ा। पत्नी का चिर वियोग हो गया। एक वर्ष तक दुबे जी अव्यवस्थित रहे। जीवन में सुख-दुख की धूप-छाँह चलती ही रहती है। परिजनों के आग्रह के कारण जीवन से समझौता करते हुए उन्होंने १६४३ में अपना दूसरा विवाह किया। उससे उन्हें जीवन-पथ पर चलने में अधिक प्रेरणा मिली।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी गांधीवादी विचारधारा के समर्थक नहीं थे। उनके विचारों में तत्कालीन साम्यवादी विचार-पद्धति का व्यापक प्रभाव था। जब कि दुबे जी महात्मा गांधी के सिद्धान्तों और आदर्शों के अनुयायी थे। वैचारिक भिन्नता के अवन्तर भी कौसल्यायन जी एवं दुबे जी के सौहार्द एवंकर्तव्यनिष्ठा में समिति का कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। उसमें व्यवधान उस समय उपस्थित हुआ, जब समिति में अनेक साम्यवादी विचार के नवीन कार्यकर्ता आये। कार्य के प्रति उन लोगों की अत्यधिक उदासीनता एवम् लापरवाही से समिति का संचालन बाधित होने लगा। जब स्थिति बिगड़ने लगी, तो दुबे जी ने समिति छोड़ने का निश्चय किया, किन्तु कार्य समिति के किसी भी सदस्य ने उसे स्वीकार नहीं किया। श्री टण्डन जी के आग्रह भरे आदेश पर श्री दुबे जी को अपना निश्चय बदलना पड़ा।

सहायक मन्त्री और परीक्षा मन्त्री का भार ग्रहण करने के बाद सन् १६४२ से दुबेजी अपनी निष्ठा और लगन के कारण समिति के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने लगे थे। कहना न होगा कि उनका जीवन और समिति का जीवन एक हो गया था। वर्ष में दो बार परीक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती थी, लाखों विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठते थे, हजारों प्रचारकों और केन्द्र-व्यवस्थापकों से सम्बन्ध रखना पड़ता था। वर्धा कार्यालय का कार्य तो वे देखते ही थे, हिन्दी-प्रचार के लिए सारे देश में उन्हें परीक्षामन्त्री के रूप में घूमना भी पड़ता था।

सन् १९५१ में समिति को उस समय संकटकालीन परिस्थिति का सामना करना पड़ा, जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के एक प्रभावशाली गुट से सम्बन्ध जोड़कर साम्यवादी विचारधारावाले समिति के कुछ कार्यकर्ताओं ने वर्धा समिति पर अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न किया और समिति के मन्त्री श्री आनन्द जी का ही विरोध करने लगे। समिति पर संकट के बादल घहराने लगे। इस संकटापन्न परिस्थिति में दुबे जी ने बड़ी सूझबूझ से काम लिया और कार्य समिति के सदस्यों के सहयोग से समिति के अस्तित्व की रक्षा की। किन्तु श्री कौसल्यायन जी को समिति का मंत्रीपद छोड़ना पड़ा। नये मन्त्री श्री मोहनलाल भट्ट का आगमन हुआ, जिनके साथ दुबे जी ने २० वर्ष तक समिति के काम को आगे बढ़ाया।

समय-समय पर आने वाली कठिनाइयों को दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए दुबे जी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को विकास, विस्तार एवं महत्व की उन बुलन्दियों तक पहुँचा दिया, जहाँ संस्था स्वयम् एक मानदंड अथवा प्रतिमान का पर्याय बन जाती है। इस प्रकार हिन्दी-सेवा और हिन्दी-प्रचार को जीवन का उद्देश्य और समिति को अपनी कर्मभूमि मानकर दुबे जी ने सन् १९७८ तक पूरी निष्ठा एवं परिश्रम से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह किया। इस काल में ही समिति के बहुविध कार्यों की अति व्यस्तता के अनन्तर प्रतिदिन नियमित रूप से दो घण्टे के समय की अनिवार्य बचत करते हुए उन्होंने हिन्दी की अनेक विधाओं पर प्रचुर साहित्य भी रचा है, जो उनकी कर्मठता और साहित्यिक प्रतिभा का सुन्दर परिचय देता है। ऐसे बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी दुबे जी सम्भवतः जीवन पर्यन्त राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की सेवा करते रहते, यदि उन्हें जीवन की कतिपय त्रासद अनुभूतियों का सामना न करना पड़ता। वर्तमान अति यथार्थवादी युग में, जहाँ आदर्श और सिद्धान्त के आराधकों को प्रतिपल अनेकानेक विरोधी विसंगतियों एवं चुनौतियों से टकराना पड़ता है, वहीं दुराग्रह एवं अपमान का विष पीना कभी-कभी उनके आत्माभिमानी स्वभाव के लिए असह्य-सा हो जाता है। ऐसी ही व्यथा का गुरुतर भार लेकर दुबे जी ने अपने महान उद्योग से लालित-पालित समिति को उसी प्रकार स्वतंत्र छोड़ दिया, जैसे एक पिता निर्मोही होने का आडम्बर रचाकर अपने वयस्क पुत्र को आत्मनिर्भर बनने हेतु छोड़ देता है। इस प्रकार अपने त्यागपत्र द्वारा समिति को अलविदा कह कर दुबे जी अपने गृह-प्रदेश लौट आये।

सम्प्रति वे 'चित्रकूट' निराला नगर लखनऊ में एक निस्पृह जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किन्तु यहाँ भी उनका हिन्दी-प्रचार कार्य एवं साहित्य-साधना बन्द अथवा मन्द नहीं हुई है, अपितु अब वह कहीं अधिक उर्वर और ऊर्ध्वमुखी हो उठी है।

मेरे रमेश भाई

शालिग्राम शर्मा

बात सन् १६२७ के जुलाई मास की है, जब मेरे रमेश भाई (रामेश्वर दयाल दुबे) हाईस्कूल पास कर इण्टर में भरती होने के विचार से दिल्ली आये और अपने दूर के एक रिश्तेदार के यहाँ ठहरे, जो नई सड़क की एक गली में रहते थे। दिल्ली में वे अपने रिश्तेदार की सलाह पर दरियागंज के कार्मशियल कालेज में भर्ती हो गये। उन दिनों कार्मशियल कालेज लाला (सर) श्रीराम जी की कृपा से नया-नया खुला था। अतः प्रवेश सम्बन्धी कोई विशेष कठिनाई वहाँ नहीं थी। मैं सागर मध्य प्रदेश के एक गाँव से वहाँ पहुँचा था। मेरे स्थानीय अभिरक्षक उस समय दिल्ली की ही एक फर्म में काम करते थे। उन्होंने मेरा प्रवेश भी कार्मशियल कालेज में ही करा दिया। यहीं मेरा परिचय रमेश भाई से हुआ।

रमेश भाई का और मेरा स्वभाव तथा आर्थिक परिस्थितियाँ लगभग समान थीं। इसीलिए हम दोनों में धीरे-धीरे निकटता बढ़ी और शीघ्र ही हम एक दूसरे के निकट आ गये। इण्टर की प्रथम वर्ष की परीक्षा हम दोनो ने अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। उन दिनों हमारे साथ कन्हैयालाल गुप्त नाम का एक और लड़का भी पढ़ता था। मेरे साथ ही साथ उसने भी लक्ष्य किया कि रमेश भाई के दिमाग में प्रायः एक चंचल किस्म का कीड़ा फड़फड़ाता रहता है, जो पढ़ाई के लिए काफी घातक सिद्ध हो सकता था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कीड़े का नाम कविता प्रसविनी पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ न था। कन्हैयालाल और मैंने इनके राधा-कृष्ण विषयक श्रृंगारी एवम् भक्ति रस प्रधान छन्दों को सुनकर इन्हें 'बिहारी जी' कहना प्रारम्भ कर दिया। फिर तो कालेज के सभी संगी-साथी उन्हें इसी नाम से जानने-पहचानने लगे। एक दिन मैंने समझाया, 'मियाँ कविता के पीछे अगर मँजनू बन गये, तो फिर न घर के रहोगे न घाट के।' किन्तु मेरे समझाने का कोई असर नही हुआ। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे उस कीड़े के पंख निकल आये, फिर वह पक्षी बनकर आकाश में उड़ने लगा। आज तक तो उसने न जाने कितनी दिगन्तगामी यात्रायें पूरी कर ली हैं।

कामर्स कालेज की प्रथम वर्ष की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद अगले वर्ष हम लोग फिर मिले। दोनों एक ही बात से परेशान थे कि जहाँ टिके थे, वहाँ पढ़ाई की समुचित सुविधा न थी। अतः एक दिन हम नये ठिकाने की तलाश में निकल पड़े। सौभाग्य से

कालेज के पास ही राजघाट पर भगवान जगन्नाथ जी के मन्दिर में शरण मिल गयी। मन्दिर की संरक्षिका एक माता जी थीं। उन्होंने एक रुपया मासिक किराये पर एक कोठरी देना स्वीकार कर लिया। हम लोग अपना बोरिया-बिस्तर लेकर वहीं आ गये। यहाँ हमने स्वयंपाक की व्यवस्था भी की और भोजन बनाने के लिए अपनी-अपनी पारी निर्धारित कर ली। इस प्रकार दिन मजे से बीतने लगे। परीक्षा काल में हमारे अध्ययन की भी दिलचस्प व्यवस्था थी। एक मन्दिर की कोठरी में पढ़ता, तो दूसरा मन्दिर की छत पर आसन जमाता। परीक्षा में हम दोनों के ही पेपर अच्छे हुये। इसके बाद मैं अपने गाँव लौट आया। अप्रैल १६२६ में मुझे एक मित्र द्वारा प्रेषित सूचना से ज्ञात हुआ कि मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ हूँ। किन्तु रमेश भाई के बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं चल सका।

जब मैं दोबारा दिल्ली पहुँचा, तो मुझे एक दिलचस्प घटना सुनने को मिली। रमेश भाई ने बताया कि जब वह परीक्षा देकर घर पहुँचे, तो पता चला कि पिताजी ने उनका विवाह तय कर रखा है। उन दिनों विवाह माता-पिता की आज्ञानुसार ही होते थे। अतः काफी धूम-धड़ाका हुआ। आवश्यकता से अधिक प्रदर्शन हुआ। विवाहो-परान्त उनका एक नये प्राणी से परिचय हुआ परन्तु उनके आनन्द एवम् उल्लास की अवधि अधिक दिनों तक बनी नहीं रह सकी। गाँव छोड़कर जब वे मैनपुरी पहुँचे, तो पता चला कि उनका परीक्षाफल आ चुका है और सूची में उनका नाम नहीं है। इस घटना से रमेश भाई कितना दुखी हुये होंगे, इसकी कल्पना की जा सकती है। वे तुरन्त मैनपुरी से दिल्ली रवाना हुये। दिल्ली में वे प्रिंसिपल वर्मा से मिले, किन्तु उन्होंने उपेक्षा का ही व्यवहार किया। एक दिन रमेश भाई निरुद्देश्य चाँदनीचौक में टहल रहे थे। तभी अचानक सामने की फुटपाथ से किसी ने उनका नाम लेकर पुकारा। पुकारने वाले प्रिंसिपल वर्मा थे। उन्होंने रमेश भाई की प्रशंसा करते हुये अंग्रेजी में जो कुछ कहा, उसका आशय था-'मेरे कालेज में पाँच लड़के प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये थे। अब तुमने कालेज की टोपी में एक पंख और जौड़ दिया है। अब प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वालों की संख्या छः हो गई है।'

बाद में पता चला कि परीक्षाफल में उनका नाम छूट गया था, जब कि वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये थे। प्रिंसिपल वर्मा को रमेश भाई के उत्तीर्ण होने की जानकारी 'ऐरेटम' द्वारा हो चुकी थी।

जगन्नाथ जी के मन्दिर वाली कोठरी में रहते समय एक बार रमेश भाई बीमार पड़ गये थे। ज्वर और पथ्य की अव्यवस्था के कारण कुछ कमजोर भी हो रहे थे। मेरे

कालेज जाने के उपरान्त उसी पस्त-हिम्मती में वे घर की याद कर कोठरी में बैठे-बैठे आँखें गीली कर रहे थे। अचानक उन्होंने देखा कि मठ के निकट रहने वाली एक योगिनी ने कोठरी में प्रवेश किया। जिसके हाथ में एक तश्तरी थी, जिसमें सेव के कटे हुये टुकड़े रखे थे। अचानक उन्होंने देखा कि मठ के निकट रहने वाली उस योगिनी ने कोठरी में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक तश्तरी थी जिसमें सेव के कटे हुए टुकड़े रखे थे। योगिनी उनके पास ही एक स्थान पर बैठ गयी और उसने रमेश भाई को अपने हाथों से सेव खिलाया रमेश भाई कुछ कहने की स्थिति में ही नही थे किन्तु इस घटना ने उन्हें जड़ीभूत कर दिया। योगिनी सदैव मौन ही रहा करती थी। स्वस्थ होने के उपरान्त एक दिन रमेश भाई रामचरित मानस (गुटका) लेकर योगिनी के मठ-कक्ष में जा पहुँचे। योगिनी एक तख्त पर वस्त्र ओढ़कर लेटी हुयी थी। वहीं एक स्थान पर बैठकर रमेश भाई ने सुन्दर काण्ड का पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। यह पाठ लगभग आधा ही हो पाया होगा कि अचानक योगिनी उठकर बैठ गयी। इसके वाद योगिनी ने अपना ट्रंक खोला। उसमें से कुछ निकाल कर वह रमेश भाई के सामने आकर बैठ गयीं। फिर बिना कुछ कहे ही उन्होंने रमेश भाई के वायें हाथ में सोने की अँगूठी पहनाने का प्रयत्न किया। किन्तु छोटी होने के कारण अँगूठी उनकी उँगली पर स्थान नहीं पा सकी। अतः योगिनी अँगूठी उनके समक्ष रखकर पूर्ववत तख्त पर जाकर लेट गयी। रमेश भाई दिग्मूढ़ हो चुके थे। उन्होंने सुन्दर काण्ड का शेष भाग किस प्रकार पूर्ण किया होगा, उसे भली प्रकार कहा नही जा सकता। बाद में वे अँगूठी तख्त पर ही छोड़ कर चले आये। उस समय उनके मन में यही विचार था कि जो वस्तु मेरी नहीं, जिसका मैं पात्र नहीं, वह वस्तु किस प्रकार स्वीकार कर ली जाये ?

मेरे रमेश भाई इस समय राष्ट्रभाषाप्रचार समिति, वर्धा से अवकाश प्राप्त करनिराला नगर लखनऊ में रह रहे हैं। उनका एक छोटा-सा सुन्दर भवन है, जिसका नाम उन्होंने अपने प्रसिद्ध खण्डकाव्य के अनुकरण पर 'चित्रकूट' रख छोड़ा है। संयोग से मैं भी इस समय महानगर में निकट ही निवास कर रहा हूं। अतः यदा-कदा हमारी भेंट कभी उनके तो कभी मेरे आवास पर हो जाती है। हमारे मिलते ही विद्यार्थी जीवन की सुखद स्मृतियाँ हमें घेर लेती हैं और वर्तमान के कुछ क्षण अतीत की गाथाओं के कारण आनन्द में व्यतीत हो जाते हैं।

कुछ महीनों पहले जब मैने सुना कि मेरे रमेश भाई का सम्मान तृतीय विश्वहिन्दी सम्मेलन में किया गया था और सुश्री महादेवी वर्मा ने उन्हें माँ सरस्वती की एक मूर्ति तथा अभिनन्दन पत्र प्रदान किया, तो मैं उन्हें 'वधाई' देने के उद्देश्य से 'चित्रकूट' जा पहुँचा। वहाँ मैने देखा कि रमेश भाई कुरान-शरीफ का अध्ययन कर रहे हैं। पूछने पर पता चला

कि वे अपनी नवीन कृति 'ज्ञान गंगा' पूर्ण करने जा रहे हैं। उसी में कुरान-शरीफ की कुछ आयतों का पद्यानुवाद प्रस्तुत करने की उनकी योजना है। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। इस उम्र में भी हमारे रमेश भाई जिस प्रतिबद्धता के साथ साहित्य साधना में लगे हुये हैं, उसका उदाहरण मिलना कठिन है।

❁ ❁

मेरे मास्टर साहब

विमल टंडन

स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व भारत में लड़कियों को शिक्षा ग्रहण करने की स्वतंत्रता नहीं थी। वे रामायण पढ़ सकें, पत्र लिख सकें–इतना ही पर्याप्त माना जाता था। बाल्यावस्था में मेरे पिता स्वर्गीय चन्द्रकिशोर जी नहर विभाग में इंजीनियर थे। अंग्रेजों का जमाना था। छोटे-छोटे जिलों में ही भारतीय अफसरों की नियुक्ति होती थी। छोटे स्थानों में बालिकाओं के लिए स्कूल न थे। मेरे बड़े भाई श्री सतीशचन्द्र की शिक्षा स्कूल में हुई थी। आगे चलकर वे उत्तर प्रदेश सरकार के चीफ सेक्रेटरी पद पर पहुँचे थे और अब अवकाश ग्रहण कर गाजियाबाद में रह रहे हैं। मेरी पढ़ाई की व्यवस्था पिता जी ने घर पर ही ट्यूशन के द्वारा कराई थी।

उन दिनों हम लोग मैनपुरी में थे। पुराने ट्यूटर के जाने के पश्चात नये ट्यूटर की खोज हुई और श्री रामेश्वर दयाल दुबे हमारे नये मास्टर साहब बने। मेरे छोटे भाइयों और मुझे पढ़ाने के लिए वे आने लगे। थोड़े ही दिनों में वे हम सब से हिलमिल गये। नये मास्टर साहब को पाकर हम सब प्रसन्न थे। मेरे पिता जी और माता जी को भी सन्तोष था।

सन् १९३० में पिता जी का स्थानान्तरण मैनपुरी से उरई को हो गया। एक समस्या पैदा हो गई। श्री दुबे जी जैसे मास्टर को छोड़ कर किसी दूसरे मास्टर की तलाश करनी पड़ेगी। हम सब की प्रसन्नता की सीमा न रही, जब जाना कि मास्टर साहब हमारे साथ उरई जा सकेंगे।

हम लोग उरई पहुँचे। मास्टर साहब को घर में ही एक कमरा दिया गया। मैनपुरी

में तो वे एक-दो घंटे के लिए आते थे किन्तु उरई में सब समय का साथ था। कहने को मास्टर साहब थे, किन्तु वे परिवार के सदस्य ही बन गये थे। सुबह से शाम तक पढ़ने के अतिरिक्त घूमना-फिरना, खेलना तथा जितने भी कार्यक्रम रहते थे, सब में ही उनका सहयोग व मार्गदर्शन रहता था। मेरे बड़े भाई पढ़ने के लिए इलाहाबाद चले गये। उनका अभाव खटका नहीं, क्योंकि मास्टर साहब बड़े भाई के सदृश ही रहे।

जब कुछ दिनों बाद मास्टर साहब मैनपुरी अपने घर गये, तो मेरे पिता जी का प्रेम भरा आदेश हुआ कि पत्नी को भी साथ लावें। इस प्रकार मास्टर साहब की पत्नी भी आ गईं और वे भी परिवार की एक सदस्या बन गईं। हम बच्चों की प्रसन्नता का तो कुछ कहना ही नही था। हम सब को एक भाभी जो मिल गई थी। हमारा समय और अच्छी तरह व्यतीत होने लगा। भाभी-ननद का जो मधुर सम्बन्ध बन गया, वह एक तरह से आज तक भी चल रहा है।

पढ़ाई की सुन्दर व्यवस्था की जानकारी मिलने पर हमारे एक रिश्तेदार ने अपनी पुत्री शान्ती बहन और पुत्र श्रवण टण्डन को भी हमारे यहाँ भेज दिया था। इस तरह शिष्यों की संख्या बढ़ गयी और घर पर ही एक छोटा स्कूल-सा चलने लगा।

रक्षाबन्धन के अवसर पर मास्टर साहब की बहनें उनके लिए राखियाँ भेजती थीं। उन राखियों को हम बहनों से बंधवाते थे और उपहार स्वरूप हमें रुपये मिलते थे। आज भी जब राखी का त्योहार आता है, बरबश ही मास्टर साहब की याद आ जाती है।

उरई में मास्टर साहब ने हमारे घर पर विभिन्न प्रवृतियाँ शुरू कराई थीं। रात में सोने से पूर्व सामूहिक प्रार्थना होती थी। घर पर ही उन्होंने एक 'प्रेम समिति' की भी स्थापना की। जिसकी मीटिंग प्रत्येक रविवार को होती थी। हम सब लोगों को कहानी, कविता, लेख, चित्र, खिलौना—कुछ न कुछ बनाकर सुनाना और दिखाना पड़ता था। इस तरह मास्टर साहब ने जो बीज उस समय हमारे हृदयों में बोये थे, वे आगे जीवन में पल्लवित—पुष्पित हुए।

उरई एक छोटा शहर था। हमारा बँगला शहर से दूर था। मनोरंजन का कोई साधन वहाँ उपलब्ध न था। इसलिए मास्टर साहब आये दिन त्योहारों पर और यों भी छोटे-मोटे उत्सवों की व्यवस्था घर में ही करते थे। होली-दिवाली मनाते ही थे। कभी-कभी रामायण का पाठ होता। जन्माष्टमी के दिन वे सुन्दर झाँकी सजाते थे।

मेरी बूढ़ी दादी बहुत ही भोली थीं। आँख से कम दीखता था। मास्टर साहब मनोविनोद के लिए उन्हें खूब ठगते रहते थे। एक बार वेश बदल कर मुँह में सुपाड़ी रख कर, ताकि आवाज बदल जाय, कथा-वाचक पंडित जी के रूप में आकर अगड़म, बगड़म कथा सुनाई। दादी समझी तो कुछ नहीं, श्रद्धा से सुनती रहीं। दक्षिणा लेकर चले गये और वेश उतार कर मास्टर साहब अपने रूप में आ गये। दादी ने कहा-मास्टर ! तुम कहाँ चले गये थे। अभी एक पंडित जी आये थे। कथा सुना गये। हाथ तो जवानों के-से थे, मगर बोली बूढ़ों जैसी।' यह सारा प्रसंग उन दिनों घर भर के लिए विनोद का विषय बन गया था।

इसी तरह मास्टर साहब ने गांधी जी का रूप धारण कर दादी से हरिजन फंड के लिए चन्दा वसूल करने का नाटक किया। सारांश यह कि मास्टर साहब का विनोदीरूप पूरे घर के लिए हर्ष, उत्साह और आनन्द का विषय बनता रहा।

आज जब यह सब लिख रही हूं तो स्मृतियाँ इतनी सजीव हैं, मानों मैं अपने ६० साल पूर्व के जीवन में पहुँच गई हूं। इस प्रकार हम लोगों का बाल्यकाल करीब ६ साल तक मास्टर साहब के साथ बीता। सन् १६३७ में हमलोग कश्मीर गये और वहाँ चार माह रहे। मास्टर साहब और भाभी भी साथ थीं। वहाँ की स्मृतियाँ तो और अधिक रोचक हैं। परन्तु स्थानाभाव के कारण उन्हें लिख पाना यहाँ संभव नहीं है।

प्रयाग के श्री पुरुषोत्तमदास टंडन जी की प्रेरणा से मास्टर साहब हिन्दी प्रचार का काम करने के लिए वर्धा चले गये और हम सब उनके संग से वंचित हो गये।

सन् १६३६ में मेरे विवाह के समय मास्टर साहब आठ दिन पहले ही कानपुर आ गये और वहाँ की सारी व्यवस्था में उन्होंने बड़े भाई की जिम्मेदारी पूरी तरह निभाई। मंडप सजावट, जयमाल, मनोरंजन कार्यक्रम सब की उन्होंने व्यवस्था कर मेरे माता-पिता को पूर्ण सहयोग दिया, सहायता की। इसे पूर्व जन्म का संस्कार ही कहा जायेगा।

परिस्थिति वश मास्टर साहब परिवार से दूर पहुँच गये और अपने काम में व्यस्त रहने लगे। मेरे माता-पिता से उनका सम्बन्ध बना रहा। सन् १६७८ में जब मास्टर साहब वर्धा को छोड़ कर लखनऊ आ गये, तब सम्बन्ध में फिर निकटता आई। मेरा निवास लखनऊ में था ही। प्रायः उनसे मिलते रहे, उनके घर पहुँचते रहे, वे दोनों हमारे घर पर आते रहे। पूर्ववत स्नेह मिलता रहा। किन्तु लखनऊ का मकान छोड़कर जब

हम लोग बड़े भाई के पास गाजियाबाद आ गये, तो प्रत्यक्ष सम्पर्क एक बार फिर टूट गया। अब मास्टर साहब का स्नेह और आशीष केवल पत्रों द्वारा ही मिल पाता है। उनके प्रति हमारे हृदय में जो आदरभाव है, वह न केवल असीम और अनुपमेय है बल्कि सही संदर्भों में अनिर्वचनीय भी है।

[वेंगलौर]

मेरे गुरू जी

डा० मदन मोहन शर्मा

पं० रामेश्वर दयाल दुबे मेरे गुरू हैं। सन् १६३६ में जब मैं श्री वासुदेव आर्ट कालेज वर्धा में इण्टर का विद्यार्थी था, मुझे हिन्दी दुबे जी ने ही पढ़ायी थी। वासुदेव आर्ट्स कालेज में उनके अध्यापन कार्य करने का एक दिलचस्प प्रसंग है। बात उस समय की है जब वासुदेव आर्ट कालेज के हिन्दी प्राध्यापक किन्हीं कारणों से अध्यापन कार्य छोड़कर चले गये थे। उन दिनों कालेज की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और अधिकारियों को एक योग्य हिन्दी प्रोफेसर की नितान्त आवश्यकता थी। कालेज के प्रिंसिपल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में कार्यरत दुबे जी की योग्यता से अत्यधिक प्रभावित थे। बल्कि यूँ कहा जाये कि हिन्दी प्रोफेसर पद के लिए वे उन्हें मन से पूरी तरह स्वीकार कर चुके थे, तो अतिशयोक्ति न होगी। परन्तु समिति की सेवा में पूर्ण निष्ठा से सन्नद्ध दुबे जी को इस कार्य के लिए तैयार कर पाना कठिन था। उस समय काका साहब कालेलकर समिति के कार्याध्यक्ष थे। अतः प्रिंसिपल साहब ने काका साहब से अनुरोध किया कि वे दुबे जी को कालेज में अवैतनिक रूप से हिन्दी पढ़ाने के लिए स्वीकृति दे दें। काका साहब के कहने पर गुरू जी इस कार्य के लिए सहर्ष तैयार हो गये। उन्होंने इण्टर और बी० ए० की कक्षाओं में अध्यापन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार वे दो वर्ष तक कालेज की अवैतानिक सेवा करते रहे।

वासुदेव आर्ट कालेज में हिन्दी के एक सामान्य विद्यार्थी के रूप में गुरू जी से मेरा परिचय हुआ। कालान्तर में मेरे हिन्दी-प्रेम और दुबे जी के शिष्य-वात्सल्य के

कारण मैं उनका अत्यधिक स्नेहभाजन बना। एक शिष्य के रूप में मैंने गुरू जी के व्यक्तित्व में बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन किये। उनके जिन विशिष्ट स्वरूपों की छवि आज मेरे मानस में गहरे और चटक रंग लेकर स्थायी हो गयी है, उनमें दुबे जी का प्राध्यापक, साहित्य-सर्जक, आलोचक और प्रशासक रूप अत्यधिक महत्वपूर्ण एवम् उल्लेखनीय है।

मेरे इण्टर के पाठ्यक्रम में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कृत 'यशोधरा' नामक प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य था, जिस पर अनेक प्रकार के आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाते थे। उस समय 'यशोधरा' की कोई ऐसी उपयोगी आलोचना पुस्तक उपलब्ध न थी, जिससे गुप्त जी के काव्य-वैभव को भली प्रकार समझा जा सकता। यहाँ तक अनेक प्रयासों के उपरान्त उपलब्ध 'सुधा' पत्रिका के दो अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित पं० रामदयाल तिवारी की 'यशोधरा' काव्य सम्बन्धी समालोचना से भी यथेष्ट संतुष्टि नहीं मिली। अतः गुरू जी से विनम्र प्रार्थना की कि वे 'यशोधरा' की एक विस्तृत समीक्षा लिखकर जिज्ञासु छात्रों का हित साधन करने की कृपा करें। गुरू जी ने अपने प्रिय शिष्य का अनुरोध स्वीकार कर 'यशोधरा' काव्य की ऐसी सांगोपांग आलोचना लिखी, जो मेरी दृष्टि में आज भी उत्कृष्ट एवं उपयोगी है।

गुरू जी की अध्यापन कला में ऐसा प्रवाहपूर्ण सम्मोहन था कि छात्र मंत्र-मुग्ध की भाँति उनकी व्याख्याओं का आनन्द लेते थे। कविता का अर्थ समझाने में वे प्रस्तुत पद्य के अनुरूप अन्य कवियों की रचनाओं के एकाधिक उदाहरण उक्ति-वैचित्र्य और विश्लेषण-वैविध्य के साथ इस प्रकार प्रस्तुत करते थे कि 'साधारणीकरण की कोई समस्या ही नही रह जाती थी। मैं तो उनसे इतना घुल-मिल गया था कि प्रायः अनसुलझे संदर्भों को समझने के लिए उनके घर तक चला जाता था। जिज्ञासु शिष्य को पाकर सच्चे गुरू का प्रसन्न होना स्वाभाविक था। वे मुझे पूरी लगन से पढ़ाते-समझाते और साहित्य-जगत की नयी गतिविधियों एवम् चिन्तन धाराओं से परिचित कराते। आगे चलकर हिन्दी के प्रति जो मेरा स्वाभाविक प्रेम बना रहा, उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे गुरू जी को ही है, जिन्होंने 'यशोधरा' की व्याख्या समझाने में राष्ट्रकवि के साथ बिताये गये अपने उन मधुर क्षणों से भी हमें परिचित कराया, जब वे एक इंजीनियर परिवार के साथ चिरगाँव गये थे। चूँकि गुरू जी ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी से प्रत्यक्ष मिलकर उनके काव्यों के भाव एवं शिल्प को उन्हीं के श्रीमुख से सविस्तार समझा था, अतः उनके अध्यापन में सदैव ज्ञान सम्बन्धी आत्मविश्वास की एक अनोखी गरिमा रहती थी। यही कारण था कि मैं अपने विद्यार्थी जीवन में गुरू श्री दुबे जी से सर्वाधिक प्रभावित रहा।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अपने सेवाकाल में जब वे सहायक एवम् परीक्षा-मंत्री के

पद पर विद्यमान थे, उन्हें प्रतिदिन भाँति-भाँति के आलोचनात्मक एवम् व्यंग्य भरे पत्र प्राप्त होते थे। इनसे प्राप्त अनुभवों का सार वे समिति की मुखपत्रिका 'राष्ट्रभाषा' में 'आलूचना' शीर्षक में दिया करते थे। कालान्तर में इसी का संकलन पुस्तकाकार में अलग से प्रकाशित हुआ। परीक्षा-मंत्री के रूप में दुबे जी की ख्याति अप्रतिम थी। कुछ लोग परिहास में उन्हें 'रिक्षा-मंत्री', कोई 'परीक्षा दयाल दुबे' तो अन्य लोग 'समिति दयाल दुबे' आदि सम्बोधनों से पुकारते थे। इसका एक मात्र कारण गुरू जी का परीक्षा विभाग में नख-शिख तक शृंगार-प्रसाधन की भाँति रच-बस जाना था। इस प्रकार दुबे जी 'परीक्षा' शब्द के पर्याय बन चुके थे।

समिति के अत्यधिक उच्च एवं महत्वपूर्ण पदोंपर कार्यरत रहकर भी अपनी निस्पृह हिन्दी-सेवा और साहित्य-साधना के कारण दुबे जी ने अपने सम्पर्क में आये व्यक्तियों के हृदय में स्थान अवश्य पा लिया है, किन्तु हिन्दीं-संसार ने सम्भवतः वह स्थान नहीं दिया है, जिसके वे योग्यतम अधिकारी हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि गुरू जी राजनीतिक दाँव-पेच से पूर्णतः विरक्त रहे हैं। आज की उठाओ एवम् गिराओ की दलगत और स्वार्थ पूर्ण नीतियों से दूर रहकर मौन साधक के रूप में उन्होंने अपने जीवन की तपश्चर्या को अधिकाधिक आधार बनाया है। किन्तु युग के अनुरूप अपनी जीवन शैली को न ढाल पाने का उन्हें समय-समय पर दुष्परिणाम भी भुगतना पड़ा है। फिर भी—

वह पथ क्या, पथिक सफलता क्या, जिस पथपर बिखरे शूल न हों।

नाविक की धैर्य—परीक्षा क्या, यदि धारायें प्रतिकूल न हों ॥

समष्टि रूप में मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि समादरणीय पंडित जी ने अपने सहज औदार्य से मुझ में हिन्दी साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न की। कलम पकड़ कर मन के भावों को शब्दों में बाँधने की आज जो कुछ भी क्षमता मुझ में है, उसका सारा श्रेय उन्हीं को है। मंच पर खड़े होकर वाणी द्वारा अभिव्यक्ति की जो कुछ भी क्षमता आयी, वह उन्ही की देन है। अपने छात्र—जीवन में गुप्त जी, प्रसाद जी, महादेवी, पन्त, निराला, दिनकर आदि हिन्दी की काव्य विभूतियों तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद जी द्विवेदी तथा अन्य समर्थ समालोचकों की रचनाओं के सौन्दर्य के सम्बन्ध में महाविद्यालय की कक्षाओं में अध्यापन के अतिरिक्त घर के बाहर खुले मैदान में घण्टों चर्चा करते तथा उस सौन्दर्यपान की ललक पैदा करने का श्रेय उन्हें नहीं है, ऐसा कहने का दुस्साहस कैसे कर सकता हूं? दुबे जी की आत्मीयता और उनके प्रबल अनुराग की रेशमी डोर में बँध कर ही मेरा जीवन धन्य हुआ है।

उनका सामीप्य, स्नेह और साहचर्य मेरी उपलब्धियों का सबसे कीमती रत्न है और रहेगा। यदि वास्तव में गुरू वह है, जो शिक्षा एवम् दीक्षा दोनों को समान रूप से अपने शिष्य को देता है तो निश्चय ही दुबे जी ने अपने आप को मुझ में भली प्रकार उतार कर मुझे सही मायने में दीक्षित किया है।

[वर्धा]

दुबे जी घर में

शीला देवी दुबे

इधर जब से श्री दुबे जी [रामेश्वर दयाल दुबे] का 'कोणार्क' खण्डकाव्य कुछ विश्वविद्यालयों में बी० ए० के पाठ्यक्रम में आ गया है, तब से जगह-जगह से ऐसे पत्र आते हैं, जिनमें इनका जीवन-परिचय जानने की जिज्ञासा रहती है। ऐसे पत्र यह प्रायः मेरे सामने रख देते हैं, और कहते हैं कि बताओ इन्हें क्या भेजा जाय ? 'साहित्यरत्न' होकर भी तुम मेरा जीवन-परिचय नहीं लिख सकती ? जैसे मुझे और कोई काम ही नहीं है, या जीवन-परिचय लिखने के लिए मेरे सिवा और कोई उपयुक्त है ही नहीं। फिलहाल यह तो सभी जानते ही हैं कि वे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के तीस वर्ष से भी अधिक समय तक सहायक-मंत्री और परीक्षामंत्री रहे हैं, कविताएं लिखते हैं, नाटक लिखते हैं, फिर और क्या जानना चाहते हैं ? तब यह कहते हैं–'अपना 'साहित्य-रत्न का सर्टीफिकेट उठा लाओ, उसे फाड़फूड़कर समाप्त कर दूँ। तुम यह भी नहीं समझती कि किसी कवि और लेखक का जीवन-परिचय क्या होता है ?' मेरा सहज उत्तर होता हैं जब मैं जीवन-परिचय लिखने बैठूँगी, तब मैं कुछ छोड़ूँगी नहीं। है मंजूर ? तब कहते हैं–'लिखो तो सही।

और आज मैं वही करने जा रही हूं। राजेन्द्र बाबू ने एक स्थान पर लिखा है किसी के जीवन को उसके नौकर से अच्छा दूसरा कोई नहीं समझता, क्योंकि उसे उसके साथ रहकर उसके जीवन के सभी कामों को देखने का मौका मिला करता है। यह भले न मानें, किन्तु मुझे इनकी चाकरी करने को मिली है, इसलिये क्या नही देखा।

इनका दैनिक जीवन बहुत तड़के शुरू होता है।

नित्य ही पाँच बजे उठते हों—ऐसी बात नहीं। कभी-कभी चार बजे या तीन बजे ही उठ जाया करते हैं। तब चुपके से उठ कर अपने लिखने-पढ़ने की बैठक में पहुँच जाते हैं और वहाँ जाते समय धीरे से दरवाजा बन्द कर लेते हैं, ताकि बिजली की तेज रोशनी मेरी खाट पर न आये। जब-जब इस तरह समय की चोरी करते हैं, तब मैं खीजती हूं। मेरा कहना होता कि रात में तो अच्छी तरह सोएं। कई बार जब मैं कुछ देर से जग कर बैठक में पहुंचती हूं, तो देखती हूं कि या तो किसी फायल के कागज-पत्र इधर-उधर रखने में लगे हैं, अथवा कुछ लिख रहे हैं। मैं पूछती हूं कब उठे थे ? तो उत्तर मिलता है—'यही चार से पहले'। मैं मान लेती हूं कि चार से पहले का अर्थ तीन बजे से कम न होगा। मेरी खीज को बहलाने के लिए कभी कहते हैं—'तुम बड़े मौके से आई। देखो क्या बढ़िया चीज पढ़ने को मिली है।' और फिर कभी रविशंकर महाराज का कोई किस्सा पढ़ सुनाते हैं, तो कभी गांधी जी का संस्मरण। कभी-कभी तो अपनी बन रही कविता की कुछ पंक्तियाँ सुनाने लगते हैं।

ये रोज तो कविता लिखते नहीं, लेकिन जिस दिन लिखते हैं, उस दिन इनकी कुछ अजीब हालत होती है। चाहते हैं कि जैसे-जैसे कविता बनती जाए, कविता के पद सुनती जाऊँ। अब कोई बताए कि अगर कविता सुनते रहने के लिए इनके पास बैठा रहा जाए, तो घर के काम कब हों ? घर के काम मुझे बुला लेते हैं, मैं उठ आती हूं। तब जहाँ कहीं होती हूं, नई बनाई हुई कविता लेकर पहुँच जाते हैं और कहते हैं—'तुम एक कवि की पत्नी हो, इसलिए कविता सुनने का दंड तो मिलेगा ही।' तब मुझे जैसी भी हालत में हुई, जो कुछ भी करती हुई, कविता सुननी पड़ती है। अन्त में पूछते हैं 'कैसी लगी ? बढिया है न ?' मैं कह देती हूं बहुत अच्छी है। केवल उन्हें प्रसन्न करने के लिए नहीं, इसलिए भी कि मुझे सचमुच अच्छी लगती है। ये प्रसन्न होकर अपनी बैठक में चले जाते हैं और मैं सोचती रह जाती हूँ कि ये रोज रोज नई सुन्दर कविताएँ कैसे लिख लेते हैं ?

सुबह उठते ही सीधे घर के पीछे वाले खेत में पहुँच जाते हैं, जहाँ कुछ साग-सब्जी लगा रखी है। छोटी खुरपी से यहाँ खोदा, वहाँ खोदा, लकड़ी गाड़ी, बेलें पौड़ाई, पौधों के सूखे पत्ते तोड़े, बाल्टी में भर-भर पानी दिया। अपने काम में इतना रम जाते हैं कि यह भी नहीं देखते कि साढ़े सात बजने आए। जब खेत से आते हैं, तब कुछ बैंगन लिए अथवा तोरई-लौकी लिए हुए। मुझे देते हुए एहसान-सा दिखाते हुए कहते हैं, 'लो देखो, कैसी बढ़िया ताजी तरकारी है। लाओ रखो मेरे हाथ में आठ आना

पैसे।' साग-सब्जी देख कर किसे अच्छा नहीं लगता ? मगर मैं तो खीजती हूं इस बात पर कि साढ़े सात बजने आए, अभी तक कुल्ला भी नहीं किया। तब आप जानते हैं, क्या जवाब मिलता है ? यही कि–'मैं तो कल ही कुल्ला कर चुका हूं।' तब सिवा मुस्कराने के और क्या कहा जाए ?

तरकारी तो जब खेत में होती है, तब लाते हैं, मगर एक चीज लाना नहीं भूलते। वह है छोटी-मोटी सूखी लकड़ी। मेंहदी की सूखी पतली लकड़ी चुल्हे में जलाने के लिए। मैं जब कहती हूं–यह क्या कचरा ले आये हो ? यह कोई इंधन तो नहीं है, जो चूल्हे में जलाया जाय ? तब मुझे गांधी जी की मितव्ययता पर एक व्याख्यान सुनने को मिलता है। ये कहते हैं–'गांधी जी जब दातौन करते थे, तब दातौन करने के पश्चात उसे धोकर एक जगह रखते जाते थे। जब इकट्ठी हो जाती थी, तब चूल्हे में उन्हें जलाया जाता था।'

मैं कहती हूं–यह सूखी दातौन तो नहीं, पौधों की सूखी शाखाएं और कांटे हैं। तब कहते हैं–'इनका और कुछ तो हो नहीं सकता। इधर-उधर फेंक दें, तो कचरा बन कर पड़ा रहेगा। खाद भी आसानी से नहीं बन सकती। चूल्हे में जल कर तो राख बन जाएगा। कचरा भी दूर होगा और खाद भी बनेगी।

मैं कहती हूं ऐसा भी इंधन किसी को जलाना पड़ता होगा ? तब हँसते हुए कहते हैं कि–'ऐसा इंधन तो इंदिरा गांधी को भी नहीं मिलता होगा।' मैं इनकी बातों में लग जाती हूं। मेरा ध्यान तब बँटता है, जब स्टोव पर उबलता हुआ दूध उफन कर नीचे गिरने को होता है।

वार-वार कहने पर जब कुल्ला कर लेते हैं, तब नाश्ते के लिए ऐसी बेचैनी दिखाते हैं, मानों दो घण्टे से कुल्ला किए बैठे हों। जहाँ कहीं खड़े या बैठे होते हैं, वहीं नाश्ता ले लेना चाहते हैं। मैं चाहती हूं कि नाश्ता टेबल पर लें। आखिर टेबल पड़ी है। टेबल पर न सही, पाटा पर बैठ कर ही लें। मगर इन्होंने अपनी आदत नहीं छोड़ी। कितनी-कितनी बार कहा, मगर बेकार। अब तो यही कहना होगा कि न समझे हैं, न समझेंगे।

अपने शरीर सम्बन्धी कामों के बारे में जितने ये सुस्त हैं, समिति के कामों के बारे में

उतने ही चुस्त। पिछले पचीस वर्ष से देखती आ रही हूँ। समय पर कार्यालय पहुंचने की ये नित्य तत्परता दिखाते हैं। अपने लिखा-पढ़ी के कामों में ऐसे व्यस्त रहते हैं कि जब तक कार्यालय की पहली घंटी नहीं सुन लेते, अपना काम नहीं छोड़ते। घंटी सुनकर दौड़े-दौड़े आते हैं और जल्दी-जल्दी आठ-दस लोटे पानी अपने बदन पर डाल लेते हैं। यह हो गया इनका स्नान। सफाई की बात बहुत करते हैं, मगर रगड़ कर नहाने के लिए इनके पास समय नहीं। जल्दी-जल्दी भोजन करते हैं। और यह सारी जल्दी रहती है निश्चित समय पर कार्यालय पहुँचने की। कितनी बार कहा कि घंटी बजने के पहले ही उठ आया करें, तेल की मालिश कर लें, रगड़ कर नहा लें, किन्तु सब बेकार।

इनकी एक बात, जो मुझे खिजाती है, वह है अपने कपड़ों के प्रति इनकी लापरवाहीं। कोई भी व्यक्ति जब कपड़ा पहनता है, तो यह देख ही लेता है कि कपड़े की सीधी सीवन ऊपर है न? उल्टी सीवन तो ऊपर नहीं है। मगर सैकड़ों वार मुझे टोकना पड़ा है कि बनिआइन उल्टी पहन ली। कभी-कभी तो सीधी कर लेते हैं, कभी जल्दी के कारण उल्टी बनिआइन पर ही कुर्ता पहन कर चले जाते हैं। कहते हैं उल्टी-सीधी बनिआइन में इतना क्या अंतर है।

इनका महान स्नान रविवार को होता है। तब बदन रगड़ कर नहाते हैं। जब मैल निकलता है तब खुद ही कहते जाते हैं–'राम-राम! कितना मैल है। ऐसी भी क्या जल्दी कि रोज रगड़कर नहीं नहाते!' जो कुछ मुझे खीजकर कहना चाहिए, वह स्वयं ही कहते जाते और मुझसे कहते हैं–'तुम्हारे कहने का काम मैं ही किये डालता हूं।' अब ऐसे आदमी से क्या बस चले?

आफिस बन्द होने के बाद ही घर आते हैं। घर में पली हुयी गाय का कुछ काम करने के बाद खाना खाया कि फिर बैठक में पहुंच जाते हैं और पढ़ाई-लिखाई शुरू हो जाती है। पत्र-पत्रिकाओ से विभिन्न विषयों पर कटिंग इकट्ठी करने का इन्हें एक अनोखा शौक है। इनकी बैठक में पचासों फाइलें हैं। भानमती का कुनबा जोड़ रखा है। किसी व्यक्ति के विषय में जानकारी चाहिए, किसी स्थान की जानकारी चाहिए, त्योहारों की जानकारी, बृक्ष, पशु-पक्षी, किसी भी विषय पर विभिन्न जानकारी इनकी फाइलों में रहती है। विभिन्न व्यक्तियों के प्रेरणाप्रद प्रसंग, महानपुरुषों के विनोद, उनकी सूक्तियाँ, शायरों की फड़कती शेर, सब कुछ इनके संसार-चक्र में हैं। विषयों के वर्गीकरण और फाइलों में उन्हें रखने के काम में जब लग जाते हैं, तब सब कुछ भूल जाते हैं। कई वार ऐसा होता है कि कुछ खाने को रख आती हूं, तो रखा ही रह जाता है। दस-साढ़े दसबजे से पहले कभी सोते नहीं। तब तक इनका यह ज्ञानयज्ञ चलता ही रहता है। बीच-बीच में

किसी महत्व के समाचार की, विनोदी प्रसंग की, अथवा चरित्र-निर्माण करने वाली किसी महापुरुष के कथन की प्रसादी मुझे भी मिल जाती है।

वर्धा में रविवार को बाजार लगता है। यह बाजार हमारे घर से काफी दूर है। उस दिन दूर-दूर से गाड़ियाँ आती हैं। साग-सब्जी अच्छी और सस्ती मिलती है। इस बाजार में जाना ये नहीं भूलते और साग-सब्जी और मौसम की चीजें झोले में भर कर हाथ में लटकाए हुए लौटते हैं। मैंने कितनी वार कहा कि इतनी दूर क्यों जाते हैं? जाना ही है, तो घर पर साइकिल है, साइकिल से चले जायें। झोला साइकिल में टाँग सकेंगे, जल्दी भी आ जायेंगे। मगर हमारी बात इन्होंने कभी नहीं मानी। पैदल ही जावेंगे, झोला लाद कर ही लावेंगे।

एक दिन मैने जब आग्रहपूर्वक इस जिद्द का कारण पूछा तो बोले—"अरे! सप्ताह में एक दिन तो मिलता है, जब लोगों की भीड़-भाड़ में पहुँच पाता हूं। न जाने कितने परिचित लोगो से मिलने का, नमस्ते करने का मौका मिलता है। और फिर झोला लाने में जो श्रम हो जाता है, वह तो होना ही चाहिए। बापू की नगरी में रहता हूं।"

एक दिन मैंने जब कहा कि भारी झोला लटकाकर तुम आते हो, मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे पद के अनुकूल नहीं। तो उन्होंने उस गड़रिये की कहानी कह सुनाई, जिसे किसी राजा ने अपना मन्त्री बना लिया था, और जो दरबार में तो मंत्री के कपड़े पहन कर काम करता था, मगर दिन में एक वार एकान्त एक कोठरी में पहुंचकर अपने राजसी कपड़े उतार कर अपनी पुरानी फटी बंडी पहनकर कन्धे पर कम्बल डालकर बड़े शीशे में अपने इस रूप को देख लिया करता था। कहने लगे—'मेरे इस झोला लाने को वैसा ही कुछ समझ लो। समिति का परीक्षा-मंत्रित्व ऐसा ही दरबारी काम हैं।

जब इन्हें समिति के काम से या पढ़ने-लिखने के काम से ही फुरसत नहीं मिलती, तब घर का कोई काम करने के लिए मैं इनसे कैसे कहूं? जहाँ तक बनता है घरेलू सब काम स्वयं करने का प्रयत्न करती हूं, किन्तु कभी-कभी कोई छोटा काम करने के लिए कहना पड़ता है। तब यह उसे कर तो देते हैं; परन्तु उसको दस वार कहते हैं। मैं एक उदाहरण दूँ—एक दिन पाटा-थाली रख दी थी, पानी का गिलास रखना छूट गया। मैं परोसने में लग गई। मैने कहा—'एक गिलास पानी ले लेना।'

इन्होंने पानी तो रख लिया, किन्तु फिर आदर्श वाक्यावली शुरू हुई—"मैं पानी रख लेता हूं। पानी रखना ही चाहिए। घर में सहयोग से ही काम चलता है। तुमने खाना

बनाया, परोसा। मैने पानी रखा। घर के काम मिल-जुल के ही करने चाहिए। अब लो मैंने पानी रख लिया, तो इसमें मेरा क्या गया ? आखिर तुमने भी काम किया। मैंने पानी रख लिया। क्यों ठीक है ? देखो मैने, पानी रख लिया।''

सहकारिता पर इस भाषण को सुनकर किसे हँसी न आवेगी। पानी का एक गिलास क्या रख लिया—मानो रसोई घर का आधा काम ही इन्होंने कर डाला हो। खाना खाते-खाते भी दस बार कहेंगे—''देखो मैने पानी रख लिया, घर के काम करने में क्या शर्म? मैंने पानी रख लिया।'' अब ऐसे कमेरू व्यक्ति से क्या कहा जाय ?

छोटे बच्चे इन्हें हृदय से ज्यादा प्यारे हैं। एक-दो बच्चे से इनका जी नहीं भरता। चाहते हैं कि झुंड के झुंड बच्चे इनके आसपास रहें और ये उनके साथ खेलते रहें। कार्यालय बन्द होने के पश्चात अगर सीधे घर चले आवें, तो दो मिनट नहीं लग सकते। मगर नित्य ही सौ गज का रास्ता ये पन्द्रह-बीस मिनट में पूरा करते हैं। कार्यालय से निकलने के बाद प्रांगण में खेलने वाले छोटे-छोटे बच्चों के साथ छेड़खानी न कर लें, उन्हें प्यार से पीट-पाट न लें, तब तक इन्हें चैन ही नहीं मिलता। किसी बच्ची की चोटी दूसरी बच्ची की चोटी से बाँध देते हैं, तो किसी बच्चे को गुदगुदाते जाते हैं, तो किसीको प्यार की थपकियाँ देते जाते हैं। बच्चे भी इनसे इतने हिल गये है कि बच्चे उनके बिना कहे इनके सामने नाचते हैं, गाते हैं और कबड्डी खेलने का चेलेन्ज देत हैं।

बालमंदिर खोल कर बच्चों की सेवा करने की इनकी वड़ी अभिलाषा थी। इसके लिए इन्होंने मुझ विवश किया कि मैं बालमंदिर की शिक्षिका की ट्रेनिंग प्राप्त कर लूँ। घर का काम सम्हालते हुए दस महीने की ट्रेनिंग आज से वर्षों पहले मैंने पूरी की थी। किन्तु इनके सपनों का बालमंदिर अभीतक खुल नहीं सका। बच्चों के लिए इन्होंने तरह-तरह के छोटे गीत और कहानियाँ लिखी हैं।

जितना इन्हें बालकों से प्रेम है, उतनी ही उनके पालकों से इन्हें चिढ़ है। इनका कहना है कि पालकों को बच्चे-पालने की तमीज नहीं। नायलोन के कपड़े बनवा देना, लेमनजूस दे देना, स्कूल भेज देना—यह तो पालना नहीं है। उचित ढंग से पालने के लिए संस्कारी बनाने के लिए समय देना पड़ता है, बहुत कुछ करना पड़ता है। 'आपके बच्चे' नामक छोटी पुस्तिका में इन्होंने अपने विचार लिखे हैं, जो सचमुच ही मननीय हैं।

अपने सेवाकाल में नवम्बर महीने में ये बच्चों का एक मेला आयोजित करते रहे हैं। वर्धा के सभी बालमंदिरों के बच्चे समिति के प्रांगण में आते थे, अपना कार्यक्रम प्रस्तुत

करते थे। उस दिन इनके हर्ष की कोई सीमा नहीं रहती थी। सुन्दर स्वस्थ बच्चे को गोद में उठाकर इतना प्रसन्न होते थे कि इनके सिर के पीछे गर्दन के निकट नसों में दर्द होने लगता था। इनका कहना था कि यह तो उनकी खुशी का बैरोमीटर है। जब इन्हें किसी विषय पर बेहद खुशी होती है, तब गर्दन की नसों पर तनाव पड़ता है, दर्द होने लगता है, जो थोड़ी देर में कम हो जाता है।

इनकी कल्पना-शक्ति कविता, कहानी, नाटक लिखने में तो लगती ही हैं, तरह-तरह की छोटी-मोटी चीजें बनाने में भी इन्हें बड़ा रस आता है। आज तोरई की सूखी झाँझ से गांधी टोपी बनाई जा रही है, तो कल चिड़िया के चित्रों को काट कर सूखी डाल पर बिठाया जा रहा है। कुछ वर्ष पहले ज्वार के जड़ वाले हिस्से से एक 'ज्वार रानी' बनाई थी और उसके एक वर्ष बाद ही मक्के के भुट्टे को उलटा खड़ा करके उसे एक स्त्री का रूप दे दिया था। भुट्टे के ऊपर जो सफेद पत्ते होते हैं, वह ही इस नारी की सफेद साड़ी थी। इनकी इस प्रवृत्ति के कारण मेरा घर एक तरह से म्यूजियम बन गया है।

कचरे से कंचन बनाने का इन्हें अजीब शौक है। कोई अनुमान भी न कर सकेगा कि कविता-नाटक लिखने वाले दुबे जी बढ़ईगीरी का काम भी करते होंगे। आरी, बसूला, पटासी, सब इनके पास है। मणिपुर का एक बढ़ई वर्धा आ गया था। हिन्दी सीखने का उसे अजीब शौक था। दिन भर वह बढ़ईगीरी का काम करता था। बढ़ईगीरी करके पैसे कमाता था और रात को दुबे जी उसे हिन्दी पढ़ाते थे। इस बढ़ई से कुछ आत्मीयता बढ़ गई। वह मणिपुर जाकर वापस आने वाला था। पैंतीस रुपये उधार लेकर वह चला गया, आज तक वापस नहीं आया। उसके मामूली-से चार-छह औजार घर पर पड़े हैं। उन्हीं की सहायता से दुबे जी अपना कामचलाऊ बढ़ईगीरी का काम कर लेते हैं।

पेन्टिंग [चित्रांकन] का इन्हें कभी शौक था। इनके द्वारा बनाया हुआ हिमालय का एक दृश्य आज भी कमरे की शोभा बढ़ा रहा है, पर अब चित्र नही बना पाते हैं। परन्तु जब लहर आती है, तब कैंची कागज और पुराने चित्रों की सहायता से बड़ी आकर्षक कलाकृतियाँ बना डालते हैं। प्रायः कहा करते हैं कि–'कितना मजा आता, यदि मैं चित्रकार भी बना रहता।'

बच्चों के लिए कन्डील बना देना, खिलौने बना देना, इनके बाँये हाथ का खेल है। और तो और, चप्पल का यदि पट्टा टूट जाय, तो उसे भी ठीक करने बैठ जाते हैं। ये सब काम कर सकते हैं मगर खाना बनाने से जी कतराते हैं। बाजार की चीजें या भोजन इन्हें पसन्द नहीं। दूध, फल, खजूर, ब्रेड, बिस्कुट आदि से काम चला सकते, हैं, किन्तु

गैस चूल्हे पर भी प्रेसर कुकर में भी खाना बना लेना इनके लिए पहाड़ से कम भारी नहीं। इनके इस आलस्य पर बलिहारी !

छोटी-मोटी व्यर्थ की चीजें इकट्ठी करना और उन्हें रखे रहने का भी उन्हें अजीब शौक है। डाटपेन की खाली रिफिलें, शीशियों के ढक्कन, प्लास्टिक के टुकड़े, तार के टुकड़े और न जाने क्या-क्या ! सब कुछ डाल रखा है। मैंने कई वार कहा है कि यह कचड़ा-कूड़ा क्यों इकट्ठा कर रखा है ? तब किसी अंग्रेजी कहावत का जिक्र करते हुए इनका कथन होता है कि 'कौई चीज सात वर्षतक रखो, तब उसका उपयोग मालूम होगा' और सचमुच कभी-कभी जरूरत पड़ने पर ऐसी चीजें भी इनके 'कचरेखाने' में मिल जाती हैं, जिसे पैसा देकर भी प्राप्त करना कठिन होता है।

मैं यह जानती हूँ कि दुबे जी का यह परिचय किसी लेखक, कवि या साहित्यकार का परिचय नहीं है, इसलिए यह किसी विद्यार्थी के लिए उपयोगी न होगा। इस प्रकार के परिचय लिखने की मेरी इच्छा भी न थी। पर दुबे जी की चुनौती स्वीकार ही करनी पड़ी। लिखा तो बहुत कुछ जा सकता है, किन्तु लेख की भी कोई सीमा होती है। इस लिए इस लेख को यहीं समाप्त करती हूँ। भले ही यह लेख विद्यार्थियों के लिए उपयौगी न हो, परन्तु दुबे जी के मित्रों को, जिनकी संख्या कम नहीं है, यह लेख अवश्य कुछ विशेष जानकारी देगा। ऐसी तमाम बातें लिख डालने के लिए दुबे जी से क्षमा माँग तो सकती हूँ, पर वह मिलेगी, इसमें सन्देह ही है।

['राष्ट्रवीणा' से उद्धृत]

दुबे जी का घर-संसार

नर्मदा शंकर पांडेय

यह मेरा सौभाग्य ही है कि पं० रामेश्वर दयाल दुबे के घर से मैं तब भी परिचित था, जब वे वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परिसर में रहते थे तथा वर्तमान उस घर

से भी मेरा परिचय है, जिसे उन्होंने 'चित्रकूट' की संज्ञा दी है और जो लखनऊ के निरालानगर कालोनी में स्थित है।

मुझे सदैव ही ऐसा लगा है कि दुबे जी के घर में ऐसा बहुत कुछ था और है,जिसके बारे में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। पहले वर्धा स्थित घर के बारे में ही बताना चाहूँगा।

समिति परिसर में भीतरी सड़क के किनारे पहला मकान दुबे जी का निवास-स्थान था। द्वार पर मालती लता अपने गुच्छेदार फूलों में हँस रही थी, पर मेरा ध्यान खींचा कैक्टस की कँटीली नायिका ने। दरवाजे के बाँई ओर एक अनोखी अदा में यह कैक्टस नायिका खड़ी थी। वायाँ हाथ कमर पर था, दाँया उठा हुआ था। नृत्य की यह मुद्रा मनोहर थी। सम्पूर्ण शरीर में काँटो की साड़ी लपेटे खड़ी 'केक्टस नायिका' प्रत्येक आगत का स्वागत करती-सी दिखाई देती थी।

यह जानकर आश्चर्य हुआ, आनन्द भी हुआ कि इस कँटीली नायिका का निर्माण श्री दुबे जी ने स्वयं किया है। केक्टस की शाखाओं को इधर मोड़ा, उधर मोड़ा और केक्टस के कँटीले पौधे ने नायिका का रूप धारण कर लिया। नायिका के साथ दुबेजी का एक फोटो भी उनके एलबम में मुझे देखने को मिला।

दुबे जी के छोटे-से बाहरी कमरे में, जिसे उनकी बैटक कहना उचित होगा, प्रवेश करने पर सहज मेरी दृष्टि दीवारों पर अटक गई। दीवार में बनी अलमारी के दोनों ओर दो काठ की तख्तियाँ लटक रही थीं, जिन पर लिखा हुआ था—

(१) सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती, मुट्ठी में मन चाही।
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही॥

(२) कबिरा गर्व न कीजिये, काल गहे कर केश।
ना जाने कित मारिहै, क्या घर क्या परदेश॥

पहली रचना क्या आपकी है? पूछने पर श्री दुबे जी ने बताया-यह रचना श्री माखनलाल चतुर्वेदी की है। दूसरीं तो कबीर की है ही। पहली कविता मुझे शक्ति देती है, मेरा उत्साह बढ़ाती है। जीवन-पथ पर मेरी स्पीड (गति) बढ़ाती है, वहीं

कबीर का दोहा कुछ सोचने के लिए विवश करता है। मेरे अहम पर ब्रेक लगाता है. रुकावट का काम करता है।

मेरा ध्यान उस गोलाकार थाली जैसी चीज पर गया, जिसमें सुन्दर अक्षरों में 'हिन्दीगीत' पेन्ट से लिखा था। मैंने कहा—"आपका 'हिन्दीगीत' भारत जननी एक हृदय हो' तो विशेष लोकप्रिय हो चुका है। अच्छा ही किया कि आपने इसे पेन्ट कराकर अपने कमरे में स्थान दे दिया।"

"यह थालीनुमा अलंकरण कागज की लुगदी से बना हुआ है। समिति के रजत-जयंती महोत्सव के अवसर पर 'कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की ओर से बहुत-सा सामान प्रदर्शनी में रखने के लिए आया था। कश्मीर समिति के कार्यकर्ता ने उनमें से इसे मुझे भेंट किया था। इसका सदुपयोग करने के लिए समिति के एक कलाकार कार्यकर्ता बराहने ने इस पर 'हिन्दी गीत' को पेन्ट कर दिया। तब से यह मेरे कमरे की शोभा बढ़ा रहा है।" श्रीदुबे जी ने कहा।

मेरा ध्यान एक दूसरे चित्र की ओर गया। मैंने कहा, यह चित्र तो वाटर पेन्टिंग है। कहाँ का दृश्य है ?'

श्री दुबे जी ने बताया—'इस चित्र की एक कहानी है। सन् १९३७ की बात है। उन दिनों मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा चलाये जाने वाले 'राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर में सहशिक्षक का काम करता था। श्री मैथिलीशरण गुप्त का प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' पाठ्यक्रम में था। पढ़ाते-पढ़ाते किसी अंश के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए मेरे मुख से निकल जाया करता था—'यदि मैं चित्रकार होता, तो इस पर एक अच्छा—सा चित्र बनाता।'

श्री वामनचन्द्र बसु नाम का एक बंगाली विद्यार्थी था। उसको 'साकेत' पढ़ने में विशेष आनन्द आता था। क्लास के बाद भी वह प्रायः साकेत के सम्बन्ध में चर्चा करता था। उसने मुझे इस बात की भी जानकारी दी थी कि उसका एक मित्र है, जो चित्रकला का अच्छा जानकार है।

उस वर्ष का सत्र समाप्त होने पर सभी छात्र अपने-अपने प्रदेश को लौट गये। लग-भग डेढ़ वर्ष बाद अचानक श्री वामनचन्द्र वसु का एक पत्र मुझे मिला और रजिस्ट्री से यह चित्र मिला।

९६५३ प्रकाशन

इस चित्र में साकेत के उस प्रसंग को चित्रित किया गया है, जब श्री हनुमान द्वारा सीता-हरण का दुखद समाचार सुनकर अयोध्या के राजमहल में दुख का पारावार ही नहीं उमड़ पड़ा था, क्रोध की आग भी प्रज्ज्वलित हो उठी थी।

श्री दुबे जी ने अलमारी से साकेत निकाल कर मुझे वह प्रसंग पढ़ सुनाया–

"अब क्या है बस. वीर सामने छूटो-छूटो।
सोने की उस शत्रुपुरी को लूटो-लूटो" ॥

"नहीं-नहीं" सुन चौक पड़े शत्रुघ्न और सब।
ऊषा-सी उर्मिला आ गयी उसी ठौर तब ॥

आ शत्रुघ्न समीप रुकी लक्ष्मण की रानी।
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी ॥

जटा-जाल–से बाल विलम्बित छूट पड़े थे।
आनन पर सौ अरुण घटासे फूट पड़े थे ।.

माथे का सिन्दूर सजग अंगार सदृश था।
प्रथमातप-सा पुण्य गात्र.यद्यपि वह कृश था ॥

बाँया कर शत्रुघ्न-पृष्ठ पर कंठ निकट था।
दायें कर में स्थूल किरण-सा शूल विकट था ॥

चित्र दिखाते हुए श्री दुबेजी ने कहा–कुशल चित्रकार ने गुप्तजी के शब्दों को रंग देकर कितना सुन्दर और स्वाभाविक चित्र बनाया है। दो कलाकारों की समन्वित कृति और अधिक सुन्दर होनो ही चाहिए। काश यह चित्र प्रकाशित हो पाता।"

एक दीवार पर कटे हुए सिलेटी आर्ट के दो काले अलंकरण शोभा पा रहे थे। मैंने पूछा–"ये कागज के हैं"। दुबेजी का उत्तर था–"नहीं, यह बेकार पड़ी हुई टीन के हैं" उनका परिचय देते हुए दुबेजी ने बताया–

"एक वार बम्बई में शिवाजी पार्क के पास रहने वाले अपने मित्र डा० जगदीशचन्द्र जैन के यहां गया था। उनके ड्राइंग रूम में कुछ इसी शैली के अलंकरण मैंने देखे थे। पूछने पर डाक्टर साहब ने बताया था कि पिछले दिनो वे चीन गये थे।

चीन में व्यर्थ पड़ी टीन को कैंची से काट-काट कर फिर उसे काले पेंट से रंगकर सफेद दीवारों पर अलंकरण के रूप में टाँगते हैं ।

यह विवरण ध्यान में रहा और उसी पद्धति से मैंने स्वयं ये तीन अलंकरण बनाये हैं । यह हैं– कृष्ण, राम और शिव के प्रतीक– मुरली मोर पंख, धनुषबाण और त्रिशूल । दूसरा अलंकरण है अहल्या उद्धार का । विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण खड़े हैं । सामने अहल्या प्रणाम करती हुई दीख रही है । और तीसरा चित्र है पंचवटी का । सीताजी स्वर्ण मृग की ओर संकेत कर (जो दूर पर खड़ा है) राम से उसे मार लाने का अनुरोध कर रहीं हैं ।

निश्चय ही ये तीनों अलंकरण सफेद दीवार की पार्श्वभूमि में बड़े सुन्दर लग रहे थे । दुबे जी ने मुझसे कहा– " लगता है आप को ऐसी चीजे देखने में आनन्द मिलता है । तब तो और चीजें भी दिखा सकता हूँ ।"

मेरे दुबारा हाँ कहने पर वे मुझे पास के कमरे में ले गये । वहाँ दो चित्र टँगे थे । दुबे जी ने मुझसे पूछा – " बताइये यह चित्र किस पर बनाया गया है ?"

मै ध्यान से देखने लगा । कागज तो था नहीं, कपड़ा भी नहीं था । मधु-मक्खी के छत्ता जैसा कुछ था । निश्चय रूप से मै कुछ न बता सका तब दुबेजी ने दूसरे चित्र के बारे में भी वही प्रश्न किया । मैने उसे भी ध्यान से देखा । न वह कागज था न कपड़ा । टाट का टुकड़ा भी नहीं था । मैं कुछ बता न सका ।

दुबे जी ने कहा– "मैंने तो इन चित्रों में अता पता भी दिखा दिया है ।" मैंने दुबारा दोनों चित्रों को ध्यान से देखा, पर कुछ न बता सका, तब दुबे जी ने ही बताया— " पहला चित्र पपीते के तने पर बना है; इसीलिए तो संकेत के लिए उस पर पपीते के पेड़ का चित्र है । और यह दूसरा चित्र नारियल की उस जटा पर बना है, जो तने के पास लिपटी रहती है । इसे मैं आन्ध्रप्रदेश के कडप्पा शहर के एक बगीचे से लाया था । उसी पर नारियल के पेड़ का चित्र बनाया गया था ।

इस अनोखी सूझ पर मुझे दाद देनी पड़ी । दुबेजी के घर में किसी अजायब घर की भाँति और भी कई चीजें थीं, जो अपने आसपास इतिहास लपेटे हुए कमरे की शोभा बढ़ा रही थीं ।

हम दोनों को ही समय पर कार्यालय पहुँचना था इसलिए दुबेजी का अधिक समय लेना मैंने उचित न समझा । प्रसाद में एक बढ़िया अमरूद मिला और उस दिन का अजायबघर - दर्शन यहीं पर समाप्त हुआ ।

कुछ दिनों बाद श्री दुबेजी ने वर्धा छोड़ा । अपने अजायबघर को अपने साथ लेते गये । कँटीली केक्टस नायिका को नहीं ले गए जो बिचारी अपने प्रेमी के विरह में काँटा ही नहीं हो गई अपना अस्तित्व भी खो बैठी ।

पिछले दिनों मुझे लखनऊ जाने का मौका मिला। खोजते-खोजते निराला नगर स्थित दुबेजी के मकान 'चित्रकूट' पर पहुंचा।

घर का 'चित्रकूट' नाम मुझे पसन्द आया। मुझे ही क्या बहुतों को यह नाम पसन्द आया। दुबेजी ने ही बताया कि कोई-कोई भावुक व्यक्ति जब इस मार्ग से गुजरता है, भवन का नाम 'चित्रकूट' पढ़ता है तो प्रसन्न होकर तुलसी का वह दोहा गाता हुआ जाता है, जिसमें चित्रकूट का दर्शन है—

चित्रकूट के घाट पर भइ सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसें खोरि देत रघुवीर॥

अतिथि सत्कार आदि की बात छोड़कर प्रस्तुत विषय पर आता हूँ। 'चित्रकूट' घर के सामने छोटी सी वाटिका है। गमलों में तरह तरह के फूल पौधें लगे हैं। कहीं फूल भरे हैं, कहीं लम्बी लाल मंछो वाला पौधा। तरह-तरह के केक्टस दुबेजी ने लगा रखे हैं, यह दिखाने के लिए कि कांटों में भी कितना अद्भुत सौन्दर्य होता है। घर के आंगन में बतख बेल लगा रखी है। इस बेल का फूल बिलकुल बतख जैसा होता है। तोड़कर पानी पर रख दो, तो बतख घंटों घूमती रहती है।

बच्चों की भांति ही दुबेजी का प्रतिदिन घंटा डेढ़-घंटा इन हरे भरे पौधों-बच्चों के बीच बीतता है। किसी भी पौधे पर पीला पत्ता नहीं देखा जा सकता। दुबेजी हरियाली के भी प्रेमी हैं।

चित्रकूट के ड्राइंग रूम दर्शनीय है। बाँस का नाग नागिन और बच्चा क्रीड़ारत है जो एक पौधे के उल्टे रूप पर सुशोभित है। उल्टे पौधे की शाखायें पावों का काम कर रही है।

दुबेजी ने बताया— नाग वाला बांस गोपुरी वर्धा का है, नागिन वाला बाँस श्री मोहनलाल जी भट्ट के बाग का है और बच्चा वाला बाँस चित्रकूट का है, जिसे वे चित्रकूट की पहली यात्रा के समय ले आये थे। इस तरह यह भानुमती का कुनबा जुड़ा है।

एक छोटी सी मेज पर एक गुलदस्ते में चार कमल कली शोभित हैं। कमल की कलियों का तो एक इतिहास ही है। कोई पहचान ही नहीं पाता कि ये कमल-कलियां किस चीज की है। प्लास्टिक की? नहीं। नारियल की, नहीं। तब किसकी?

ये चारों कमल कलियाँ लौकी है। जिन्हें रंग कर कमल का रूप दिया गया है। दुबेजी ने बताया कि वर्षा में घर के पीछे थोड़ी जमीन थी, उसी में साग-सब्जी उगा रखी थी। एक बार लौकी का एक छोटा पौधा स्वयं उग आया। बेल फैल गई, बहुत लौकियां लगी, परन्तु उन्होंने बढ़ने से हड़ताल कर दी। सब छोटी-छोटी होकर रह गई। उन्हें तोड़ना निरर्थक था। धीरे धीरे पक गई। सूख गई। कमल कली की आकृति की चार लौकी प्लास्टिक का डंठल लगाकर पेंटर के

हाथों कमल - कली बनकर यहाँ 'चित्रकूट' के ड्राइंग रूम में शोभा पा रही हैं।

और यह रहा वह सफेद गोल पत्थर : जिसके सब ओर मकड़ी के जाले जैसी छोटी-छोटी झंझरी बनी है। इसे दुबेजी रामेश्वर तीर्थ से अपने साथ लाये थे, जब वे अपने मित्रों के साथ दक्षिण यात्रा पर गये थे। यह पत्थर पानी में डूबता नहीं। कौन जाने यह उन्हीं पत्थरों में से तो एक नहीं है, जिनको लेकर नल-नील ने समुद्र पर सेतु बनाया था।

और यह छोटा अनेक छेद वाला पत्थर कन्या कुमारी के समुद्र तट के पत्थर का टुकड़ा है। इस पर 'कन्या कुमारी' लिखा लिया गया है।

सबसे बढ़िया चीज तो तोरई के पंजर से स्वयं बनाई हुई टोपी है। बड़ी आकर्षक।

यों तो दुबेजी के घर में और भी अनेक दर्शनीय वस्तुएँ हैं, पर यहाँ मात्र उन्हीं का विवरण दिया गया है जिनसे दुबेजी का सीधा सम्बन्ध है।

'चित्रकूट' के एक कमरे में सुन्दर अक्षरों में लिखा 'बाल पंचशील' का बोर्ड लटक रहा है जिस पर एक शिशु का सुन्दर मनमोहक चित्र है। इस बाल पचशील और उससे जुड़ी श्री दुबेजी की बालसेवा प्रवृत्ति से मैं भली भाँति परिचित हूँ।

वर्धा रहते समय लगातार २५ वर्ष तक 'बाल सेवा समिति' द्वारा उन्हों ने बालकों की सेवा की थी। चौदह नवम्बर के आस पास राष्ट्रभाषा परिसर में जिस 'बाल मेला' का आयोजन होता था, उसे वर्धा वाले और खासकर बच्चे कभी भूल न सकेंगे।

चन्दा इकट्ठा कर बालकों के हितार्थ दुबेजी साहित्य प्रकाशित कर उसे नि:शुल्क वितरित करवाते थे। आयोजन के दिन सम्पूर्ण आगत बच्चों को कभी सीटी, कभी फुग्गा, और मिठाई बँटवाने का प्रयत्न करते थे।

उन्हीं दिनों दुबेजी ने इस बाल पंचशील को तैयार किया था। पंडित नेहरू ने 'पंचशील' चलाया था उसी से प्रेरणा लेकर दुबेजी ने बालकों को ध्यान में रखते हुए 'बाल पंचशील' का निर्माण किया था और उन्होंने उसे बहुत पसन्द किया था।

'चित्रकूट' के कमरे में 'बाल पंचशील' को देखकर मेरी स्मृतियाँ जागृत हो गई और उन दिनों की याद बरबस ही आ गई, जब दुबेजी वर्धा में रहा करते थे।

['राष्ट्रभाषा' १९८७ से उद्धृत]

मेरे शुभचिन्तक: दुबे जी

डॉ० त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'

[illegible] सादा निष्कपट जीवन जीने [illegible] कर्तव्य परायण, फूलों और पौधों [illegible] हितैषी, भावुक कवि, कुशल सम्पादक, [illegible] प्रणेता, श्रेष्ठ अनुवादक, काष्ठ-कला-प्रवीण, यत्र-तत्र [illegible] बनाने के शौकीन, बच्चों के बीच हिलमिल कर [illegible] महत्वपूर्ण संस्थाओं से सम्बद्ध रह चुके पदाधिकारी, [illegible] नाना प्रकार की कटिंग को समेटते रहने के व्यसनी, [illegible] निराला नगर (लखनऊ) के चित्रकूट नामक [illegible] दयाल दुबे 'रमेश' का जन्म जनपद मैनपुरी के हिन्दू- [illegible] देवी दयाल दुबे के द्वितीय पुत्र के [illegible] १९६५ वि० को हुआ था।

[illegible] हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की "साहित्यरत्न" तथा [illegible] 'परास्नातक' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर [illegible] अध्यापन कार्य में दत्तचित्त रहे। इसके पश्चात् राजर्षि [illegible] हिन्दी प्रचार के लिए अपने मित्र श्रीमन्ननारायण [illegible] भाषा प्रचार समिति, वर्धा चले गये; जहाँ [illegible] पदों पर ४० वर्षों तक निष्ठापूर्वक कार्य [illegible] अवकाश प्राप्त कर लखनऊ चले आये।

[illegible] भाषा की स्निग्धता इनके अंतस् में जनमते [illegible] दिनचर्या पर पैनी दृष्टि [illegible] शीला देवी दुबे ने इन्हें सदैव सुखी [illegible] भाँति अब भी तोरई की सूखी झोंझ [illegible] टेढ़े-मेढ़े बाँसों से शंकर और उनके [illegible] नाव, गोल लौकी की खोल से कमल के [illegible] कचरे को कंचन में परिणत करते रहते हैं।

"[illegible] अभाव की चिन्ता।" और

"[illegible] से भरा हमें मिलता है।

[illegible] जहाँ हृदय खिलता है॥"

[illegible] दुबे जी की प्रकृति की सीमा [illegible]

"यों तो नैसर्गिक आँगन में जितना घूमें कम है।"

उनके विचारों में—

"मानव की है जाति एक ही, अंतर्जाति कहाँ है।
रक्त माँस-मज्जा-आकृति की समता एक यहाँ है॥"

× × ×

"सीमित हों परिवार और हों सीमित ही इच्छायें।
जीवन-सर को क्यों न भरें फिर सुख-समृद्धि धारायें॥"

× × ×

"मानव धर्म धर्म है केवल और सभी कुछ भ्रम है।
सब पर प्रेम-दुलार लुटाना यही धर्म का क्रम है॥"

उनके व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी भाषा पर भी भरपूर पड़ा है। अपनी लालित्यमयी भाषा में कहीं से कोई शब्द वे उधार लेकर नहीं चले। उसमें उनका अपनापन है। उनके साहित्य में भूल के कोई ऐसा शब्द नहीं मिलता है, जिसके लिए साधारण पाठक को कोश उठाना पड़े। उनके भाव और भाषा दोनों हर जगह मिलकर चले हैं। अपने काव्यों को जबरदस्ती अलंकारों से लादकर इन्होंने बोझिल नहीं बनाया। इनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व में जो कुछ भी है, सब स्वाभाविक है।

मेरे अग्रज तुल्य शुभचिंतक दुबे जी मेरी तथा मेरे परिवार की खोज खबर प्रायः लेते रहते हैं। मेरे घर के समाचारों के मिलने में यदि जरा भी विलम्ब देखते हैं तो वे बेचैन होने लगते हैं। पत्रों की झड़ी लगा देते हैं।

दुबे जी द्वारा रचित विपुल साहित्य फाइलों में बिखरा पड़ा है। मेरी पत्नी श्रीमती कान्ति शर्मा उसे व्यवस्थित रूप देना चाहती हैं। इन्होंने कुछ किया भी है। आगे भी कर सकें, तो मेरे लिए आनन्द की बात होगी।

[मधु - निवास, सत्यप्रेमी नगर, बाराबंकी]

❋ ❋

आज के हिन्दी साहित्य में बहुधा हम यह देखते हैं कि उन शब्दों का
वहिष्कार हो रहा है जिनको हम ग्रामीण कहते हैं।
इससे राष्ट्रभाषा की बड़ी हानि हो रही है।

अमरनाथ झा

❋ ❋

दुबे जी - एक संस्था

राम अवधेश त्रिपाठी

"रूस में एक बुढ़िया थी। वह भोजनालय चलाती थी और अपने देश के शरीरश्रम करने वाले नागरिकों को सुपुष्ट स्वास्थ्यप्रद भोजन सस्ते दामों में दिया करती थी। बुढ़िया अपने भोजनालय के द्वार पर बैठी रहती और आने वाले ग्राहकों के हाथ देखकर उन्हीं को अन्दर जाने देती, जिनके हाथ कठोर होते, भुजायें कसी होतीं, स्नायु पुष्ट होते। अन्य ग्राहकों को बड़ी नम्रता से वापस कर देती, किसी अन्य भोजनालय में भोजन कर लेने की सलाह देती। ऐसा करने में बुढ़िया का एक मात्र उद्देश्य शरीर श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाना तथा कर्म का महत्व बढ़ाना था।"

आज से लगभग ३५ वर्ष पहले एक पुस्तक में यह प्रसंग मैंने पढ़ा था। जिसका शीर्षक था— "श्रम की महत्ता" और उसके लेखक थे श्री रामेश्वर दयाल दुबे। अगले वर्षों में मैं जब दुबे जी के सम्पर्क में आया, तो मैंने उन्हें कर्तव्य कर्म के प्रति श्रम-साधना का प्रतीक ही पाया। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संचालक श्री जेठालाल जोशी, जब भी वर्धा समिति की बैठकों में सम्मिलित होने के पश्चात् लौटते, श्री दुबे जी के मीठे-मीठे संस्मरण सुनाते, उनकी बड़ी प्रशंसा करते। मुझे ऐसा लगता कि दुबे जी एक व्यक्ति ही नहीं, एक मिशन हैं, एक संस्था हैं।

उनसे पत्र-व्यवहार का अवसर आया। वे अपने भावात्मक जल में प्रेम की मिश्री मिला कर उत्तर देते, जिसे पाकर मैं आनन्द विह्वल हो जाता। दूर रहते हुये भी समीप आने की हमारी यह है कहानी।

श्री जोशी जी की कृपा से मैं उनके साथ सन् १९५० में वर्धा पहुँचा था, समिति में तीन दिन ठहरा। इसी अवधि में मैंने दुबे जी को अति निकट से देखा। मैंने पाया कि दुबे जी समिति की सभी गतिविधियों में मणिमाला के सूत्र की भाँति-गुथे हुए हैं। वे समिति के उद्यान में विकसित होने वाली प्रत्येक पुष्प-क्यारी की देखभाल करने वाले कुशल माली हैं। दिन भर की गम्भीर चर्चा में व्यस्त रहने वाले दुबे जी का एक दूसरा रूप भी देखने को मिला। सहायक मन्त्री और परीक्षा मन्त्री का लबादा फेंक कर सन्ध्या समय या रात्रि में वे आगत मित्रों के बीच बैठ कर कहकहे लगाते, व्यंग्य विनोद करते, सब का इस प्रकार स्वागत करते मानों उनके ही घर में बारात आई हो। मैंने वहाँ दुबे जी को कभी-कभी कड़ुवा घूँट भी पीते देखा, किन्तु जिन्दादिली और शालीनता उनके सिर पर टोपी की तरह ही सुशोभित रहती। वर्धा से लौटने पर मैंने एक लेख लिखा—

"वर्धा समिति - एक राष्ट्रीय तीर्थ" उसे पढ़ कर दुबे जी बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने उस लेख की भूरि भूरि प्रशंसा की थी ।

वर्धा रहते हुए दुबे जी को गांधी जी, विनोबा जी, काका कालेलकर आदि के निकट सम्पर्क में आने का तो सौभाग्य हुआ ही, देश के चोटी के नेताओं, विद्वानों और साहित्यकारों के सम्पर्क में भी वे आये । सर्वश्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन, मोहनलाल भट्ट, शंकर राव लोढ़े के दाहिने हाथ बनकर बड़ी लम्बी अवधि तक दुबे जी ने समिति की सेवा की ।

सन् १६६२ में समिति का रजत जयन्ती महोत्सव सम्पन्न हुआ । मैं भी उसमें उपस्थित था । उस समय दुबे जी मुझे एक सुपटु प्रबन्धकर्त्ता और कुशल संगठनकर्त्ता के रूप में नजर आये । वे अपने मृदु - विनम्र स्वभाव और आत्मिक व्यवहार से सभी को आकर्षित कर रहे थे । कई हजार आगतों की व्यवस्था करना और वह भी भीषण ग्रीष्म ऋतु में, साधारण काम न था, किन्तु दुबे जी ने श्री भट्ट जी की देखभाल में अपने कार्यकर्त्ताओं के बल पर उसे सरल बना दिया था ।

अहमदाबाद में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के दो प्रचार सम्मेलन हुए । उन अवसरों पर भी मैंने और गुजरात के अनेक राष्ट्रभाषा प्रचारकों ने दुबे जी की सहृदयता का सुन्दर परिचय पाया ।

एक बार अपनी जन्मभूमि गोरखपुर से अहमदाबाद वापस आ रहा था । लखनऊ में पंडित जी के दर्शन की इच्छा हुई । खोजते हुए उनके निवास स्थान चित्रकूट, निरालानगर पहुँचा । पंडित जी मुझ से उसी प्रकार मिले, जैसे राम ने भरत को गले लगाया था । उनके साथ बैठने पर अनेक - अनेक स्मृतियाँ ताजी हो गईं । घूम - फिर कर सारा मकान देखा, स्वच्छता और व्यवस्था देखकर प्रसन्नता हुई । श्रीमती शीला देवी जी के भी दर्शन हुये, उनका आतिथ्य पाकर प्रफुल्ल हो उठा । दुबे जी और उनके साहित्य को देखकर बरबस भावांजलि अर्पित हो गई—

साहित्य मनीषी ! हे हिन्दी ललाट चन्दन ।
शत - शत उर के शत - शत वन्दन, शत अभिनन्दन ।।
गाँधी जी के द्वादश व्रत के अनुयायी बन ।
कर दिया राष्ट्रभाषा पर नित जीवन अर्पण ।।
टंडन जी से ले आशिष, ले आदर्श - रतन ।
आलोकित किया सप्रेम समुद वर्धा प्रांगण ।।
जन - जन मन में बन गये प्रदीपित दीप किरण ।
शत - शत उर के शत - शत वन्दन, शत अभिनन्दन ।।

ज्यों राष्ट्रगीत से गुंजित होता राष्ट्रगान ।
त्यों 'हिन्दी गीत' कर रहा हिन्दी का पूजन ।।
सारल्य शील सद्भाव प्रेम के हे चिर धन ।
भाषा भावों में तुमसे हुआ सेतु - बन्धन ।।
हो गये धन्य तुम कर शत - शत साहित्य सृजन ।
शत - शत उर के शत - शत वन्दन, शत अभिनन्दन ।।
है 'चित्रकूट' में सुरभित शत-शत भाव सुमन ।
नित हमें दिखाते भरत - राम का सुभग मिलन ।।
'कोणार्क' काव्य में कलाकार का शुभ दर्शन ।
'नूपुर' बन कानों में बजता रुनझुन रुनझुन ।।
करते रहते माँ सरस्वती का नित अर्चन ।
शत - शत उर के शत - शत वन्दन, शत अभिनन्दन ।।
'सौमित्र' हाथ में लिए बन्धुता का दर्पण ।
'गोकुल' में कृष्ण कन्हैया की प्यारी छुनछुन ।।
'बेलूर' शिला का काव्य कला का अभिनन्दन ।
दी बहा 'ज्ञान गंगा' धारा मंगल पावन ।।
मुखरित तुम से हो हिन्दी का साहित्य सदन ।
शत - शत उर के शत - शत वन्दन, शत अभिनन्दन ।।

पण्डित जी के अध्ययन - कक्ष में पहुँचकर निगाह ठहर गई । पुस्तकें, ग्रन्थ, पत्र, पत्रिकायें, विविध विषयों पर लिखे लेखों की कटिंग के पृथक - पृथक बस्ते - सब कुछ व्यवस्थित । दुबे जी के साहित्य पर अनेक लघु शोध प्रबन्ध तथा हैदराबाद के एक प्रोफेसर द्वारा पी–एच० डी० के लिए लिखा गया विशाल शोध ग्रन्थ देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । इन कृतियों का वन्दन किया, अभिनन्दन किया । राष्ट्र कवि गुप्त जी की ये पंक्तियाँ याद हो आईं —

जय देव मन्दिर देहरी
समभाव से जिस पर चढ़ी
नृप हेय - मुद्रा और रंक - वराटिका
मुनि - सत्य सौरभ की छली
कवि - कल्पना जिसमें पली
फूले - फले साहित्य की यह वाटिका ।।

[उत्तर भारतीय कालोनी, अहमदाबाद]

❋ ❋

पं0 रामेश्वर दयाल दुबे-
अभिव्यक्ति के विविध रूप

शिव शंकर मिश्र

निराला नगर में 'चित्रकूट' निवास का एक छोटा सा कमरा। कमरा क्या है, छोटे से बरामदे को घेरकर अध्ययन कक्ष में बदल लिया गया है। एक तरफ कुछ पाण्डुलिपियों के बंडल और किताबों से सजी लकड़ी की अलमारी। इसी से सटा एक तख्त और उस पर कुछ पुस्तकें, पत्रिकाएँ तथा बाहर से आये पत्रों के खाली लिफाफे। लिफाफे, जिन्हें पलटकर फिर से काम में लाना है। एक पैड में दबे कागजों के कुछ कतरन, एक तरफ इस्तेमाल किये हुए और दूसरी तरफ सादे। इन्हें आप पीठकोरा कह सकते हैं। यही शब्द वर्धा में प्रचलित था, इसी लिए कि गाँधी जी पीठकोरा का खूब प्रयोग करते थे मेरी नजर एकाएक तख्त के नीचे रखे टीन के बड़े-बड़े बक्सों पर पड़ती है। पता चला इनमें अर्धशतक तक फैले एक ऐसे साहित्यसाधक की कृतियाँ संचित है जो गुमनाम जिन्दगी जीने का आदी है। पुरस्कारों के लिए दौड़ने वाले रचनाकारों और कवि सम्मेलनों के स्टार पोयटों की परम्परा से अलग पच्चासी वर्षीय इस साधक का नाम है पं० रामेश्वर दयाल दुबे। उम्र की इस लम्बी यात्रा के बाद भी कोई यह नहीं कह सकता कि यह थका हुआ पथिक है। कमर के नीचे धोती लपेटे गाँधीजी की मुद्रा में नंगे बदन अपनी छोटी सी वाटिका में पौधों को सजाते-सँवारते या फिर अपने उसी छोटे कमरे में कुछ लिखते-पढ़ते आपको मिल जायेंगे।

इनसे मिलने वाला कुछ देर में ही इनके निश्छल स्नेह की डोरी में बंधता चला जाता है। जब ये अपने वर्षो पुराने संस्मरणों का अलबम खोलते हैं तो इनका छोटा सा कमरा झंकृति की गूँज से असीम लगने लगता है। फिर भी दुबेजी में एक कमजोरी है। ये अपनी रचनाओं की मंजूषा बड़ी कंजूसी से खोलते हैं। एक बार की मुलाकात में कुछ भी हाथ नहीं आता। कुछ जानना हो तो कई बार इनसे मिलना पड़ेगा। आत्मीयता के क्षणों में भी ये आत्मविज्ञप्ति से बहुत दूर रहते हैं। मान बड़ाई पाने की लालसा का परित्याग तो ये कब का कर चुके हैं। कहते हैं—

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजनो एह॥

यशोलिप्सा मानवमन की बहुत बड़ी कमजोरी है। इसे सहज नामंजूर करना दुबेजी जैसे महामानव के लिए ही संभव है।

पं० रामेश्वर दयाल जी से मेरी मुलाकात "निराला नगर संदेश" के माध्यम से होती है। धीरे धीरे यह मुलाकात न जाने कब एक ऐसे अतमीय संबंध में बदल जाती है जो एक अग्रज और अनुज के मध्य होता है। इसे मै अपने पूर्व जन्म के नेक कामों का सुफल मानता हूँ। जैसे-जैसे मै दुबेजी के करीब आता गया मेरे सामने विविध विधाओं को छूने वाली इनकी रचनाओं के पन्ने खुलने लगे। कोणार्क, नूपुर, चित्रकूट, गोकुल आदि उच्चकोटि के खण्ड काव्यों काव्यसंग्रहों, नाटक, एकांकी, कहानी, हास्यव्यंग्य, जीवनी साहित्य, गाँधी विषयक निबन्धों, विभिन्न भाषाओं की उत्तम कृतियों के पद्यानुवाद, बाल साहित्य, यात्रा-संस्मरण आदि अनेक विधाओं में इनका रचना-विस्तार देखा जा सकता है। गोकुल' खण्डकाव्य अभी-अभी पाठकों के हाथ में पहुँचा है। यह रचना कृष्ण लीला पर आधारित है, किन्तु रचनाकार ने कृष्ण के चमत्कारों को अंधी आस्था के हवाले नहीं किया है। इसे परखने के लिये एक वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की है। कुल मिलाकर अब तक दुबेजी की सत्तर से ऊपर रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। 'बेलूर' नामक खण्डकाव्य इनकी ताजी रचना है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। 'बेलूर' एक स्थान का नाम है जो कर्नाटक प्रदेश में है यहाँ १२वीं शताब्दी में निर्मित चिन्नकेशव का मन्दिर है। इसके निर्माण की कहानी अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं रोचक है। राजनर्तकी रंजना कलाशिल्पी दासोजा के पास नित्य श्रृंगार करके आती है। उसकी कमनीय देह-यष्ठि से उभरती नृत्य-भाव-भंगिमाएँ शिल्पी की मूर्तियों में छविमान होने लगती हैं। छेनी हथौड़ी चलाते दसोजा की मांसल भुजाओं के चमत्कार को देखकर नर्तकी उसे चाहने लगती है इसके पहले कि शिल्पी अपनी वर्षो की कला-साधना की नर्तकी की प्रेम भेंट चढ़ा दे वहाँ से पलायन कर जाता है इस प्रकार मन्दिर निर्माण का कार्य अधूरा रह जाता है, जो अस्सी वर्ष बाद दूसरे शिल्पी जक्कणाचार्य द्वारा पूरा होता है। इस शिल्पकार की कहानी और भी मर्मस्पर्शी है। दुबेजी ने इस मन्दिर की मूर्तियों में उकेरे अनिर्वचनीय भावों को शब्द देकर मुखर कर दिया है।

दुबेजी की मौलिक रचनाओं में मानव जीवन की अनुभूतियों को समग्रता से रूपायित करने की अद्भुत क्षमता है। अनूदित रचनाएँ तो ऐसी हैं कि मौलिक रचना का आनन्द मिलता है। कहीं-कहीं तो पद्यानुवादों में इतनी तरलता है कि वे मूल रचना से भी आगे निकल जाते हैं। 'मधुकरी' लयात्मक छन्द में अनूदित एक ऐसा ही मधुकोष है। इसमें कवि ने भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की काव्य-वाटिका से चुनचुन कर पराग और मकरंद संचित किया है। इसी तरह दोहा

छन्द में अनूदित दुबेजी का दूसरा काव्य संग्रह है, ज्ञान गंगा। इसमें तमिल, तेलुगू मलयालम, कन्नड़, पंजाबी, मराठी, असमिया आदि अनेक भाषाओं के अनमोल-रत्नो को बटोर कर उन पाठकों के लिये सुलभ किया गया है जो भाषा की अनभिज्ञता के कारण मूल रचनाओं की रसात्मकता एवं भावानुभूति का आनन्द नहीं ले सके हैं। गंगा है तो देश का अमृत सुरक्षित है। यह अमृत है इस देश की भावनात्मक एकता, जो इस 'ज्ञान गंगा' में प्रवहमान है। नूपुर, 'तिरुकुरल', 'चित्रकूट' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत रचनाएँ है। अभी इसी वर्ष डॉ सोमनाथ राव ने "हिन्दी खण्ड काव्य परम्परा–रामेश्वर दयाल दुबे का योगदान" एक वृहद शोधकार्य पर हैदराबाद विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की है।

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, राष्ट्रपिता बापू, आचार्य विनोवा, देशरत्न राजेन्द्र बाबू, आचार्य कालेकर, महादेव भाई देसाई, सेठ जमना लाल बजाज, पंडित मदनमोहन मालवीय, आदि चोटी के नेताओं से दुबे जी का निकट का सम्पर्क रहा है। इनकी शीतल छाया में देशप्रेम का रस जो संचित किया उसे दुबेजी ने अपनी कविताओं में कई जगह उड़ेला है। "भारत-जननी एक हृदय हो" का अत्यन्त प्रचलित हिन्दी गीत इसी कवि ने गाया है। राहुल साँकृत्यायन, नागार्जुन और भदंत आनन्द कौशल्यायन जैसे घुमक्कड़ साहित्यकारों से भी दुबे जी का साथ रहा है। वैसे दुबेजी का मन भी यायावरी-प्रवृत्ति का है। ये पूरे भारत का भ्रमण कर चुके हैं। यात्रा संस्मरण मैं 'दक्षिण दर्शन' इनकी सार्थक रचना है। जब कभी मैं अपनी दूरस्थ वीहड़ पर्वतीय यात्राओं का संस्मरण उन्हें सुनाता हूँ तो आज भी दुबे जी का मन मचल उठता है। अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहते हैं "भाई अब तो मै गणेश जी की तरह सरस्वती की परिक्रमा करके विश्वदर्शन का सुख ले लेता हूँ।

तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर सरस्वती की प्रतिमा महादेवी जी ने दुबे जी को सम्मानित करते हुए अपने हाथों से प्रदान की थी। हर साल बसन्त पंचमी के दिन चित्रकूट निवास में सरस्वती-पूजन का अनोखा आयोजन दुबे जी करते हैं। सप्ताह, दस दिन पहले निमंत्रण-पत्र और एक कागज का टुकड़ा ये अपने इष्टमित्रों को थमा आते हैं। इस कागज पर पन्द्रह बीस व्यक्तियों में इनके द्वारा निर्धारित विषय पर अपने अपने विचार लिखकर सरस्वती की इस प्रतिमा के सामने पढ़ना होता है। व्यक्ति के अपने जिये हुए अनुभवों एवं घटनाओं पर आधारित हर वर्ष का विषय नया होता है। इन सबका सम्पादन करके दुबे जी 'निरालानगर संदेश' में छपवा देते हैं। सरस्वती-पूजन और हिन्दी की श्रीवृद्धि करने का इनका यह ढंग कितना निराला है। साहित्य सृजन को

दुबेजी ने पेशे के रूप में नहीं अपनाया है, बल्कि उनके मूल में इनकी रुचि और साहित्य सेवा की भावना जुड़ी है। जब वे वर्धा में थे तब भी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहायक मंत्री तथा परीक्षा मंत्री की व्यस्तता के बावजूद अपनी लेखनी को कभी आराम नहीं दिया। आज भी इस अनवरत चलने वाली लेखनी को इनकी बढ़ती आयु की सीमा रोक नहीं पायी है। साहित्य-साधना की आँच में तपा हुआ अभिव्यक्ति का इनका विविध रूप प्रणम्य है।

[सी - २६२, निराला नगर, लखनऊ]

※ ※

श्री रामेश्वर दयाल दुबे : बहुआयामी व्यक्तित्व

डा० शीलम वेंकटेश्वर राव

श्री रामेश्वर दयाल दुबे का बहुआयामी व्यक्तित्व हिन्दी - सेवियों के लिए चुम्बकीय आकर्षण है। वे कुशल प्रशासक, सफल वक्ता, रससिद्ध कवि एवं समर्पित हिन्दी सेवी हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और श्री दुबे जी - दोनों भिन्न नहीं अभिन्न रहे हैं। परीक्षा विभाग एक ऐसा विभाग है, जो समिति का प्राण है। श्री दुबे जी ३५ वर्ष तक परीक्षा मंत्री रहे। उन्होंने परीक्षा विभाग को इस ढंग से सुनियोजित किया कि परीक्षाओं का समस्त कार्य यंत्रवत सुचारु रूप से चलता रहे। नियमितता, पवित्रता एवं नैतिकता परीक्षा विभाग की अपनी विशेषतायें हैं। मैंने श्री दुबे जी को इन मूल्यों की रक्षा में दिन - रात कार्य करते देखा है।

परीक्षा मन्त्री के अतिरिक्त श्री दुबे जी समिति के अन्य रचनात्मक कार्यों में सदा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते रहे। देश की स्वयंसेवी संस्थाओं में मैं समिति को एक आदर्श संस्था मानता हूँ। इसके समस्त कार्यक्रमों में वे नींव के पत्थर रहे हैं। समिति आज पल्लवित एवं पुष्पित होकर न केवल भारत को, अपितु सारे विश्व को सुवासित कर रही है।

श्री दुबे जी मूलतः सहृदय कवि हैं। यह बात कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि विश्वकवि ठाकुर ने जिस प्रकार 'जन गण मन' राष्ट्रगीत, राष्ट्र को दिया, उसी प्रकार श्री दुबे जी ने हिन्दी जगत को "भारत जननी एक हृदय हो" 'हिन्दी गीत' दिया है। इस गीत में समस्त राष्ट्र की आत्मा साकार हुई है। इसे मैं आपकी महानतम देन मानता हूँ। 'सादा जीवन उच्च विचार' श्री दुबे जी के जीवन का आदर्श है। कर्मठता, जागरूकता, विनम्रता एवं आत्मीयता इनके विलक्षण व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलू हैं। यही कारण है, वह अभिनन्दनीय हैं।

[हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद]

※ ※

हिन्दी सेवा

हिन्दी-गीत

भारत जननी एक हृदय हो।
एक राष्ट्रभाषा हिन्दी में
कोटि-कोटि जनताकी जय हो।
स्नेह-सिक्त मानस की वाणी,
गूँजे गिरा यही कल्याणी,
चिर उदार भारत की संस्कृति,
सदा अभय हो, सदा अजय हो।
भारत जननी एक हृदय हो॥

मिटे विषमता, बरसे समता,
रहे मुख में मीठी ममता,
तमस कालिमा को विदीर्ण कर,
जन-जन का पथ ज्योतिर्मय हो।
भारत जननी एक हृदय हो॥

जाति-धर्म-भाषा विभिन्न स्वर,
एक राग हिन्दी में सजकर,
झंकृत करें हृदय-तन्त्री को
स्नेह-भाव प्राणों में लय हो।
भारत जननी एक हृदय हो॥

—रामेश्वर दयाल दुबे

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पर्याय पं० रामेश्वर दयाल दुबे

–डॉ जी० एन० श्रीवास्तव

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना के कुछ ही दिनों के उपरान्त राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन श्रीमन्नारायण की प्रेरणा से सन् १९३७ में पं० रामेश्वर दयाल दुबे वर्धा पहुँचे। वहाँ उन्होंने समिति द्वारा संचालित 'राष्ट्रभाषा अध्ययन मन्दिर' में सह शिक्षक एवं व्यवस्थापक के रूप में कार्य किया। यहीं पं० ऋषिकेश शर्मा के साथ उन्हें अन्यान्य हिन्दीतर प्रदेश से आये राष्ट्रभाषा प्रचारकों को प्रशिक्षित करने का अवसर मिला। किन्तु समिति के साथ तद्रूप होकर उसका पर्याय बन जाने का मार्ग दुबे जी के लिए तब प्रशस्त हुआ, जब सन् १९४२ में उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहायक मंत्री एवं परीक्षा मंत्री बनाया गया।

उन दिनों सन् १९४२ का इतिहास प्रसिद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। गाँधी जी के अह्वान पर पूरे भारत में 'करो या मरो' की वेगवती आँधी आने वाली थी। इसी के समाचार अँग्रेजों का दमन-चक्र भी बराबर घूम रहा था। वर्धा समिति के तत्कालीन मंत्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन एवम् सहायक मंत्री तथा परीक्षा मंत्री श्री दुबे जी के ऊपर ही समिति की अस्तित्व रक्षा का सम्पूर्ण दायित्व निर्भर था। समिति के प्रारम्भिक वर्षों में अन्यान्य व्यस्तताओं के कारण कौशल्यायन जी कभी कभी ही वर्धा रह पाते थे। अत: अनौपचारिक रूप में दुबे जी ही समिति की सम्पूर्ण व्यवस्था के एकमात्र कर्ता धर्ता थे।

सहायक मंत्री एवम् परीक्षा मंत्री बनने से पूर्व दुबे जी समिति के अपने प्रारम्भिक शिक्षा सेवा काल (सन् १९३७–४१) में 'राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर' से सम्बद्ध शिक्षक थे। किन्तु उनकी कर्तव्यनिष्ठा और हिन्दी-प्रेम से प्रभावित होकर समिति के तत्कालीन परीक्षा मंत्री पं० हरिहर शर्मा ने उनसे अनेक प्रकार के कार्य कराये। इस प्रकार पाँच वर्ष तक दुबे जी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में अनौपचारिक रूप से सम्पादक, प्रशासनिक, परीक्षक एवं निरीक्षक जैसे महत्वपूर्ण पदों से सम्बंधित बहुविध कार्यों का अनुभव प्राप्त किया था। इसी प्रकार प्रूफ रीडिंग एवम् कार्यालय संबंधी पत्र व्यवहार आदि विविध कार्य भी उन्होंने किए। एक प्रकार से १९३७ से १९४१ तक का समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में एक तरह से उनका प्रशिक्षण काल था, जिसके परिणामस्वरूप कालान्तर में वे समिति के एक आवश्यक एवम अपरिहार्य उपादन बने। सन् १९४२ में उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

हिन्दी-गीत

भारत जननी एक हृदय हो।

एक राष्ट्रभाषा हिन्दी में
कोटि-कोटि जनताकी जय हो।
स्नेह-सिक्त मानस की वाणी,
गूँजे गिरा यही कल्याणी,
चिर उदार भारत की संस्कृति,
सदा अभय हो, सदा अजय हो।
भारत जननी एक हृदय हो॥

मिटे विषमता, सरसे समता,
रहे मूल में मीठी ममता,
तमस कालिमा को विदीर्ण कर,
जन-जन का पथ ज्योतिर्मय हो।
भारत जननी एक हृदय हो॥

जाति-धर्म-भाषा विभिन्न स्वर,
एक राग हिन्दी में सजकर,
झंकृत करे हृदय-तन्त्री को
स्नेह-भाव प्राणों में लय हो।
भारत जननी एक हृदय हो॥

—रामेश्वर दयाल दुबे

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पर्याय पं0 रामेश्वर दयाल दुबे

—डॉ जी० एन० श्रीवास्तव

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना के कुछ ही दिनों के उपरान्त राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन श्रीमन्नारायण की प्रेरणा से सन् १६३७ में पं० रामेश्वर दयाल दुबे वर्धा पहुँचे। वहाँ उन्होंने समिति द्वारा संचालित 'राष्ट्रभाषा अध्ययन मन्दिर' में सह शिक्षक एवं व्यवस्थापक के रूप में कार्य किया। यहीं पं० ऋषिकेश शर्मा के साथ उन्हें अन्यान्य हिन्दीतर प्रदेश से आये राष्ट्रभाषा प्रचारकों को प्रशिक्षित करने का अवसर मिला। किन्तु समिति के साथ तद्रूप होकर उसका पर्याय बन जाने का मार्ग दुबे जी के लिए तब प्रशस्त हुआ, जब सन् १६४२ में उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहायक मंत्री एवं परीक्षा मंत्री बनाया गया।

उन दिनों सन् १६४२ का इतिहास प्रसिद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। गाँधी जी के अह्वान पर पूरे भारत में 'करो या मरो' की वेगवती आँधी आने वाली थी। इसी के समाचार अँग्रेजों का दमन-चक्र भी बराबर घूम रहा था। वर्धा समिति के तत्कालीन मंत्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन एवम् सहायक मंत्री तथा परीक्षा मंत्री श्री दुबे जी के ऊपर ही समिति की अस्तित्व रक्षा का सम्पूर्ण दायित्व निर्भर था। समिति के प्रारम्भिक वर्षों में अन्यान्य व्यस्तताओं के कारण कौशल्यायन जी कभी कभी ही वर्धा रह पाते थे। अतः अनौपचारिक रूप में दुबे जी ही समिति की सम्पूर्ण व्यवस्था के एकमात्र कर्ता धर्ता थे।

सहायक मंत्री एवम् परीक्षा मंत्री बनने से पूर्व दुबे जी समिति के अपने प्रारम्भिक शिक्षा सेवा काल (सन् १६३७–४१) में 'राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर' से सम्बद्ध शिक्षक थे। किन्तु उनकी कर्तव्यनिष्ठा और हिन्दी-प्रेम से प्रभावित होकर समिति के तत्कालीन परीक्षा मंत्री पं० हरिहर शर्मा ने उनसे अनेक प्रकार के कार्य कराये। इस प्रकार पाँच वर्ष तक दुबे जी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में अनौपचारिक रूप से सम्पादक, प्रशासनिक, परीक्षक एवं निरीक्षक जैसे महत्वपूर्ण पदों से सम्बंधित बहुविध कार्यों का अनुभव प्राप्त किया था। इसी प्रकार प्रूफ रीडिंग एवम् कार्यालय संबंधी पत्र व्यवहार आदि विविध कार्य भी उन्होंने किए। एक प्रकार से १६३७ से १६४१ तक का समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में एक तरह से उनका प्रशिक्षण काल था, जिसके परिणामस्वरूप कालान्तर में वे समिति के एक आवश्यक एवम अपरिहार्य उपादन बने। सन् १६४२ में उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

का सहायक मंत्री एवम् परीक्षा मंत्री बनाये जाने के पीछे उनकी इसी साधना का प्रमुख हाथ था ।

जिस समय दुबे जी ने समिति के महत्वपूर्ण पद का दायित्व ग्रहण किया, उन दिनों देश की सामाजिक एवम् राजनैतिक स्थिति में भूचाल सा आया हुआ था । राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भी कठिनाइयों से गुजर रही थीं । आठ अगस्त १६४२ के बाद 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के साथ ही अँग्रेजों का दमन-चक्र गतिमान हो उठा । अनेक देश भक्त गिरफ्तार कर लिए गये । कई स्थानों पर लाठी चार्ज हुआ; लेकिन इससे भारतवासियों का उत्साह तनिक भी मन्द नहीं पड़ा । यहाँ तक की राष्ट्रीयता की भावनाओं से अनुप्राणित होकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कई कार्यकर्ता भी अनुमति लेकर स्वाधीनता के उस यज्ञ में कूद पड़े । दुबे जी स्वयं भी राष्ट्रीय अन्दोलन में सम्मिलित होना चाहते थे । लेकिन वे चाहकर भी ऐसा नहीं कर सके । क्योंकि जहाँ एक ओर उच्च पदाधिकारी होने के कारण समिति का सम्पूर्ण दायित्व उनके ऊपर था, वहीं काका साहब कालेलकर ने उन्हें वचनबद्ध कर लिया था । उस समय दुबे जी को तीन प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ी, जिनका विवरण इस प्रकार है

१– राजनीति का एक वाक्य नहीं बोलना है ।

२– राजनीति का एक भी शब्द नहीं लिखना है ।

३– राजनीति की किसी भी सभा में नहीं जाना है ।

इन प्रतिज्ञाओं के समर्थन में काका साहब की तर्क पूर्ण उक्ति यह भी थी कि आनन्द कौशल्यायन प्रायः यहाँ (वर्धा) रहते नहीं । अतः समिति की व्यवस्था दुबे जी को ही करनी है । उन्होंने आगे यह भी कहा कि युद्ध के काल में जो सैनिक लड़ते या वीर गति प्राप्त करते हैं । केवल वे ही सैनिक नहीं होते । बल्कि वे वीर भी सैनिक ही होते, जो पीछे रहकर सहायता करते हैं या संसाधन जुटाते हैं । हिन्दी प्रचार तो राष्ट्रीय आन्दोलन का ही एक भाग है ।

राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र रूप धारण करता जा रहा था । साथ ही साथ समिति की कठिनाइयाँ भी उसी अनुपात में बढ़ रहीं थी । उसका कार्यालय वर्धा शहर से काफी दूर था । शहर की स्थिति यह थी कि लोगों का आना जाना तक प्रतिबंधित हो गया । समिति के समीपवर्ती महिला-आश्रम एवं कामर्स कालेज अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिए गये । निकट की तहसील कचहरी को कँटीले तारों से घेरकर एक अस्थायी जेल बना दिया गया था । आजादी के अनेक दीवानों को बन्दी बनाकर वहाँ एकत्र किया गया । ऐसी स्थिति में चारों ओर शमशान की भाँति सन्नाटा व्याप्त हो गया । विवश होकर समिति को सितम्बर ४२ की परीक्षा स्थगित कर देनी पड़ी । कार्यालय किसी प्रकार केवल चार घंटे के

लिए खोला जाता । कर्मचारी केवल खानापूर्ति के लिए ही वहाँ आते और शीघ्र ही लौट जाते । दुबेजी चूँकि समिति कार्यालय के पास ही रहते थे । अत: उन्हें और हुसैन नामक एक सहायक को ही कार्यालय परिसर में श्मशान साधना सी करनी पड़ती थी । कभी कभी कुछ भूमिगत समझे जाने वाले सत्याग्रही समिति परिसर भवनों में रात्रि व्यतीत करने या पुलिस से बचने के लिए आते थे । उनके लिये दुबेजी को कई प्रकार के जोखिम उठानी पड़ती । परिणामस्वरूप पुलिस के छापे आये दिन समिति पर पड़ते ही रहते । समिति की रक्षा, राष्ट्र भक्तों का बचाव और पुलिसिया उत्पीड़न से आत्मरक्षा दुबेजी ने किस प्रकार सफलतापूर्वक की इसे अनुभव के धरातल पर ही परखा जा सकता है । शब्दों की पैठ सम्भवत: वहाँ तक नहीं है ।

आन्दोलन का क्रम कई माह तक अनवरत रूप से चला । उन दिनों समिति में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं था । देश की अव्यवस्था ने नियमित कार्यों को बाधित कर दिया था। अत: समय का सदुपयोग करते हुए उन एकान्त क्षणों में दुबेजी ने समिति की प्रवेश, परिचय एवं कोविद परीक्षाओं के लिये लोकोक्तियों एवं मुहावरों का संकलन कर तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें तैयार की जो आज भी पाठ्य-पुस्तक के रूप में चल रही हैं । उन्हीं दिनों दुबेजी ने 'रहीम के दोहे' नामक एक पुस्तक का सम्पादन भी समिति के लिए किया । अब आन्दोलन की लपटें धीरे-धीरे शान्त होने लगी थीं। दुबेजी ने अपने प्रयास से आगे की परीक्षायें सफलतापूर्वक संपन्न कराईं । इस प्रकार समिति की विकास यात्रा प्रारम्भ हो गयी । अब मंत्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन जी की समिति को अपना बहुमूल्य समय देने लगे ।

सन् १९४४ में समिति पर एक अप्रत्याशित संकट आ पड़ा। काका साहब कालेलकर ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के समानान्तर एक 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' का संगठन किया । इसकेलिये उन्होंने समिति के कार्यालय एवम् कर्मचारी निवास को तुरन्त खाली करने का आदेश दिया । इतने कम समय में समिति के लिये उपयुक्त स्थान खोज पाना वर्धा जैसे शहर में सहज संभव नहीं था । दुबेजी तथा श्री आनन्द जी ने अनेक प्रयत्न किये किन्तु उचित भवन की व्यवस्था नही हो सकी । श्री दुबेजी के अनुरोध पर वर्धा के एक सेठ श्री राम तिवड़ी वाले ने अपनी गोरक्षण संख्या (गोशाला) में दो दीवारें उठाकर उसका एक भाग समिति के लिए देना स्वीकार किया । यद्यपि इतने से काम चलने वाला नहीं था परन्तु किसी अन्य विकल्प के अभाव में यह व्यवस्था स्वीकार करनी पड़ी । सेठजी ने दो सप्ताह में ही आवश्यक निर्माण कार्य कराकर आवश्यक स्थान उपलब्ध करा दिया । इस प्रकार समिति का कार्य फिर किसी भाँति चलने लगा । ऐसी

ही अनेक कठिनाइयाँ आयीं, किन्तु दुबेजी दृढ़तापूर्वक उनका सामना करते रहे समिति के उत्साही कार्यकर्ताओं एवं हिन्दीतर प्रदेशों के निष्ठावान राष्ट्रभाषा प्रचारकों ने उन्हें भरपूर सहयोग दिया। परिणामस्वरूप समिति विकास के सोपान पर चढ़ती गयी और एक समय ऐसा आया जब राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परीक्षार्थियों की संख्या लक्षाधिक हो गयी।

समिति के गोरक्षण संस्थान स्थित कार्यालय के निकट ही ऋषभदास रांका की भू-सम्पति थी। समिति ने अपने निजी कार्यालय भवन निर्माण के उद्देश्य से इस भू-सम्पति की सवाचार एकड़ जमीन क्रय कर ली। इस जमीन में सबसे पहले एक कुँए का निर्माण किया गया। इस पुनीत कार्य में पहला फावड़ा मंत्री आनन्द कौसल्यायन जी ने चलाया। उनके पाँच हाथ हो जाने पर दुबेजी ने श्रमिक की भूमिका निभाई। इसके बाद समिति के अन्य कार्यकर्ताओं ने अपना योगदान दिया। धीरे-धीरे उसी भूमि में समिति का कार्यालय भवन बना कर्मचारियों के आवास-गृह भी बनाये गये। बाद में एक प्रेस भी खोला गया।

समिति का निजी भवन नगर महापालिका के सीमान्तर्गत नहीं था। अत: यहाँ डाक संबंधी एक नयी समस्या उत्पन्न हुयी। पोस्टमैन किसी भी प्रकार पालिका की सीमा के बाहर जाने को तैयार न था। इन परिस्थितियों में समिति ने एक 'एक्सपेरीमेण्टल पोस्ट आफिस' खुलवाने का प्रयास किया। छह माह के उपरान्त जब पोस्ट आफिस खोलना सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया तो इसके नामकरण की समस्या उत्पन्न हुई। समिति भवन के समीप ही सिन्धी प्लॉट नामक एक छोटा सा गाँव 'शिन्दी' है। उस गाँव के निवासी चाहते थे कि नये पोस्ट आफिस का नाम वहाँ के पटेलों के कारण 'पटेल पोस्ट आफिस' रखा जाये। कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। अन्त में एक सभा हुयी जिसमें निश्चित किया गया कि पोस्ट आफिस का नाम 'शिन्दीनगर' रखा जाये। दुबेजी इसमें आंशिक संशोधन चाहते थे। अत: उन्होंने तत्कालीन पी०यम०जी० श्री वीरकर साहेब को समझाया कि यहाँ सारी डाक हिन्दी समिति के लिए ही आती हैं। अत:(SHINDI)का पहला अंग्रेजी अक्षर 'S' यदि हटा दिया जाये, तो उचित नामकरण 'हिन्दी नगर' स्वत: हो जायेगा। इस संबंध में हिन्दी शब्द की प्रस्तुति में सिंधु और उसके रूपान्तर Indus का उल्लेख भी उन्होंने किया। अन्तत: उनका सुझाव मान लिया गया और पोस्ट आफिस का नाम 'हिन्दी नगर' स्वीकृत हो गया।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परीक्षा मंत्री के रूप में दुबेजी ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। उन्होंने न केवल अनेक नयी योजनायें बनायीं अपितु उनका सफल क्रियान्वन भी किया। इससे समिति का परीक्षा क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ता होता गया। उनके कार्यकाल में समिति में एक वर्ष के अन्तर्गत दो बार

परीक्षाओं का आयोजन सफलतापूर्वक होता रहा। समिति के कार्यकर्ताओं द्वारा कम समय में अधिक से अधिक कार्य का दक्षतापूर्वक सम्पादन कराकर उन्होंने परीक्षा तंत्र में एक कीर्तिमान स्थापित किया। यही कारण था कि वे परीक्षा होने से पूर्व ही परीक्षाफल की तिथि घोषित कर यथासमय उसका प्राकट्य नियमित रूप से सफलतापूर्वक करते रहे। इसके लिये दुबेजी ने केवल योजनाबद्ध तरीके से कार्य करते, अपितु योजनाओं के संबंध में परीक्षा विभाग के व्यवस्थापक श्री देवी दास चौधरी (वर्तमान परीक्षा मंत्री) एवं अन्य सहयोगी कार्यकर्ताओं से चर्चा करते। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी योजना सिर्फ उनकी न होकर पूरे विभाग की योजना बन जाती और छोट से बड़े सभी कर्मचारी टीम भावना से कार्य कर उसे पूर्ण बनाने में लग जाते। दुबेजी की इस व्यवस्थित एवं चुश्त परीक्षा प्रणाली ने देश की अनेक समुद्देश्यीय संस्थाओं को आकर्षित किया। यही नहीं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परीक्षा तंत्र एवम् उसके परीक्षामंत्री की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। समिति के परीक्षा विभाग की चतुर्दिक ख्याति से अभिज्ञ होकर नागपुर विश्व॰ विद्यालय के वाईस चांसलर की मंगलमूर्ति ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्यालय एवम् उसके परीक्षा विभाग का निरीक्षण किया वहाँ की सम्पूर्ण व्यवस्था से वे न केवल संतुष्ट हुए अपितु उसको एक मानदण्ड स्वीकार करते हुए उन्होंने घोषणा की कि वे अपने विश्वविद्यालय से लोगों को केवल इसलिये वर्धा भेजेंगे कि वे यह देख सकें कि परीक्षा की व्यवस्था किस प्रकार की जाती है।

सन् १९५१ में समिति पर एक महान संकट पड़ा। समिति के मंत्री के विरुद्ध उनके द्वारा ही समिति में लाये गये कुछ कार्यकर्ताओं ने विद्रोह कर दिया। कुछ कार्यकर्ताओं को मुक्त कर दिया, किन्तु आगे चलकर परिस्थिति इतनी बिगड़ी कि तत्कालीन मंत्री को त्यागपत्र देना पड़ा। समिति के लिये यह बड़ा ही भयावह काल था। अस्तित्व का प्रश्न उपस्थित हो गया था। स्थिति इतनी गम्भीर थी कि जान का भी खतरा उत्पन्न हो गया था। शेष कार्यकर्ताओं को विश्वास में लेकर श्री दुबेजी ने बड़ी सूझ बूझ से काम किया। धर्म समिति की बैठकें हुई और निर्णयानुसार श्री मोहनलाल भट्ट को नया मंत्री बनाया गया इस भयंकर घटना का ब्योरा एक स्वतंत्र लेख की ही अपेक्षा रखता है। जो हो, आँधी शान्त हुई और समिति का कार्य सुचारु रूप से फिर चल निकला।

समिति में प्रवेश, परिचय एवम् कोविद परीक्षाओं के विधिवत संचालन का क्रम निर्बाध गति से चला। इसी बीच हिन्दीतर प्रदेशों से यह माँग बराबर आने लगी कि कोविद के आगे एक अन्य उच्च परीक्षा भी आयोजित की जाये। अत: दुबेजी ने 'राष्ट्रभाषा रत्न' नामक उच्च परीक्षा की रूपरेखा तैयार की। इसे तत्कालीन परीक्षा समिति ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया इस प्रकार

'राष्ट्र भाषा रत्न' परीक्षा की व्यवस्था सन् १६४४ से समिति द्वारा सम्पन्न होने लगी।

परीक्षा की व्यवस्था सम्बन्धी सुष्ठु योजनाओं के निर्धारण एवम् क्रियान्वयन के साथ ही साथ दुबे जी ने परीक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। यह कार्य परीक्षा तंत्र के समानान्तर विविध रूप से चलता रहा। दुबे जी ने एतदर्थ न केवल पाठ्यक्रम से संबंधित पुस्तकों का सम्पादन, परिवर्द्धन एवम् संशोधन किया और कराया अपितु रचनात्मक दृष्टि से भी सहयोग प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप कविता, लेख, नाटक, वार्तालाप आदि अनेक विधाओं से संबन्धित उनकी लगभग इक्कीस रचनायें परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में अपेक्षानुसार सम्मिलित की गयीं। इसी प्रकार जब समिति में यह तय हुआ कि प्रादेशिक भाषाओं की शिक्षा हेतु किसी ऐसी पुस्तक की रचना की जाये, जिससे उसको सहज प्रकार से सीखना संभव हो, तब दुबे जी ने इसमें विशेष रुचि ली। उन्होंने अपने मार्गदर्शन में समिति के कार्यकर्त्ता श्री अट्रावलकर जी से 'भारत भारती' नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक तैयार करवाई। देवनागरी लिपि में प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञानार्जन करने वाली इस प्रकार की चौदह पुस्तकें शृंखलाबद्ध रूप से निकलीं। इन पुस्तक मालाओं का व्यापक स्वागत एवम् प्रचार प्रसार हुआ।

समिति द्वारा आयोजित उत्सवों, समारोहों एवम् सम्मेलनों के प्रबन्ध का लगभग पूरा दायित्व सदैव ही दुबे जी के कन्धों पर पड़ता रहा। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के रजत जयन्ती वर्ष में जब एक विशाल समारोह मई महीने में आयोजित हुआ। उस समय भयंकर गर्मी पड़ रही थी, पानी की कमी आदि अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं, किन्तु अपने कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से दुबे जी में तीन हजार से अधिक प्रतिनिधियों के स्वागत एवम् आतिथ्य का कार्य जिस कुशलता से निभाया वह अपने आप में एक मिसाल थी। समिति के प्रधानमन्त्री श्री मोहनलाल भट्ट के मार्गदर्शन में रजत जयन्ती महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर दुबे जी के तत्वाधान में एक उल्लेखनीय कार्य हुआ। उक्त आयोजन से लगभग एक वर्ष पूर्व वे किसी कार्यवश पूना गए थे। वहाँ प्रान्तीय कार्यालय में उन्होंने 'कवि की माला' नामक एक पुस्तक का अवलोकन किया। उसी समय उनके मन में विचार आया कि प्रत्येक प्रादेशिक भाषा के प्राचीन और नवीन एक-एक कवि का परिचय एवम् उनकी चुनी हुयी रचनायें संकलित कर मूल एवं देवनागरी लिपि में उसके अनुवाद सहित तैयार की जाये, जिनकी संख्या पच्चीस हों। समिति के प्रधान मन्त्री ने तथा प्रबन्ध समिति ने इस योजना को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार रजत जयन्ती वर्ष के शुभ अवसर पर पच्चीस ग्रन्थों की यह आकर्षक माला वर्ष प्रतीकों के रूप में समारोह की विशिष्ट उपलब्धि बनी। दुबे जी की देखरेख में इन पुस्तकों का तथा रजत

जयन्ती ग्रंथ का प्रकाशन समिति के उद्यमी कार्यकर्त्ता डॉ० मदन मोहन शर्मा के अनथक प्रयासों से सम्पन्न हुआ।

इसके कुछ ही वर्षों बाद समिति में गाँधी शताब्दी वर्ष मनाया गया। इसी परिप्रेक्ष्य में संस्था की ओर से 'गाँधी परीक्षा' प्रारम्भ की गयी। दुबे जी ने उक्त परीक्षा के लिए 'गाँधी जीवन झलक' नामक एक पुस्तक लिखी, जिसे पाठ्यक्रम के लिये समिति ने स्वीकार कर लिया।

कालान्तर में हिन्दीतर प्रदेशों द्वारा समिति से अपेक्षा की गयी कि एम० ए० हिन्दी के समकक्ष एक अन्य उच्च परीक्षा का संचालन भी समिति द्वारा किया जाये। अतः 'राष्ट्र भाषा आचार्य' नामक परीक्षा की नवीन रूपरेखा गठित हुयी। उन दिनों प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद कार्य तेजी से चल रहा था। दुबे जी ने युगीन प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर आचार्य परीक्षा के लिए अनुवाद सम्बन्धी कार्य को आवश्यक माना। परिणामस्वरूप हिन्दी से प्रादेशिक भाषा में और प्रादेशिक भाषा से हिन्दी भाषा में अनुवाद का कार्य पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बना। इस परीक्षा के लिये परीक्षार्थियों से एक लघु शोध-प्रबन्ध भी लिखाये जाने की पेशकश की गई जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहायक एवम् परीक्षा मन्त्री के रूप में दुबे जी ने अरुणाचल से लेकर कच्छ तक और पंजाब से लेकर आंध्र कर्नाटक तक अनेक यात्रायें की। उनमें उड़ीसा के प्रान्तीय संचालक श्री अनसूया प्रसाद पाठक जी के साथ उत्कल प्रदेश की लगभग एक माह की यात्रा श्री जेठा लाल जोशी के साथ गुजरात, सौराष्ट्र एवम् कच्छ की यात्रा तथा डांगरे जी के साथ महाराष्ट्र, गोवा एवम् कर्नाटक प्रदेश की यात्रा विशेषरूप से महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त समिति के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ दक्षिण भारत के चारों प्रदेशों की लम्बी यात्रा भी अत्याधिक उल्लेखनीय है। दुबे जी ने 'दक्षिण-दर्शन' नामक पुस्तक में अपने यात्राजनित अनुभवों एवम् यात्रा के मुख्य स्थलों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवम् समिति के मूलभूत उद्देश्यों की अभिपूर्ति की दृष्टि से उनकी इन यात्राओं का विशेष महत्व है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि दुबे जी ने राष्ट्र भाषा प्रचार समिति को अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानकर उसकी सर्वतोभावेन सेवा की है। यही कारण है कि समिति की सेवावधि में वे स्वयं ही संस्था का प्रतिरूप हो गये थे। सन् १६७८ में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई जिन के कारण उन्हें समिति की सेवा से अलग होना पड़ा। उनकी अभूतपूर्व सेवा का आकलन इस सत्य से सहज ही किया जा सकता है कि जब राष्ट्रभाषा समिति ने

अपनी स्वर्ण जयन्ती (सन् १९८७) मनायी, तब संस्था के अधिकारियों ने दुबे जी से ही अनुरोध किया कि वे समिति के ५० वर्षों का इतिहास लिख कर दें। उस समय रामेश्वर दयाल जी अस्वस्थ चल रहे थे। फिर भी उनके आग्रह से छुटकारा नहीं पा सके। उन्होंने लखनऊ स्थित अपने 'चित्रकूट' निवास में बैठकर समिति की अपेक्षानुरूप इतिहास लिखा, जो स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर 'स्वर्णांकिना' नाम से प्रकाशित हुआ। इतना ही नहीं समिति के संयुक्त मन्त्री श्री द्वारिकादास के विशेष आग्रह पर वे समारोह से एक माह पूर्व वर्धा गये और वहाँ रहकर सम्पूर्ण व्यवस्था में अपना यथाशक्ति सहयोग प्रदान किया। इसी अवसर पर 'सर्वमान्य हिन्दी' नामक एक उपयोगी पुस्तक का सम्पादन भी उनके द्वारा सम्पन्न हुआ।

आज दुबे जी समिति से असम्पृक्त होकर हिन्दी की एकान्त साधना कर रहे हैं, किन्तु अब से लगभग बारह वर्ष पूर्व वे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता थे। समिति उनके जीवन का मिशन था और उसके लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन होम कर दिया। आगे आने वाली पीढ़ी भले ही उनके महान उद्योग को समझने में समर्थ न हो, परन्तु इससे उनकी सेवाओं का महत्व कम न होगा। जब तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का अस्तित्व विद्यमान रहेगा। तब तक उसके एक निर्माता एवम् उन्नायक श्री रामेश्वर दयाल जी का नाम भी अमर रहेगा।

अत्यन्त लोकप्रिय परीक्षा मंत्री

मोहन लाल भट्ट

संस्कृत में एक उक्ति है, 'अति परिचयाद अवज्ञा'। श्री रामेश्वर दयाल दुबे का और मेरा सम्बन्ध इतना निकट का रहा है कि उनके सम्बन्ध में कुछ लिखना मेरे लिए एक समस्या बन जाती है। ऐसे सम्बन्ध में एक दूसरे के गुण-अवगुण मिश्रित रूप में एक-दूसरे पर ऐसे उजागर हो जाते हैं कि व्यक्ति का मूल्यांकन करना कठिन ही नहीं, असंभव-सा हो जाता है। हमारा लगभग २८ वर्ष का दीर्घकालिक सम्बन्ध अब एक दूसरे से पृथक होते हुए भी, पृथकता का अनुभव नहीं करने देता। मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि मैं उन्हें क्या कहूँ? मित्र, छोटा भाई या मेरी त्रुटियों को पूरा करने वाला ...... अन्तरंग और बहिरंग – दोनों ओर से पूरक साथी कहूँ?

गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की थी । उन्होंने आग्रह रखा था कि उसका काम हिन्दी - साहित्य सम्मेलन के अन्तर्गत चले । सम्मेलन ने भी इसे अपनी ही एक समिति माना था, परन्तु उसे कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी । जब गाँधी जी ने दो लिपि - देवनागरी और उर्दू में लिखी जाने वाली हिन्दी हिन्दुस्तानी की बात चलाई, तब गम्भीर मतभेद पैदा हुआ । श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन और सम्मेलन दोनों इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे ।

दुबे जी तो आरम्भ से ही सन् १९३७ के प्रारम्भ में समिति के कार्य संचालन में कार्य करने के लिए आ गये थे । वे साहित्यरत्न और एम० ए०–दोनों उपाधि धारण किए थे और टण्डन जी ने उन्हें वर्धा भेजा था । पांच वर्ष तक उन्होंने राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर द्वारा पं० हृषीकेश शर्मा के साथ मिलकर प्रान्तों से आने वाले छात्र - छात्राओं को हिन्दी का उच्च ज्ञान और प्रचारक कार्य की शिक्षा दी थी । १९४१ - ४२ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में जो प्रथम धर्म संकट दुबे जी के सामने आया, वह उनकी कसौटी का समय था । दो लिपियों के वे पक्षधर न थे, इसलिए नव स्थापित हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के वे अंग न बन सके और अपने घर चले आये ।

गाँधी जी ने समिति टण्डन जी को सौंप दी । अब टण्डन जी को इसकी व्यवस्था और संगठन सम्हालना था । समिति की एक बैठक गाँधी जी की कुटी में ही सेवाग्राम में १२–७–१९४२ को सम्पन्न हुई । श्री दुबे जी को तार देकर बुला लिया गया था । इस बैठक में श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन को समिति का मन्त्री और दुबे जी को सहायक मन्त्री मनोनीत किया गया । इसी बैठक में समिति के पूर्व परीक्षामन्त्री ने अपना त्यागपत्र दे दिया । निश्चय किया गया कि परीक्षा मन्त्री का कार्य भी श्री दुबे जी सम्हालेंगे ।

उस समय के वातावरण में, जिस पर गाँधी जी का बहुत बड़ा प्रभाव था, उस समिति को 'संभालना' जिसमें अब गाँधी जी नहीं थे, बहुत कठिन काम था । फिर भी नये मन्त्रियों ने काम को हानि नहीं पहुँचने दी । अंतरंग व्यवस्था और संगठन की पूरी जिम्मेदारी दुबे जी पर थी । वे पहले से ही उससे सम्बन्धित थे । इसलिए उन्होंने कार्यकर्ताओं के सहयोग और सहायता से काम को सम्हाल लिया । कई ओर से विरोध के होते हुए भी समिति का काम बढ़ता गया, रुका नहीं । समिति का संगठन और उसकी व्यवस्था सुदृढ़ थी । उसे सेवा-भावी प्रचारकों का साथ और सहयोग प्राप्त था । समिति की परीक्षायें तथा परीक्षामन्त्री - दोनों लोकप्रिय बन गये थे ।

समिति के नये मन्त्री श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन बौद्ध साहित्य और पालि साहित्य के विद्वान थे । वे गाँधी विचार के पुष्ठ पोषक नहीं थे । वे अपने

को स्वतन्त्र विचारक कहते और मानते थे । उन्होंने अपने ही जैसे लोगों को समिति में लाकर काम में लगाया था । वे सब विद्वान थे और स्वतंत्र विचार रखते थे । इधर दुबे जी एक अच्छे साहित्यिक होने पर भी गाँधी - विचार से प्रभावित थे और समिति के कार्य के प्रति निष्ठावान थे । वे कार्यकर्ताओं के साथ घुलमिल कर समिति का काम कर रहे थे । इस तरह समिति के कार्यकर्ता दो स्तरों में बट - से गये थे ।

सन् १९४६ में ऐसा अवसर भी आया, जब समिति का और खासकर परीक्षा तंत्र का काम चलाना परीक्षा मन्त्री के नाते श्री दुबे जी को कठिन हो गया। जब मन्त्री की ओर से कोई उचित व्यवस्था न हुई, तो विवश होकर दुबे जी ने अपने दोनों पदों से त्याग पत्र दे दिया । श्री दुबे जी अब तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पर्याय बन चुके थे । इसलिए उनके त्यागपत्र स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं था । श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, जेठा लाल जोशी आदि कार्य समिति के सदस्यों के अनुरोध पर दुबे जी को समिति में रुकना पड़ा । इतना ही नहीं, श्री टण्डन जी के संकेत पर ऐसी व्यवस्था की गई, जिससे समिति के सम्पूर्ण अर्थ-पक्ष पर दुबे जी की निगाह रहे ।

सन् १९५१ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन में एक संकट उपस्थित हुआ । वहाँ दो दल बन गये थे । एक दल ने वर्धा समिति पर अपना कब्जा बढ़ाना चाहा । चूँकि श्री आनन्द जी दूसरे दल से सम्बन्धित थे, समिति के कुछ कार्य-कर्ताओं का उपयोग श्री आनन्द जी के विरोध में करना चाहा । आश्चर्य की बात यह रही कि श्री आनन्द जी का विरोध करने वाले उन्हीं के अपने लोग थे जिन पर कार्य अक्षमता और अनुशासनहीनता के कारण समिति के मन्त्री को कार्य समिति की इच्छानुसार अंकुश लगाना पड़ रहा था ।

तत्कालीन मन्त्री के विरुद्ध जो आन्दोलन छिड़ा वह भयानक था । उसको हटा देने के लिए सम्मेलन के अध्यक्ष स्वयं वर्धा पधारे । उन्होंने वर्धा की जनता को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया । सहायक मन्त्री दुबे जी को समिति का प्रधान मन्त्री बनाने का प्रलोभन भी दिया गया, जिसे श्री दुबे जी ने स्वीकार नहीं किया । क्योंकि वह न तो हिन्दी प्रचार की दृष्टि से उचित था, न समिति के हित में था ।

विषम परिस्थिति को देखते हुए समिति की कई आपात बैठकें हुईं । समिति ने इस समय बड़ी सूझबूझ और हिम्मत से काम लिया । मन्त्री को अवकाश पर भेज दिया गया और मुझे अस्थायी संयुक्त मन्त्री नियुक्त किया, गया ताकि समिति का काम चलता रहे ।

अपनी सहायता के लिए श्री दुबे जी ने राजस्थान प्रान्तीय समिति के

मंत्री श्री दौलतराम जी को थोड़े समय के लिए वर्धा बुला लिया था जो बड़े सहायक सिद्ध हुए। समिति के कार्यकर्ता दुबेजी के साथ थे। वर्धा की शिक्षित जनता का भी उन्हें सहारा मिला था। समिति के लिए यह बड़ा संकट का काल था किन्तु बड़े धैर्य और साहस से काम किया गया। अन्त में समिति की रक्षा हो गई। विद्रोही लोग जो समर्थ थे एक एक करके वर्धा छोड़कर चले गये। यह समिति और उनके दोनों की हित की बात हुई।

इस प्रसंग में कुछ ऐसी स्थित पैदा हो गई कि समिति के पुराने मंत्री से यह कहना पड़ा कि समिति की हित की दृष्टि से आपको समिति से दूर रहना चाहिए। उन्होंने स्वीकार किया और समिति के मंत्री पद पर मेरी नियुक्ति कर समिति की व्यवस्था का भार मेरे कंधों पर डाला। सच पूँछा जाय तो यह भार मुख्यत: दुबेजी पर ही जाकर पड़ा। सम्मेलन के दो पक्षों का झगड़ा अदालत में चल रहा था, मुझे तो कुछ अरसे तक उसी में उलझे रहना पड़ा। उस झगड़े की छाया समिति पर भी पड़ रही थी। सम्मेलन के अध्यक्ष ने समिति के बैंक और पोस्ट आफिस को लिख दिया कि बैंक पैसा न दे, न पोस्ट आफिस मनी-आर्डर, रजिस्ट्री आदि। समिति का काम ठप होने लगा, काम चलाना कठिन हो गया। तब सभी प्रचारकों और केन्द्र व्यवस्थापकों को लिख दिया गया कि मनीआर्डर, रजिस्ट्री आदि श्री रामेश्वर दयाल दुबे जी के व्यक्तिगत नाम पर भेजा जाये। सबने इसे स्वीकार कर लिया। किसी ने जरा भी शक या विरोध नहीं किया। इस प्रकार पूरे वर्ष का परीक्षा शुल्क जो सात-आठ लाख के करीब होता था, दुबेजी के नाम पर आता था। यह भी दुबेजी और समिति की प्रतिष्ठा का सूचक था। श्री दुबेजी का नाम और समिति के नाम और काम में अभिन्नता आ गयी थी।

समिति का काम चल पड़ा। समिति ने कई नये काम शुरू किये। परीक्षार्थियों की संख्या भी बढ़ी। विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रभाषा सम्मेलन होने लगे। सम्मेलन के साथ ही दीक्षान्त समारोह भी सम्पन्न किये जाते थे। 'राष्ट्रभाषारत्न' उत्तीर्ण स्नातकों का जुलूस श्री दुबेजी के नेतृत्व में रत्न की शाल ओढ़कर निकलता था— वह एक अद्भुत दृश्य था और उसका लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था।

दुबेजी जन्मजात शिक्षक हैं। विद्यार्थियों को पढ़ाने और उनके साथ घुल मिल जाने में उनको बड़ा रस और आनन्द मिलता है। उनमें विनोद की भी अच्छी खासी मात्रा है। वे एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। कितने ही उनके ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार कार्य दुबेजी के जीवन का मिशन तथा स्वधर्म बन गया है। मेरा विश्वास है, कि वे जहाँ भी रहेंगे, राष्ट्रभाषा का चिन्तन तथा सक्रिय कार्य करते रहेंगे। साथ ही साथ उसके प्रचार-प्रसार और समृद्धि में

सहायक होंगे और उसकी साँस्कृतिक उपयोगिता को बढ़ाने में सदा सहयोग तथा सहायता करते रहेंगे ।

दुबेजी मेरे एक अच्छे मित्र हैं, साथी हैं, निष्ठावान कार्यकर्ता हैं । उनपर किसी भी कार्य और बात के लिए पूरा भरोसा किया जा सकता है । वे मूलत: भावना प्रधान व्यक्ति हैं यदि उनमें कोई कमजोरी है, तो वह यह है कि उनकी भावना को कब ठेस पहुँचेगी यह कोई नहीं कह सकता । उनकी अधिकार की भावना भी छुई-मुई की तरह क्षणभगुर है, परन्तु उनकी यह कमजोरी ही उनके प्रियदर्शी गुणों को उभारने में सहायक होती है ।

चुम्बकत्वशील व्यक्तित्व : रामेश्वर दयाल दुबे

– द्वारकादास वेद

चालीस वर्ष पहले की एक घटना याद आती है । बम्बई में 'विजय हिन्दी विद्यालय' के निरीक्षक के लिए एक व्यक्ति पधारे। यह राष्ट्रभाषा केन्द्र बम्बई की चार मंजिला इमारत में चलता था । यह व्यक्ति सीढ़ियों के द्वारा मंजिल ऊपर चढ़ रहा था । केन्द्र के संचालक के रूप में इन पंक्तियों का लेखक साथ में था । व्यक्ति ने कहा–"यह बम्बई है। यहाँ की इमारतें ऊपर उठती जा रही हैं, लेकिन यहाँ का आदमी नीचे चलता जा रहा है ।"

यह पैना निरीक्षण करने वाले सज्जन थे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के परीक्षा मंत्री आदरणीय पं० रामेश्वर दयाल दुबे । वे जहाँ भी जाते हैं, अपनी पैनी दृष्टि से जो महसूस करते हैं, उसे स्पष्ट शब्दों में कहे बिना नहीं रहते । मैने चालीस वर्ष पहले भी देखा था और आज भी देखता हूँ कि वे जहाँ भी हों हमेशा लोगों से घिरे हुए रहते हैं । हर एक को ऐसा महसूस होता है कि उनसे कुछ न कुछ नई बात सुनने को मिलेगी । निरीक्षक की उनकी पैनी दृष्टि उनके द्वारा लिखित 'आलूचना' पुस्तक पढ़ने से अनुभव की जा सकती है । परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में से पाये गये विविध उत्तरों का चटपटा आलूचना मनो-रंजन के साथ-साथ ज्ञान देने वाली खुराक है ।

दुबेजी एक साहित्यकार हैं । समिति में काम करते-करते उन्होंने ४५ से अधिक पुस्तकों का साहित्य भंडार पाठकों को दिया है । सारा लेखन सुबह आठ बजे से रात्रि के आठ बजे के बीच समिति के कार्य करने के समय को छोड़कर अपने निजी जीवन से चुराये हुए समय का लेखन है । और यह सुबह चार बजे

से छ: बजे के बीच अपनी साधना - कुटी में किया हुआ अद्भुत प्रयास है।

उनका अपना निवास हो या समिति का पूरा परिसर– सारा का सारा उनका घर था, जिसकी स्वच्छता की, हरियाली की और सुशोभन की उन्हें हमेशा चिन्ता बनी रहती थी। श्री दुबेजी के समकालीन समिति में काम करने वाले कार्यकर्ता, जो अब वृद्ध हो रहे हैं, उस समय की बातों को बड़े आदर के साथ स्मरण करते हैं। उनके द्वारा आयोजित बाल दिवस, 'खाऊ' वितरण, वृक्षारोपण वसंतोत्सव आदि का जो आनन्द उन्होंने उस समय उठाया था, उसका बखान करते थकते नहीं। तब मेरे सामने भी उस समय का चित्र दृश्यमान हो उठता हैं। वर्धा आने पर मैंने जो भी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ की, तो कार्यकर्ता याद करते हैं कि दुबेजी के समय में ऐसा ही होता था।

आज वे सुदूर लखनऊ में है। वर्धा से दूर होने पर भी पत्र व्यवहार के द्वारा उन्होंने ऐसा सम्बन्ध बना रखा है और ऐसे मूल्यवान सुझाव देते रहते हैं कि जैसे हमारे अति निकट ही हों। समिति से निवृत हुए बारह साल हो रहे हैं। फिर भी आज हजारों लोग उनके कार्यकलापों को सम्मान सहित याद करते हैं। वर्धा शहर के गणमान्य लोग भी बार - बार उनकी वृत्तियों की चर्चा करने से थकते नहीं। १९८७ स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर राष्ट्रभाषा पत्रिका में उन्होंने एक छोटे से लेख में लिखा था कि "दुबे पलटकर समिति में आ गया है।" गुजराती में 'दुबे' को 'दवे' कहते हैं और 'दवे' का उल्टा वेद होता है।

उनके इस वाक्य से मुझे शान्ति मिली है। दुबेजी के प्रति लोगों के मन में जो आदर है, वह उनके गुणों के प्रति सद्भाव है। इस तरह दुबेजी मेरे लिए प्रेरणास्रोत भी हैं। श्री दुबेजी वर्धा समिति के एक महान स्तम्भ हैं। हमें उन पर गर्व है।

(वर्तमान प्रधानमन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा) ✱ ✱

समिति के सजग प्रहरी

(श्रीमती) मदालसा नारायण

मेरे पूज्य पिता स्व० श्री सेठ जमना लाल बजाज के आग्रह और अनुरोध पर जब गांधी जी ने वर्धा को अपना निवास-स्थान बनाया, तब वर्धा को सहज ही महत्व मिल गया। यह राष्ट्रीय आन्दोलन का जमाना था। उन दिनों गाँधी जी रचनात्मक कार्यों पर बहुत जोर दे रहे थे। आचार्य विनोबा भावे, काका साहब कालेलकर, आचार्य मश्रूवाला जी आदि महान व्यक्तियों की उपस्थिति के कारण बाहरी लोगों के लिए वर्धा आकर्षण का केन्द्र बन गया था। विभिन्न राष्ट्रीय

प्रवृत्तियों का संचालन भी वर्धा से ही हो रहा था। आये दिन देश के प्रमुख नेता विद्वान, साहित्यकार वर्धा आया करते थे। एक तरह से उस समय वर्धा भारत की राष्ट्रीय राजधानी बन गई थी।

मैनपुरी निवासी श्री श्रीमन्नारायण गाँधी जी के रचनात्मक कार्यों में सहयोग देने के लिए वर्धा आ गये थे। उन्ही के साथ मेरा विवाह सम्पन्न हुआ। इस नाते मैनपुरी मेरे लिए ससुराल बन गई।

सम्माननीय भाई श्री रामेश्वर दयाल दुबे भी मैनपुरी के निवासी थे मेरे ससुर बाबू धर्मनारायण जी और दुबेजी के बड़े भाई पं० मनसुख लाल दुबे–दोनों एडवोकेट थे, स्नेही मित्र थे। मैनपुरी के मिशन हाई स्कूल में श्री दुबेजी और श्री मन्नारायण सहपाठी थे। आगे चलकर दुबेजी दूसरी शाला में चले गये और इस तरह दोनों का साथ छूट गया। अपने-अपने रास्ते पर दोनों बढ़ते रहे।

उन दिनों के नवयुवकों में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था। श्री श्रीमन्नारायण वर्धा पहले आ गये थे। श्री दुबेजी ने श्रीमान् जी से पत्र व्यवहार किया। दिल से दिल का तार मिला। श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन की प्रेरणा थी ही, उनका आशिष लेकर श्री दुबेजी वर्धा आ गये और राष्ट्र भाषा प्रचार समिति में शिक्षक का काम करने लगे। श्री दुबेजी के साथ हमारा दुहरा सम्बन्ध रहा। मैनपुरी के होने के कारण पारिवारिक रूप से और वर्धा में कार्य करने के कारण सहकर्मी के रूप में यह घनिष्ठता दिनों दिन बढ़ती ही रही और आज भी निभ रही है।

काका साहब कालेलकर और श्रीमन जी की इच्छा के अनुसार श्री दुबेजी राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के कार्य में लग गये। वे उसमें ऐसे रच-पचे कि लगातार ४० वर्ष तक उन्होंने इसे अपने जीवन का एकमेव उद्देश्य बना लिया। सन् १९४२ से समिति के सहायक मंत्री एवं परीक्षा मंत्री की दुहरी जिम्मेदारी को ओढ़े हिन्दी प्रचार के एक सफल प्रचारक, परीक्षातंत्र के कुशल संचालक, सफल अध्यापक, प्राध्यापक तथा हिन्दी साहित्य के मूक सर्जक की भूमिका निभाते रहे।

१९४२ में जब अधिकांश राजनेता कारागार में बन्दी थे, तब समिति की सारी जिम्मेदारी भी दुबेजी ने बड़ी सजगता से सम्हाली। यह उनकी दृढ़ निष्ठा का प्रमाण भी है। गाँधीजी के विचार प्रणाली से प्रभावित होने के कारण वे मितव्ययी और स्वावलम्बी प्रकृति के हैं। हिन्दी के माध्यम से देश के एक बड़े राष्ट्रीय कार्य में उन्होंने अपने जीवन को लगाया, और साहित्य सृजन भी करते रहे हैं।

परम्परागत साहित्य संस्कारों के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं का समन्वय श्री दुबेजी के जीवन में सहज रूप से होता गया है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के कार्यों में ऐसे लगे और उसके साथ ऐसे एकरूप हो गये कि मुझे तो

सदा ऐसा ही महसूस होता रहा कि 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' और दुबेजी मानो पर्यायवाची हैं। वे जब तक वर्धा में रहे, समिति का उत्तम प्रतिनिधित्व उनके द्वारा होता रहा। वे समिति के सजग प्रहरी रहे। उन्होंने समिति के प्रांगण में राष्ट्रीय स्तर के नित नये आयोजन किए, जिससे समिति का वातावरण सदा प्राणवान बना रहा।

सन् १९८३ में दिल्ली में आयोजित तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में हिन्दी के महान विचारकों और साहित्यकारों का सम्मान किया गया था, उसमें श्री दुबेजी भी एक थे। यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उन्ही का स्मरण करते करते कभी लिखा था —

माटी का है दीप
स्नेह से है परिपूरित,
पड़ी हुई उसमें बाती भी
फिर भी दीपक उसे न कहते।
पाकर कभी किसी की ठोकर
निज अस्तित्व मिटा सकता है।
किन्तु ज्योति से ज्योतित होकर
जब वह जलता
तभी दीप की संज्ञा पाता।
फैलाता आलोक
अमित को मार्ग दिखाता।
यदि बनता है दीप
प्राण प्रज्ज्वलित करो तुम।

दुबेजी का जीवन माँगलिक दीपक जैसा है। उनके प्रकाश में बहुतों को मार्ग दर्शन मिलेगा। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा ने अखिल भारत की जो अनुपम और अद्वितीय सेवा की है, उसका लेखा-जोखा करना कठिन है। इस कठिन कार्य को पूरा किया श्री दुबेजी ने, 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का ५० वर्ष का इतिहास लिखकर, जो राष्ट्रीय उत्थान की परम्परा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हिस्सा सिद्ध होगा।

[जीवन कुटीर वर्धा]

कर्मरत जीवन के प्रतीक

—रामकृष्ण बजाज

श्री रामेश्वर दयाल जी से बजाज-परिवार का परिचय और सम्बंध बहुत वक्त से चला आ रहा है। पूज्य पिताजी (श्री जमनालाल बजाज) और हम सभी ने यह हमेशा चाहा कि सारे भारत से सम्पर्क करा सकने वाली राष्ट्रभाषा बने, उसका सर्वांगीण विकास हो और उसे सबकी स्वेच्छिक स्वीकृति मिले, किसी को कोई दबाव या प्रलोभन के कारण हिन्दी न सीखनी पड़े। दुबेजी आजीवन इसी उद्देश्य को पूरा करने में लगे रहे हैं।

पूज्य पिताजी की इच्छा की पूर्ति 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा ने सराहनीय कार्य किया है। दुबेजी ने समिति की सेवाओं में अपने जीवन का अधिकांश भाग खुशी-खुशी अर्पित किया। वर्धा में रहते हुए उन्होंने अपनी साहित्यिक सृजन-शक्ति का समूचा उपयोग किया। अभी तक उनकी ५० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यह सब वर्धा के लोग भूले नहीं हैं। उनकी मौलिक रचनाएँ छोटे बड़े सभी के काम की हैं, यह उनके कृतित्व की एक और विशेषता है और उनकी बहु-विधि प्रतिभा का द्योतक है।

मेरे मन में उनके प्रति हमेशा आदर की भावना रही। वैसे अब बहुत दिनों से उनके वर्धा से बाहर रहने और अपनी व्यस्तता के कारण हम दोनों ही एक-दूसरे के निकट संपर्क में नहीं आ सके हैं, फिर भी हमारा सौहार्द्र तो बराबर बना ही रहा है।

अपनी सादी रहन-सहन, नियमित सरल जीवन से उन्होंने सब वर्धा वासियों का हृदय जीत रखा था। अपने सद्व्यवहार एवं मित्रतापूर्ण स्वभाव से वे सदा ही लोकप्रिय रहे। उनके यहाँ से चले जाने के कारण वर्धा के साहित्यिक जगत् में एक प्रकार की रिक्तता सी आ गई है।

अपनी पारिवारिक कठिनाइयों के बावजूद वे कभी अपने कार्यों के प्रति पूरी निष्ठा बरतने में पीछे नहीं हटे। अनेक हिन्दी सेवी संस्थाओं और राज्य सरकारों के सदस्य तथा सलाहकार की हैसियत से भी वे हिन्दी जगत् के काम आते रहे हैं।

[बजाज भवन, बम्बई]

कुछ शब्द:
दुबे जी के सम्बन्ध में

– रसूल अहमद 'अबोध'

यद्यपि पं० रामेश्वर दयाल दुबे को समिति से अवकाश पाये वर्षों बीत चुके हैं और वे लखनऊ में रहने लगे हैं, पर समिति के प्रांगण में जब भी पहुँचता हूँ तब ऐसा लगता है कि किसी न किसी ओर से दुबेजी प्रकट होने ही वाले हैं, और उनकी आत्मीयता भरी स्नेहपूर्ण आवाज हवा में तैरने वाली ही है। यह केवल मेरी ही बात नहीं है, कितनों ही का ऐसा ही एहसास है और यह एहसास केवल स्थानीय लोगों का अर्थात वर्धा या वर्धा के आस पास के उन सभी लोगों का हो—ऐसा भी नहीं है, बल्कि दूर और निकट के उन सभी लोगों का हैं, जो गत ३५–४० वर्षों से किसी न किसी रूप में समिति से सम्बद्ध रह चुके हैं। इन में महाराष्ट्र और गुजरात के लोग हैं, बंगाल, असम, उत्कल, मणिपुर के लोग भी हैं और सुदूर नागालैन्ड और मिजोरम के लोग भी हैं। इतना ही नहीं सुरीनाम, मारीशस और जापान के लोग भी हैं। ऐसा एहसास होना एक प्रकार से स्वाभाविक भी हैं। क्योंकि इतने लम्बे समय तक (२७ से ७८) वे समिति से सम्बद्ध रहे और लगन तथा सूझ-बूझ के साथ समिति के कार्यों में लगे रहे कि दुबेजी और समिति पर्यायवाची शब्द बन गये। इसीलिए कोई भी ऐसा सोच भी नहीं सकता था कि समिति रहेगी और समिति से दुबेजी का छुटकारा हो जायेगा। पर होनी होके रही, और दुबेजी ने 'बाप का राज बटाऊकी तरह' छोड़कर वर्धा से कई कोसों दूर लखनऊ में अपना आशियाना बना लिया।

सन् १९३७ में दुबेजी का सम्बन्ध वर्धा से जुड़ा। गाँधीजी के कारण वर्धा का उन दिनों विशेष महत्व था। दुबेजी के सहपाठी और मित्र श्री श्रीमन्नारायण पहले ही वर्धा आ गये थे। उनसे दुबेजी का पत्र व्यवहार चला और वर्धा के राष्ट्रीय वातावरण ने उन्हें वर्धा बुला लिया।

'हिन्दी प्रचार समिति' द्वारा संचालित 'राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर' में दुबेजी ने पाँच वर्ष तक सह अध्यापक और व्यवस्थापक का काम किया। इस अवधि में लगभग १५० हिन्दी प्रचारक तैयार हुए, जिन्होंने अपने अपने प्रान्त में जाकर हिन्दी–प्रचार का स्तुत्य कार्य किया।

सन् ४१–४२ में हिन्दी-हिन्दुस्तानी का विवाद छिड़ा। गाँधीजी दो लिपियों का समर्थन करते थे, जो सम्मेलन को स्वीकार न था। समिति के पदाधिकारी बदले। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन समिति के नये मंत्री बने और

रामेश्वर दयाल दुबे को सहायक मंत्री तथा परीक्षा मंत्री बनाया गया। हिन्दी के प्रति लगन और सूझ-बूझ के साथ दुबेजी काम में लग गये ।

इस लगन और सूझ-बूझ का परिणाम यह हुआ कि समिति का कार्यक्षेत्र बढ़ गया, परीक्षार्थी-संख्या बढ़ती गई । देश ही नहीं विदेशों में भी हिन्दी-प्रचार का काम प्रारम्भ हो गया ।

दुबेजी के मन - मस्तिष्क में जो एक चिनगारी पड़ी हुई थी साहित्य और कला की, उसको भी हवा मिलने लगी। वे समिति का कार्य करते करते साहित्य रचना में भी प्रवृत्त हो गये । कविता, कहानी नाटक, एकांकी, बाल साहित्य आदि सभी विधाओं में आप की लेखनी चलने लगी। मधुकरी वृत्ति होने के कारण जहाँ भी इन्हें सौन्दर्य रस मिला, उसे अपनाते गये । उनकी रचनाओं की वृद्धि होती गई । छोटी बड़ी लगभग पचास रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है, पर यह सब होने पर भी दुबेजी का सारा व्यक्तित्व "कवि न होहुँ नहि चतुर प्रवीना" ही कहता रहता है ।

सन् १९४८ में मेरा भी वर्धा पहुँचना हुआ । काकावाड़ी में रह कर हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम करने लगा । वर्धा में यत्र तत्र होने वाले समारोह में श्री दुबेजी के दर्शन हो जाते थे, उसे भेंट नहीं कहा जा सकता था । धीरे धीरे परिचय भी बढ़ा । 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' में होने वाले विभिन्न समारोहों में श्री दुबेजी को थोड़ा निकट से देखने को मिला ।

१९५६ में 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' वर्धा से दिल्ली स्थानान्तरित हो गई । काका साहब की सलाह से जब 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा का मैं एक कार्य कर्ता बना, तब श्री दुबेजी के और निकट पहुँच गया । धीरे-धीरे घनिष्ठता बढ़ी । साहित्य से मेरा लगाव था ही । इसलिए एक दूसरे की रचनाओं से परिचित होने लगे । आगे चलकर तो यह स्थित हो गई कि उनकी कम ही ऐसी रचनाएँ होंगी, जिनको उनके मुख से सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त न हुआ होगा । और यह क्रम वर्षो तक चलता रहा । आगे भी वर्षो तक चलता रह सकता था, किन्तु नियत का विधान कुछ दूसरा ही था । अर्थात् उन रामेश्वर दयाल दुबे का, जिनका नाम समिति का पर्यायबाची बन गया था, उन्हें ऐसी मानसिक यंत्रणाओं से गुजरना पड़ा, जो सचमुच ही असह्य थी । ऐसी अवस्था में बोरिया-बिस्तर बाँधने के अलावा उनके सामने कोई चारा न रह गया ।

४० वर्षो तक जिस समिति के साथ उनका सम्बन्ध रहा था, उसके प्रति उनके मन में मोह होना स्वाभाविक ही था । जब पानी सिर से ऊपर चला गया तो राम को अयोध्या छोड़नी ही पड़ी । वे उत्तर प्रदेश छोड़कर जिस वर्धा में सन् ३७ से ७८ तक लगातार हिन्दी का काम करते रहे थे, उस वर्धा को जो छोड़

र फिर उत्तर प्रदेश लौट जाना पड़ा और लखनऊ के 'चित्रकूट' में रम जाना पड़ा।

समिति और वर्धा छोड़ने के समय श्री रामेश्वर दयाल जी की मानसिक स्थिति क्या हुई होगी, उसकी तो केवल कल्पना ही की जा सकती है, पर शायर शब्दों में—

बुलबुल ने आशियाना चमन से उठा लिया।
उसकी बला से जाग रहे या हुमा रहे॥

र दुबेजी तो अब भी अपने उस चमन की यथाशक्ति सेवा करते रहते हैं।

सरकार नगर, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र]

* *

सहजता के प्रतीक : रामेश्वरदयाल दुबे

— गिरिजाशंकर त्रिवेदी

श्री रामेश्वरदयाल दुबे जी से प्रथम बार मिलने का अवसर लगभग २५ वर्ष पूर्व बम्बई के निकट ही स्थित लोनावाला के रम्य परिसर में मिला था। वहाँ बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा का त्रिदिवसीय शिविर था। उन दिनों श्री दुबेजी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के परीक्षा मंत्री थे। स्वभावतः वर्धा से आते ही उन्होंने जब शिविरार्थियों की सूची देखी, तो उसमें मेरे नाम को पढ़ते ही सभा के मंत्री से पूछा—"क्या गिरिजाशंकर जी त्रिवेदी भी इस शिविर में आये हुए हैं ? उनसे मिलना है। किस कमरे में हैं ?" मंत्री महोदय ने कहा "समय अधिक हो गया है। कल सुबह प्रार्थना के बाद जलपान के समय मिलवा दूँगा।

सुबह जैसे ही मैं जलपान-कक्ष में पहुँचा कि दुबेजी दोनों हाथ जोड़े नमस्कार की मुद्रा में मेरे सामने खड़े थे। मैंने झुककर ज्योंही चरणस्पर्श करना चाहा, उन्होंने मेरे दोनों हाथ पकड़कर सीने से लगा लिया और बोले—"मजा आ गया, यह जानकर कि तुम हिन्दी के पत्रकार ही नहीं हो, हिन्दी के लिए भी काम कर रहे हो।" फिर तो लगभग एक घंटे तक वे मुझसे 'नवनीत' के लेखों और हिन्दी के भविष्य पर चर्चा करते रहे।

उनकी काया और वेशभूषा काफी समय तक मुझे विचार में डाले रही। खादी की शुभ्र श्वेत धोती, खादी का ही हल्के रंग का कुरता और सिर पर खादी की गाँधी टोपी। पक्का गेहुँवा रंग, अधरों पर खेलती मुस्कान और गहरी तीक्ष्ण दृष्टि। इन्हीं सबका समन्वय थे श्री रामेश्वरदयाल दुबे। ऐसा लगता था

कि गाँव का कोई शिक्षित किसान सामने खड़ा है । पर उनके चेहरे का तेज माँ सरस्वती के अनन्य आराधक होने का प्रमाण प्रस्तुत कर रहा था ।

यों तो मैं श्री दुबेजी की कई पुस्तकें पढ़ चुका था, नाम से भी खूब परिचित था, पर प्रत्यक्ष दर्शन का यह पहला ही अवसर था, लेकिन उनकी कलम का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा था, वह कुछ और ही था । मैं समझता था कि भव्य काया, बड़े-बड़े बालों से शोभित मस्तिष्क वाला तेजस्वी मुख मंडल शानदार वेशभूषा में आवेष्ठित रोबदार व्यक्तित्व होगा उनका, पर उनके एकदम सीधे सादे, औपचारिकता से परे, आत्मीयता से भरे व्यक्तित्व को देखकर मैं हैरान रह गया । उस समय किसी का यह कथन याद आया—"जो जितना महान होता है, वह उतना ही विनम्र होता है ।

जिस लगन और जिस निष्ठा से श्री दुबेजी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के माध्यम से हिन्दी की सेवा की है, वह अद्वितीय ही कही जायेगी । लगातार ३५ वर्ष तक वे परीक्षामंत्री रहे और लोकप्रिय परीक्षामंत्री रहे । हिन्दी की विभिन्न संस्थाओं को भी उन्होंने अपना योगदान दिया ।

महाराष्ट्र सरकार के 'हिन्दी सलाहकार बोर्ड' के आप ३ वर्ष तक और सेन्ट्रल रेलवे, नागपुर मंडल की हिन्दी सलाहकार समिति के ५ वर्ष तक सदस्य रहे हैं । सन् १९६५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में १४ माह रह कर रजिस्ट्रार के नाते परीक्षा विभाग की व्यवस्था की आपने सँभाला । इस अवधि में बीच-बीच वर्धा समिति की व्यवस्था देखने के लिए भी वर्धा जाया करते थे । केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के ३ साल तक और अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ' नई दिल्ली के छह साल तक और 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली की हिन्दी संस्थाओं की पाठ्य पुस्तकों के लिये नियुक्त समिति के सदस्य के रूप में आपने महत्वपूर्ण कार्यों को अंजाम दिया है ।

परीक्षामंत्री का वृहत् कार्य तो वे करते ही रहे, सहायकमंत्री होने के कारण समिति के विभिन्न विभागों का भी काम उन्हें देखना पड़ता था ।

उन सबके बीच उनकी लेखनी अजस्र रूप से साहित्य सृजन करती रही है । उन्होंने ६ खंड काव्य, ३ काव्य, ४ नाटक, १ एकांकी, २ हास्य, २ कहानी संग्रह, ३ जीवन-चरित्र, १५ बाल पुस्तकें, ६ पद्यानुवाद और गाँधी-साहित्य पर ४ पुस्तकें लिखीं हैं । चार पुस्तकों का सम्पादन भी आपने किया है । इनके लिखे खंड काव्य 'कोणार्क' और 'चित्रकूट' अत्याधिक लोकप्रिय हैं । इसके अलावा नागपुर और लखनऊ के दूरदर्शन तथा आकाशवाणी द्वारा आपकी अनेक रचनाओं का प्रसारण हो चुका है ।

आप की लिखी पुस्तकें अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल हैं और कई विश्वविद्यालयों में आपके साहित्य पर शोधकार्य हो चुका है तथा हो रहा है।

समिति के लिए दुबेजी ने बहुत सी पुस्तकें लिखीं और बहुतो का संपादन किया। समिति की मासिक पत्रिका 'राष्ट्रभाषा' और 'राष्ट्रभारती' के संपादन में भी सहयोग देते रहे। इसी प्रकार गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की मासिक पत्रिका 'राष्ट्रवीणा' के संपादन में भी उनका सराहनीय सहयोग रहा। १६७५ में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के चौथे दिन के समारोह के आप सयोजक थे। इस अवसर पर प्रकाशित 'विश्व हिन्दी दर्शन' ग्रंथ के संपादन में भी आपका योगदान रहा।

विनोदप्रियता उनका विशिष्ट गुण है। एक बार मैं लखनऊ गया हुआ था। एक रात मैं दस बजे लखनऊ की शानदार बस्ती हजरतगंज की सुनसान सड़क पर अपने एक मित्र के साथ टहल रहा था। सामने से श्री रामेश्वरदयाल दुबे और श्रीमती दुबे आती दिखाई दीं। मैंने लपट कर व्यंग्य में कहा 'खूब हैं आप' इस उम्र में भाभी को साथ लेकर ऐसी सुनसान सड़क पर तफरी के लिये निकले हैं।' छूटते ही दुबेजी ने नहले पर दहला मारा 'भाई! हम लखनऊ वाले अपने से ज्यादा अपने मित्रों की चिंता करते हैं। हम दोनों तो इसलिये इस समय निकले हैं कि बम्बई से आने वाले हमारे मित्र इन सड़कों पर कहीं गुमराह तो नहीं हो रहे हैं। फिर क्या था, हँसी का जो ठहाका लगा, वह अविस्मरणीय रहेगा।

[सम्पादक 'नवनीत', बम्बई]

**

हिन्दी साहित्य सम्मेलन में १४ माह

— हरि मोहन मालवीय

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में ही स्वाधीनता के लिए आन्दोलन गतिशील हो गया था। उसी समय राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार पर नेताओं का ध्यान गया। इतना ही क्यों, दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार का सूत्रपात सन् १६१८ में कर दिया गया था, जो सफलता के साथ चलता रहा। दक्षिण में हिन्दी प्रचार की प्रगति और सफलता को देखकर शेष हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी प्रचार के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रस्तावानुसार वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना सन् १६३६ में हुई।

हिन्दीतर भाषी प्रदेशों में हिन्दी की गंगा को प्रवाहमान करने का श्रेयस्कर कार्य करने वालों का एक इतिहास राष्ट्रभाषा आन्दोलन के साथ जुड़ा है। हिन्दी का कार्य राष्ट्रीयता से अभिमंत्रित और अभिप्रेरित समझा जाता रहा। फलतः हिन्दी भाषी क्षेत्र से हिन्दी प्रचारकों का हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में जाना

एक स्वाभाविक प्रक्रिया बन गया था । उनमें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा से सम्बद्ध होने वाले श्री श्रीमन्नारायण तथा श्री रामेश्वर दयाल दुबे प्रमुख थे ।

दुबे जी को निश्चय ही राजर्षि टण्डन जी का आशीर्वाद प्राप्त था। महात्मा गाँधी राष्ट्रीय जागरण के पुरोधा थे। अतः वर्धा पहुँचने पर उनके सान्निध्य का पुण्य भी श्री दुबे जी को प्राप्त हुआ। वे आचार्य विनोबा, काका साहेब कालेलकर आदि के सम्पर्क में भी आये। श्री दुबे जी ने जिस तन्मयता और निष्ठा से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के माध्यम से हिन्दी प्रचार को आगे बढ़ाया, वह हिन्दी-प्रचार के इतिहास में एक स्वर्णिम अंश बन गया है। परीक्षामन्त्री के नाते उन्होंने परीक्षाओं की जो सुव्यवस्था की, उससे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति विशेष लोकप्रिय बनी और अति लोकप्रिय बने परीक्षामन्त्री दुबे जी।

सन् १९६५ में कुछ ऐसी परिस्थिति पैदा हुई कि समिति के मन्त्री श्री मोहनलाल भट्ट को सम्मेलन के प्रधानमन्त्री का कार्यभार भी सम्हालना पड़ा। वे वर्धा से प्रयाग आ गये। वर्धा का काम श्री दुबे जी देखते रहे। कुछ माह बाद श्री भट्ट जी ने दुबे जी को प्रयाग बुलाकर परीक्षा विभाग की व्यवस्था को और अधिक व्यवस्थित करने का निश्चय किया। दुबे जी के लिए प्रयाग आना कठिन था। क्योंकि उन्हें वर्धा का काम देखना था। तब यह निश्चय किया गया कि प्रतिमाह दुबे जी २४–२५ दिन प्रयाग में रहे, दो दिन आने जाने में बीतेंगे। शेष तीन-चार दिन वर्धा समिति के कार्य को देखते रहें। यही क्रम प्रारम्भ हुआ और १४ माह तक यह क्रम लगातार चलता रहा। श्री दुबे जी के साथ मेरा सम्बन्ध इसी अवधि में प्रगाढ़ हुआ और उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला। श्री दुबे जी परीक्षा-विभाग के संचालन में अहर्निशि लगे रहते थे।

श्री दुबे जी ने पहले परीक्षा विभाग की चल रही व्यवस्था का अध्ययन किया, इसके पश्चात् अपने अनुभव के आधार पर कुछ कार्य प्रारम्भ किये।

(१) परीक्षा विभाग की गोपनीयता का विशेष प्रबन्ध किया।

(१) आने वाले पत्रों का उत्तर लोगों को शीघ्र नहीं मिलता था। अतः विभाग में प्राप्ति एवं प्रेषण रजिस्टरों की प्रति सप्ताह जाँच शुरु की। इससे कार्यकर्ताओं में सजगता आई और पत्र भेजने वालों को शीघ्र उत्तर मिलने लगे।

(३) परीक्षा के बाद परीक्षार्थियों को परीक्षाफल समय पर नहीं मिलता था। इसलिए परीक्षा आवेदन पत्र भरने के साथ ही परीक्षार्थी से एक ऐसे कोरे परीक्षाफल कार्ड पर नाम, पता, परीक्षा आदि लिखवाने की व्यवस्था की गई, जिसे परीक्षाफल प्रकाशित होते ही सम्बन्धित कार्ड पर परीक्षाफल भर कर परीक्षार्थी के पास भेजा जा सके। इस व्यवस्था का सबने स्वागत

किया और इससे बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो गई ।

(४) प्रमाणपत्र अविलम्ब भेजने के लिए प्रेषण रजिस्ट्रार बनवाये और उनकी साप्ताहिक जाँच प्रारम्भ हुई । इस प्रकार इस समस्या का भी अन्त हो गया ।

कुछ परीक्षा केन्द्रों के बारे में भ्रष्टाचार की शिकायत थी । प्रयाग रहते हुए इस समस्या की वास्तविकता से परिचित होना कठिन था । यद्यपि प्रधान मन्त्री ने रोका, फिर भी संकल्प के धुनी श्री दुबे जी ने यह दुस्साहस किया ही । वे दिसम्बर की भीषण सर्दी में एक हाथ में छोटा झोला, दूसरे में एक कम्बल लेकर निकल पड़े । बरहज, देवरिया, अयोध्या, फैजाबाद, लखनऊ, त्रिवेदी-गंज, परीक्षा केन्द्रों का निरीक्षण किया । बिना यह बताये कि वे सम्मेलन के स्वयं रजिस्ट्रार हैं । एक स्थान पर उन्होंने खतरा भी अनुभव किया, किन्तु किसी तरह सकुशल निकल आए । प्रयाग वापस आने पर दुबे जी ने कई भ्रष्ट केन्द्रों को समाप्त कर दिया ।

परीक्षा समिति के सदस्यों ने श्री दुबेजी के कठिन परीश्रम और सफल नियंत्रण को सराहा, उसका समर्थन किया । डा० रामकुमार वर्मा, डा० उमाशंकर शुक्ल श्री गोरखनाथ चौबे, प्रसिद्ध गांधीवादी साहित्यकार श्री रामनाथ 'सुमन' आदि ने दुबेजी के कार्यो की मुक्त कठ से प्रशंसा की ।

दुबेजी की सूझ-बूझ और त्वरा ने सम्मेलन के चाल ढर्रे को झकझोर दिया, जिसे उस समय की व्यवस्था बर्दाश्त नहीं कर पाई और कई अन्तर्विरोधों का सामना दुबेजी को करना पड़ा ।

सम्मेलन के परीक्षा विभाग की व्यवस्था तो सुधर रही थी, परन्तु उसके लिए दुबेजी को प्रयाग में अधिक समय देना पड़ता था । इस से वर्धा समिति का और विशेषत: वहाँ के परीक्षा विभाग का काम उपेक्षित हो रहा था । इसलिए दुबेजी ने वर्धा लौट जाना उचित समझा । जो हो १४ माह रजिस्ट्रार के पद पर रहकर श्री दुबेजी ने सम्मेलन की जो सेवा की उसे भुलाया नहीं जा सकता ।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार कार्य करते हुए दुबेजी ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा के उन्मेष को बनाये रखा है । उनका सर्जनात्मक लेखन नयी पीढ़ी के लिए प्रेरक है । और उनका व्यक्तित्व ऐसे अगुवा का है जो अपनी वरद छाया में प्रतिभाओं का विकास देखना चाहता है ।

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग]

हिन्दी प्रचार-प्रसार के स्तम्भ

डॉ० मो० दि० पराडकर

सन् १९५० के आसपास की बात है, मैं परीक्षा के कार्य के लिए वर्धा पहुँचा था। हिन्दी की परीक्षाओं में बैठने वाले एक छात्र के रूप में मैं प० रामेश्वरदयाल दुबेजी के नाम से परिचित था। 'राष्ट्रभाषा परिचय' तथा 'कोविद' परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर जो प्रमाणपत्र मिले थे, उन पर उन्हीं का हस्ताक्षर था। इस लिए पहली बार वर्धा में उनसे मिलने में संकोच का अनुभव हो रहा था। हिन्दी की सेवा में समर्पित होने के कारण उनके जैसा ख्यातनाम व्यक्ति मुझ जैसे साधारण प्रचारक से भला कैसे मिलेगा? कैसे बात करेगा? लेकिन पहली ही मुलाकात में पता चला कि इस व्यक्ति को गर्व छू तक नहीं सका। वे बड़े सहज भाव से मिले और उन्होंने स्नेह के साथ मेरे और मेरे परिवार के सम्बंध में पूछताछ की। सच्चे हिन्दी प्रचारक को किस तरह मिलनसार होना चाहिए, इसका प० रामेश्वर दयाल दुबेजी ने एक आदर्श उपस्थित किया था।

धीरे धीरे संकोच कम होता गया। खुलकर बातें होती रहीं और उम्र के अन्तर के बावजूद हममें मित्रता के सम्बंध स्थापित हो गए। याद है मुझे उन्होंने एक बार हिन्दी के विषय में किसी सभा में भाषण देने का अवसर प्रदान किया था। स्वभाव से थोड़ा स्पष्टवादी होने के कारण मैंने भाषण में कह डाला 'यदि पडित नेहरू हृदय से हिन्दी प्रेमी अथवा भारतीय भाषाओं के समर्थक होते, तो भाषा की समस्या सन् १९४९ में ही हल गई होती और भारत के सभी निवासी प्रेम से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाते और हिन्दी दिवस हर वर्ष मनाने की नौबत हम पर न आती।

मुझे डर था कि पं० रामेश्वरदयाल दुबेजी मुझ पर इस तरह के स्पष्ट कथन के कारण नाराज अवश्य हुए होंगे, लेकिन उन्होंने स्नेह के साथ मुझसे कहा था— पराडकरजी आपने सच ही कहा है। लोग आज इसे अनुभव तो करते हैं, लेकिन स्पष्ट रूप से कहना पसन्द नहीं करते।"

आगे चल कर उन्होंने भी "राष्ट्रभाषा को मेमना मत बनाइये" शीर्षक से एक लेख लिखा था और राष्ट्रभाषा के विषय में सही बातें लोगों के सन्मुख रखीं थी।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के कार्यालय में आपका स्नेहशील व्यक्तित्व ही समन्वय के वायुमण्डल का निर्माण करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा— यह तो प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के स्वयं अनुभव का विषय रहा है। मेरी अपनी राय तो यह है कि उनके कार्य का राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने यथार्थ गौरव नहीं किया। लेकिन यदि उनसे पूछा जाय तो वे कहते हैं— "मैं सन्तुष्ट हूँ। हिन्दी

ने मुझे घर-घर में पहुँचाया है, सच्चे अर्थों में भारत का नागरिक बनाया है। मैं हिन्दी से उऋण भला कैसे हो पाऊँगा ?"

कुछ समय पहले हम लोग लखनऊ में दुबे जी से मिले थे, तब वे मुझे–

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखंशान्त चेतसाम्
कुतस्तत् धन लुब्धाना ··· ··· ··· ··· ··· ॥

क जीते जागते उदाहरण दिखाई दिए।

आपकी साहित्य-साधना निरन्तर चलती आई है। आपने कई खंडकाव्य मुझे मित्र के रूप में भेंट किये थे। इधर-'बैठे ठाले" भेजकर आपने मुझे अनुग्रहीत किया। आप 'कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति' की मासिक पत्रिका में लगातार हिन्दी विषयक लेख लिखते रहते हैं। इन लेखों में आप अपने अनुभव के सार को ही शब्द रूप दे रहे हैं, जो हिन्दी-प्रचारकों का मार्गदर्शन कर रहें हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि हिन्दी के प्रति दुबेजी की अनन्य असाधारण निष्ठा। मुझे विश्वास है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के इतने वर्षो बाद भी लोगों के मन में अब तक अँग्रेजी के प्रति जो मोह दिखाई देता है, उसके कारण आप भी मेरी तरह भीतर-भीतर व्यथित हैं। न जाने क्यों हमारी अपनी भाषाओं के प्रति उपाधिधारियों का विश्वास ही शिथिल होता हुआ दिखाई देता है। लेकिन हिन्दी के प्रति दुबेजी जैसे समर्पित व्यक्तित्व को निराशा कभी स्पर्श नहीं कर पायेगी। विश्वास है कि कोटि कोटि जनता के कंठ की वाणी हिन्दी अपना समुचित स्थान अवश्य ग्रहण करेगी।

दुबेजी जैसे एक निष्ठ हिन्दी सेवी के चरणस्पर्श कर विश्वास रखता हूँ कि हिन्दी प्रचारकों को हिन्दी के प्रचार-प्रसार कार्य में दुबेजी से समुचित प्रेरणा निरन्तर मिलती रहेगी।

[लेडी हार्डिंग रोड, बम्बई]

श्री रामेश्वरदयाल दुबे

– विष्णु प्रभाकर

गाँधी महाराज के देश में आज गाँधीजी की वाणी ही मौन हो गई है। अपने जीवन काल में उन्होंने दो प्रकार के व्यक्तियों का निर्माण किया था - एक थे सैनिक जाति के लोग, जो प्राण हथेली पर रखकर निरन्तर जूझते रहते थे। भय और घृणा से वे अतीत थे। क्योंकि उनकी प्रेरक शक्ति अहिंसा थी। अहिंसा प्रेम का ही एक नाम है।

प्रेम का यह रूपान्तर दूसरी जाति के व्यक्तियों में विशेष रूप से विकसित हुआ। गांधी के मानस के समीप ये ही व्यक्ति थे। ये उनकी नाना रूप रचनात्मक प्रवृत्तियों से जुड़े साधक थे। सैनिक, जीवन की रक्षा करते है हीं, पर रचनात्मक कार्यकर्ता उसका निर्माण करते हैं। वे जीवन में गहरे पैठ कर उसे श्रम और स्नेह से अभिषिक्त करते हैं। प्रेम का स्रोत श्रम की बूंदों से होकर ही विस्तृत होता है।

ये रचनात्मक कार्यकर्ता राजनीति की उमस से दूर रचनात्मक कार्यों के विभिन्न क्षेत्रों में काम करते हुए देश सेवा करते रहे हैं। उन कार्यों में एक कार्य है राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार - प्रसार। श्री रामेश्वरदयाल दुबे इस क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के परीक्षामन्त्री के रूप में उन्होंने जो काम किया है, वह कोई सर्मपित व्यक्ति ही कर सकता है।

स्वाधीनता के बाद के पच्चीस वर्षों में मैं भी किसी न किसी रूप में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़ा रहा हूँ। दिल्ली शाखा की मंत्री (श्रीमती) राजलक्ष्मी राघवन और उनके परिवार ने देश भक्ति की भावना से ही अपने को इस कार्य के लिये सर्मपित किया था। समर्पण की यह भावना ही दुबेजी की प्रेरणा रही है। मैंने उनको बहुत पास से काम करते देखा है। तब न था अधिकार का प्रश्न, न किसी प्रकार की सौदेबाजी—मात्र कर्त्तव्य पर दृष्टि रहती थी उन साधकों की जिनके ठोस काम को आज हम बड़ी निर्दयता से नष्ट करते चले जा रहे है।

लाखों विद्यार्थी राष्ट्रभाषा की परीक्षाओं में बैठते थे। परिपत्रों पर और उत्तर पत्रों पर, हर कहीं पर एक नाम दूर से ही देखा - पढ़ा जा सकता था वह नाम था रामेश्वरदयाल दुबे का। कश्मीर से कन्या कुमारी तक, असम से केरल तक रामेश्वर दयाल दुबे की मोहर राष्ट्रभाषा की परीक्षाओं का प्रतीक बन गयी थी। परीक्षायें प्रतीक थीं राष्ट्रभाषा के माध्यम से उस देश भक्ति का जिसका पाठ हमने तिलक और गान्धीजी जैसे नेताओं के चरणों में बैठकर पढ़ा था।

दुबेजी न कभी थकते थे और न शिकायत करते थे। चुपचाप काम करना ही उनको प्रिय रहा है। समिति में बहुत बिस्फोट हुए, अपवाद - प्रवाद उठे। महात्मा गान्धी अलग हो गये। काका कालेलकर ने भी अलग रास्ता चुन लिया। बाद में भदन्त आनन्द कौसल्यायन भी समिति छोड़ गये, परन्तु दुबेजी की मोहर उसी तरह चमकती रही।

दुबेजी कवि और नाटककार भी हैं। सहज - सरल भाषा में अपने को व्यक्त करना और बिना किसी जटिल काव्यात्मक कौशल के गहरी बात कह जाना एक बड़ा गुण है। उनके लघु नाटक उसी रचनात्मक प्रतिभा के प्रतीक हैं, जिसकी

शिक्षा उन्होंने गान्धीजी से पायी थी ।

अवकाश प्राप्त करके वे लखनऊ रहने लगे हैं । यहाँ भी उनके और उनकी पत्नी के साथ कुछ समय बिताने का अवसर मुझे मिला है । उन दोनों का स्नेहमय आतिथ्य यादों का एक सिलसिला जैसा लगता है, जब मनुष्य यादों के माध्यम से फिर से भूतकाल को जी रहा होता है । लेकिन शिकायत का नहीं, एक गहरी तृप्ति का आभास ही मैं देख सका उनकी वाणी में ।

युग आगे बढ़ता है, आयु का बोझ कन्धों पर आकर ठहर जाता है, तब वर्षों की दृष्टि से फोस्सिल [Foossil] रह जाकर हो जाते हैं । लेकिन मैं जानता हूँ इस सब के बावजूद दुबेजी इस बात से पूर्ण सन्तुष्ट हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए जो कुछ भी किया समर्पण और सेवा की भावना से किया है, किसी पुरस्कार या पद की लालसा से नहीं ।

यह अनासक्ति ही उनका प्राप्य है, यह उनकी उपलब्धि है । जब तक वे जीवित रहेंगे उनकी वीणा सुर में बोलती रहेगी । ❋ ❋

[८१८, कुंडेवालान चौक, अजमेरी गेट, दिल्ली]

ऋषि जीवन की झाँकियाँ

डॉ० डी० शंकर

कवि की लेखनी से निस्सृत काव्य - निर्झरिणी कोटि कोटि पाठकों के हृदयों में अमृत रसानुभूति से तल्लीनता पैदा कर देती है । अत: इसकी नितान्त आवश्यकता होती है कि किसी भी काव्य की रसानुभूति के लिए पहले उसके कवि की जीवनी से अवगत हो और उसके जीवन-दर्शन को आत्मसात करे ; तब उसके काव्य - दर्शन से यह स्पष्ट होगा कि उसकी जीवनी ही एक दर्शन है । सत्यम् - शिवम् - सुन्दरम् तथा लोक मंगल की उदात्त भावनायें कवि के लिए मुख्य रूप से उपादेय होती हैं ।

ऐसी मंगल कामनाओं से राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में संलग्न होकर अपने जीवन के सुनहले चार दशकों को निस्वार्थ भावना से होम कर देने वाले साहित्योपासक श्री रामेश्वर दयाल दुबे जी हैं । आपने अपने जीवन के अधिकांश भाग को हिन्दी के प्रचार में व्यतीत कर दिया है । ऐसे कर्मठ कवि का जीवन परिचय जान लेना अत्यन्त आवश्यक है ।

मेरे सहपाठी तथा घनिष्ट मित्र श्री सोमनाथ राव जी ने जब श्री रामेश्वर

दयाल दुबे जी के खंड काव्यों पर शोध कार्य करने का निश्चय किया, तो हम दोनों उनसे मिलने सन् १९८७ में वर्धा पहुँचे, जहाँ वे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के स्वर्ण-जयन्ती समारोह में भाग लेने के लिए पधारे थे । श्री दुबे जी के सरल, मिलनसार और सादगी पूर्ण जीवन से हम लोग विशेष प्रभावित हुए । उनकी विविध रचनाओं से तो मेरा पूर्व परिचय था ही । उनके खंड काव्यों, नाटकों, कहानी संग्रह, बाल साहित्य तथा पद्यानुवादों की मुझे जानकारी थी ही, किन्तु प्रत्यक्ष दर्शन में उनकी विनम्रता ने हम दोनों को विमुग्ध कर दिया ।

श्री दुबे जी ने अपने जीवन का अधिकांश भाग राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार को समर्पित किया है और इस निमित्त सारे भारत का अनेक बार भ्रमण किया है । राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहायक मन्त्री और परीक्षा मन्त्री के नाते हिन्दीतर प्रदेशों के हजारों हजारों व्यक्तियों के वे निकट मित्र बन गये हैं । सभी का उन्हें स्नेह प्राप्त होता रहा है और आज भी हो रहा है ।

हिन्दी प्रचार के कार्यों मे व्यस्त रहते हुए भी श्री दुबे जी ने अपनी लेखनी को विश्राम नहीं दिया और उनकी साहित्य साधना चलती रही । साहित्य की प्रत्येक विधा को श्री दुबे जी ने अपनाया और लगभग ६० छोटी बड़ी पुस्तकों का निर्माण किया है । उनके द्वारा रचित हिन्दी गीत " भारत जननी एक हृदय हो " लगभग राष्ट्रगीत की ही तरह व्यापक हो गया है ।

जब मेरे मित्र श्री सोमनाथ राव जी शोध कार्य के सिलसिले में दुबे जी से मिलने लखनऊ गये, तो दुबे जी के निकट सम्पर्क में आने के लोभ से मैं भी लखनऊ पहुँचा । जिस आत्मीयता से उन्होंने हमें वहाँ चार दिन रखा, आतिथ्य किया, उसे भुलाया नहीं जा सकता ।

मैंने भेंट-वार्ता को टेप किया, फोटो लिए । उनके सरल, विनम्र और सादगीपूर्ण जीवन तथा अनुभवपूर्ण उनकी बातों ने, संस्मरणोंने हमें बड़ा प्रभावित किया ।

दुबे जी केवल एक साहित्यकार ही नहीं, बड़े कलाप्रेमी एक कलाकार भी हैं । उन्होंने अपने 'चित्रकूट' में एकत्रित की हुई और अपने हाथों बनाई कला-कृतियाँ सँजो रखी हैं । टीन के पुराने पतरों को, जिन्हें प्राय: फेंक दिया जाता है, कैंची से काट-काट कर, राम, कृष्ण शिव के प्रतीक, अहल्या उद्धार के प्रसंग का छायाचित्र तैयार किया है ।

टेढ़े-मेढ़े बाँसों के टुकड़े इकट्ठे कर उन्हें एक आकृति प्रदान की है । तोरई के भीतरी भाग (जोंज) से बनी गान्धी टोपी किसे मुग्ध न करेगी ? कन्याकुमारी से लाया गया एक छोटा शिलाखंड, रामेश्वरम् से लाया गया समुद्री पत्थर तो रखा ही है, अपनी हिमालय यात्रा के अवसर पर लाई गई श्याम

वर्ण की एक छोटी बटिया भी है जिसके मध्य में दूध जैसी सफेद एक पतली पट्टी है। वह तो दुबे जी के पूजा गृह में नित्य पूजा पा रही है। ये सब वस्तुयें उनकी कलात्मक प्रवृत्ति की द्योतक हैं।

दुबे जी का प्रात: घन्टे-दो घन्टे का समय पेड़-पौधों के बीच बीतता है। छोटी गृह वाटिका में जो फल फूल पैदा होता है, उसका उपयोग स्वयं करते हैं और दूसरों को बाँटते हैं। पौधों के पीले पत्ते दूर करना, फूल के पौधों को सजाना-सम्हारना दुबे जी का नित्य कार्य है। साहित्य के अलावा दुबे जी को दो चीजें प्यारी हैं – बच्चे और फूल। उनका कहना है— "आँगन के फूल बच्चे हैं और उपवन के बच्चे फूल।" प्राय: लोग फूलों को तोड़ लेते हैं। यह दुबे जी को अच्छा नहीं लगता। तभी उन्होंने अपने फूल के पौधों पर 'फूल मत तोड़ो' के स्थान पर सुन्दर अक्षरों में लिखकर टाँग दिया था—

(१) हमें न तोड़ो, हम यहीं अच्छे लगते हैं।

(२) फूल बना है दूल्हा देखो
पत्ते बने बराती।
इसे उतारो नहीं, डाल की
इसे पालकी भाती॥

बात कहने का कितना प्यारा ढंग है।

दुबे जी अल्प सन्तोषी व्यक्ति प्रतीत होते हैं। निश्चय ही यह गान्धी विचारधारा का प्रभाव है। कवि सियारामशरण गुप्त की दो पंक्तियाँ दुबे जी का मार्गदर्शन करती रही हैं।

"मुझे और कुछ नहीं चाहिये, है बहुतेरा।
मेरा अपना कार्य, पारितोषिक है मेरा॥

गान्धी जी के आश्रम सेवाग्राम में एक प्रसंग उपस्थित हुआ था, उससे प्रभावित होकर दुबे जी ने छ: पंक्तियाँ लिखी थीं—

काँटों को कह रहे बुरा क्यों
तुम तो फूल खिलाओ।
अन्धकार को कोसो मत तुम
दीपक एक जलाओ॥
एक फूल की भी सुगन्ध शुचि
दूर-दूर तक जाती।

एक दीप की किरण मालिका
तम पर विजय मनाती ।।
एक एक यदि खिला फूल तो
चिर वसंत घर आये ।
एक एक यदि जला दीप तो
अन्धकार मिट जाये ।।

दुबे जी की विचारसरणि इस कविता से स्पष्ट हो जाती है ।

दुबे जी गान्धी विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं, किन्तु वे उनके अन्ध भक्त नहीं हैं । राष्ट्रभाषा के लिए दो लिपियों की बात दुबे जी को नहीं जँची । वे देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी के प्रचारक बने रहे और आज भी हैं । दुबे जी मानवता वादी हैं, भारतीय परम्परागत जीवन, भारतीय संस्कृत और भारतीय मूल्यों को आदर्श मानते हैं । वे प्रकृति प्रेमी हैं । ये सभी भाव उनकी रचनाओं में प्रचुरता से पाये जाते हैं ।

लगातार ४० वर्ष तक हिन्दी प्रचार का कार्य करने के पश्चात् दुबेजी ने संस्था से अवकाश ग्रहण किया, किन्तु राष्ट्रभाषा प्रचार और साहित्य-सेवा से नहीं । ये दोनों कार्य आज भी अनवरत चल रहे हैं । पुण्य और पुरुषार्थ - दोनों को समतुल्य रूप से साधने वाले कवि साहित्योपासक तथा साहित्यसेवी श्री दुबेजी का ऋषिवत जीवन स्तुत्य एवं प्रेरणादायक है ।

[बी - २९/एफ, मदनपेठ कालोनी, हैदराबाद]

रामेश्वरदयाल जी दुबे : एक योगी

—भूपसिंह गुप्त

कुछ व्यक्तियों की यह धारणा यह है कि योगी पहाड़ों अथवा जंगलों में तपस्या करने वाले व्यक्ति ही होते हैं, परन्तु यह धारणा पूर्ण तथा सही नहीं । राष्ट्र अथवा समाज के किसी क्षेत्र में भी योगदान देने वाले कार्यशील व्यक्ति भी योगी होते हैं । श्री रामेश्वरदयाल जी दुबे ऐसे व्यक्तियों में से एक हैं । गीता में भी कहा गया है कि —"योगः कर्मसु कौशलम् ।"

रामेश्वरदयाल जी दुबे को महात्मा गांधी जी से स्फूर्ति मिली और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा में अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-

प्रसार के कार्यक्रम में अपनी जवानी की आहुति दे दी । उनका यह त्याग प्रशंसनीय है ।

दुबेजी से मेरा सम्पर्क बहुत अल्पकालीन रहा, परन्तु उनका परिचय पाकर आनन्द आ गया । मानो कोई हीरा-मोती मिल गया हो । मैं भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय में काम करता था और मेरा कार्य अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार करने वाली संस्थाओं को सरकारी अनुदान देना था । ऐसी संस्थाओं का निरीक्षण किया जाता था । श्री दुबेजी को कई संस्थाओं का निरीक्षण के लिये चुना गया और उनको साथ लेकर मैं संस्थाओं के निरीक्षण के लिए दक्षिण गया । निरीक्षण कार्य के अतिरिक्त जीवन सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर उन से बातचीत की और उनके सादे जीवन और उच्च विचारधारा से मैं बहुत प्रभावित हुआ और इस कथन—"विद्या ददाति विनयम्" का साक्षात्कार उनके जीवन से हुआ ।

श्री रामेश्वरदयाल जी दुबे ने अपने जीवन का बहुमूल्य समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के 'परीक्षा विभाग' में बिताया है । यह कार्य बड़ा शुष्क और उत्तरदायित्वपूर्ण है और मशीन की भांति यहां कार्य करना होता है । यहां दो और दो चार ही हैं, कल्पना के लिये कोई स्थान नहीं । मुझे बड़ा आश्चर्य यह है कि दुबेजी इस वातावरण में इतने लम्बे समय तक रहकर साहित्यकार कैसे बने रहे । उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा कल्पना शक्ति को कैसे कुण्ठित नहीं होने दिया ? ज्ञानी का एक लक्षण गीता में 'प्रशान्त आत्मा' बताया गया है और वही उनके जीवन में मिलता है । कितनी ही बार उन्होंने अपनी हँसा देने वाली बातों से मेरा मनोरंजन किया । कई दर्जन उनके पत्र मेरे पास हैं और प्रत्येक को पढ़ कर मनोरंजन होता है, जिससे विदित होता है कि उनके हृदय में आनन्द स्रोत बहता है ।

साधारण मनुष्य और योगी में एक अन्तर यह है कि साधारण व्यक्ति अपने भाग्य को रोता है और दूसरों को देखकर ईर्ष्या से सन्तप्त रहता है । अथवा कहीं से भी अपनी इच्छापूर्ति न होने पर क्रोधाग्नि से झुलस जाता है । यह सत्य है कि श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने निर्वाह मात्र वेतन लेकर अपना अमूल्य जीवन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में लगा दिया । दुबेजी ने कर्तव्य और सेवाभाव से कार्य किया, इसीलिए उनके जीवन में संतोष है । कुछ दुखद परिस्थितियों के कारण उन्होंने समिति को छोड़ा, किन्तु उन्हें कोई शिकायत नहीं । किसी की आलोचना करना उन्हें नहीं आता । यह उनकी उदारता है । दूर रहते हुए भी वे समिति की यथाशक्ति सेवा करते रहते हैं ।

जैसे गोताखोर गोता लगाकर समुद्र से रत्न निकालता है, उसी प्रकार दुबेजी ने रामायण में गोता लगाकर अनेक पुस्तकें लिखी हैं और वही रत्न हैं ।

एक दीप की किरण मालिका
तम पर विजय मनाती ॥
एक एक यदि खिला फूल तो
चिर वसंत घर आये ।
एक एक यदि जला दीप तो
अन्धकार मिट जाये ॥

दुबे जी की विचारसरणि इस कविता से स्पष्ट हो जाती है ।

दुबे जी गान्धी विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं, किन्तु वे उनके अन्ध भक्त नहीं हैं । राष्ट्रभाषा के लिए दो लिपियों की बात दुबे जी को नहीं जँची । वे देवनागरी में लिखी जाने वाली हिन्दी के प्रचारक बने रहे और आज भी हैं । दुबे जी मानवता वादी हैं, भारतीय परम्परागत जीवन, भारतीय संस्कृत और भारतीय मूल्यों को आदर्श मानते हैं । वे प्रकृति प्रेमी हैं । ये सभी भाव उनकी रचनाओं में प्रचुरता से पाये जाते हैं ।

लगातार ४० वर्ष तक हिन्दी प्रचार का कार्य करने के पश्चात् दुबेजी ने संस्था से अवकाश ग्रहण किया, किन्तु राष्ट्रभाषा प्रचार और साहित्य-सेवा से नहीं । ये दोनों कार्य आज भी अनवरत चल रहे हैं । पुण्य और पुरुषार्थ - दोनों को समतुल्य रूप से साधने वाले कवि साहित्योपासक तथा साहित्यसेवी श्री दुबेजी का ऋषिवत जीवन स्तुत्य एवं प्रेरणादायक है ।

**

[बी - २९/एफ, मदनपेठ कालोनी, हैदराबाद]

रामेश्वरदयाल जी दुबे : एक योगी

—भूपसिंह गुप्त

कुछ व्यक्तियों की यह धारणा यह है कि योगी पहाड़ों अथवा जंगलों में तपस्या करने वाले व्यक्ति ही होते हैं, परन्तु यह धारणा पूर्ण तथा सही नहीं । राष्ट्र अथवा समाज के किसी क्षेत्र में भी योगदान देने वाले कार्यशील व्यक्ति भी योगी होते हैं । श्री रामेश्वरदयाल जी दुबे ऐसे व्यक्तियों में से एक हैं । गीता में भी कहा गया है कि —"योगः कर्मसु कौशलम् ।"

रामेश्वरदयाल जी दुबे को महात्मा गांधी जी से स्फूर्ति मिली और राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा में अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-

प्रसार के कार्यक्रम में अपनी जवानी की आहुति दे दी। उनका यह त्याग प्रशंसनीय है।

दुबेजी से मेरा सम्पर्क बहुत अल्पकालीन रहा, परन्तु उनका परिचय पाकर आनन्द आ गया। मानो कोई हीरा-मोती मिल गया हो। मैं भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय में काम करता था और मेरा कार्य अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार करने वाली संस्थाओं को सरकारी अनुदान देना था। ऐसी संस्थाओं का निरीक्षण किया जाता था। श्री दुबेजी को कई संस्थाओं का निरीक्षण के लिये चुना गया और उनको साथ लेकर मैं संस्थाओं के निरीक्षण के लिए दक्षिण गया। निरीक्षण कार्य के अतिरिक्त जीवन सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर उन से बातचीत की और उनके सादे जीवन और उच्च विचारधारा से मैं बहुत प्रभावित हुआ और इस कथन—"विद्या ददाति विनयम्" का साक्षात्कार उनके जीवन से हुआ।

श्री रामेश्वरदयाल जी दुबे ने अपने जीवन का बहुमूल्य समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के 'परीक्षा विभाग' में बिताया है। यह कार्य बड़ा शुष्क और उत्तरदायित्वपूर्ण है और मशीन की भाँति यहाँ कार्य करना होता है। यहाँ दो और दो चार ही हैं, कल्पना के लिये कोई स्थान नहीं। मुझे बड़ा आश्चर्य यह है कि दुबेजी इस वातावरण में इतने लम्बे समय तक रहकर साहित्यकार कैसे बने रहे। उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा कल्पना शक्ति को कैसे कुण्ठित नहीं होने दिया ? योगी का एक लक्षण गीता में 'प्रशान्त आत्मा' बताया गया है और यही उनके जीवन में मिलता है। कितनी ही बार उन्होंने अपनी हँसा देने वाली बातों से मेरा मनोरंजन किया। कई दर्जन उनके पत्र मेरे पास हैं और प्रत्येक को पढ़ कर मनोरंजन होता है, जिससे विदित होता है कि उनके हृदय में आनन्द स्रोत बहता है।

साधारण मनुष्य और योगी में एक अन्तर यह है कि साधारण व्यक्ति अपने भाग्य को रोता है और दूसरों को देखकर ईर्ष्या से सन्तप्त रहता है। अथवा कहीं से भी अपनी इच्छापूर्ति न होने पर क्रोधाग्नि में झुलस जाता है। यह सत्य है कि श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने निर्वाह मात्र वेतन लेकर अपना अमूल्य जीवन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में लगा दिया। दुबेजी ने कर्तव्य और सेवाभाव से कार्य किया, इसीलिए उनके जीवन में संतोष है। कुछ दुखद परिस्थितियों के कारण उन्होंने समिति को छोड़ा, किन्तु उन्हें कोई शिकायत नहीं। किसी की आलोचना करना उन्हें नहीं आता। यह उनकी उदारता है। दूर रहते हुए भी वे समिति की यथाशक्ति सेवा करते रहते हैं।

जैसे गोताखोर गोता लगाकर समुद्र से रत्न निकालता है, उसी प्रकार दुबेजी ने रामायण में गोता लगाकर अनेक पुस्तकें लिखी हैं और यही रत्न हैं।

रामायण के पात्रों की दिव्य भावनाओं, उच्च विचारों और कर्तव्य पालन की अभिव्यक्ति कर उन्हें आदर्श रूप में चित्रित किया है इन पुस्तकों को पढ़कर दुबे जी की प्रतिभा का परिचय मिलता है। जीवन के उच्च मूल्यों का ज्ञान हुए बिना ऐसी रचनाएँ नहीं की जा सकतीं।

रामेश्वरदयाल जी दुबे का साहस प्रशंसनीय है। कितने दिनों तक आप चारपाई के घेरे में रहे, परन्तु मन को मलीन नहीं होने दिया, रचना-कार्य चलता रहा। आपने सुख-दुख को एकत्रित कर दिया। रचना प्रकाशक के पास भेज दी। रायलटी देता है तो ठीक, नहीं देता है तो उसकी इच्छा। शिकायत कोई नहीं। यही गीता का समत्व योग है, जिसे उनके जीवन में पाया जाता है। उनका अभिनन्दन करता हुआ मैं यही कहूँगा कि दुबे जी एक योगी हैं।

बड़ा दुख है कि संसार आज भोगियों की पूजा कर रहा है, योगियों की नहीं। इसी लिए देश और समाज घोर पतन की ओर जा रहा है। मनु महाराज ने कहा है — 'यत्र अपूज्या: पूज्यन्ते' और पूज्यों का अपमान होता है, वहाँ तीन चीजें होती हैं — मरणम्, दुर्भिक्षम् और भयम्। इन्हीं तीनों के कारण आज देश हाहाकार कर रहा है। दूसरों की निन्दा करने वाले कितने ही मिल जाते हैं, परन्तु खरे को खरा कहना और उसके गुणों का वर्णन करने में भी एक आनन्द है और है कर्त्तव्य की पूर्ति। श्री रामेश्वरदयाल जी दुबे को एक योगी कहने में मैं एक विशेष आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। ईश्वर उन्हें कम-से-कम शतायु बनाए, ताकि उनके जीवन का प्रकाश बहुत व्यक्तियों को मिल सके। ✻✻

[डी० – २५४ सर्वोदय इनक्लेव, नई दिल्ली – १७]

मेरे मित्र : दुबे जी

उमाशंकर शुक्ल

वर्धा में गाँधी जी द्वारा स्थापित अनेक रचनात्मक संस्थायें हैं, उन्हीं में एक है राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जिसकी स्थापना सन् १९३६ में हुई थी। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर भारत के विभिन्न प्रान्तों से अनेक उत्साही व्यक्ति इन संस्थाओं में काम करने के लिए पहुँचे थे। आचार्य श्रीमन्नारायण पहले आ गये थे। श्रीमन जी और पं० रामेश्वरदयाल दुबे उत्तर प्रदेश के एक ही स्थान मैनपुरी के निवासी थे, सहपाठी थे। १९३७ में ही श्री दुबे जी भी वर्धा आ गये और निष्ठापूर्वक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में काम करने लगे।

श्री दुबे जी से मेरा सम्बन्ध तभी से है, जो आगे चलकर घनिष्ठता में बदल गया। यद्यपि अब वे उत्तर प्रदेश लौट गये हैं, किन्तु अब भी घनिष्टता में कोई अन्तर नहीं आया है।

श्री दुबे जी ने अपना सारा जीवन राष्ट्रभाषा हिन्दी को दे दिया है। लगातार ४० वर्ष तक वर्धा में रह कर परीक्षा मन्त्री की हैसियत से हिन्दी प्रचार का जो कार्य उन्होंने किया है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं। वे एक तरह से वर्धा के नागरिक बन गये थे। वर्धा छोड़ना उन्हें अच्छा नहीं लगा। एक पत्र में उन्होंने लिखा था " वर्धा में मैं ४० साल घूमता रहा, अब वर्धा मेरी आँखों में घूमता रहता है।"

हिन्दी प्रचार के लिए श्री दुबे जी सम्पूर्ण भारत में अनेक बार घूमे हैं। बड़े से बड़े नेताओं के साथ चोटी के साहित्यकारों के साथ उनका सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति पर जब-जब संकट आये, दुवे जी ने बड़ी हिम्मत से उन संकटों का मुकाबला किया है।

जब स्वतन्त्रता सेनानियों को पेंशन मिलने लगी, तब अनेक व्यक्तियों को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि दुबे जी स्वतन्त्रता सेनानी नहीं हैं। बात यह हुई थी कि सन् ४२ के आन्दोलन में उन्हें जेल जाने की अनुमति नहीं मिली थी। कार्याध्यक्ष काका साहब कालेलकर ने उनसे कहा था — "आप भी जेल चले जावेंगे, तो समिति को कौन सम्हालेगा ? जो आगे जाकर लड़ते हैं, वे ही सैनिक नहीं होते, जो पीछे रह कर काम करते हैं वे भी सैनिक ही होते हैं।"

लोगों की जिज्ञासा को दूर करने के लिए इस सम्बन्ध में एक लेख ही दुबे जी को लिखना पड़ा था — "मैं जेल न जा सका" — जो अहमदाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'राष्ट्रवीणा' में सन् १९५१ में छपा था।

श्री दुबे जी एक कुशल प्रबन्धक हैं। समिति के परीक्षा विभाग की इतनी अच्छी व्यवस्था श्री दुबे जी ने की थी कि वर्धा समिति और दुबे जी दोनों ही लोकप्रिय बन गये थे। करोड़ों प्रमाण पत्रों पर उनके हस्ताक्षर हैं। हस्ताक्षरों के बल पर सारे देश में प्रवेश पा चुके हैं। कुछ मित्र तो उन्हें 'परीक्षा दयाल दुबे' तक कहने लगे थे। श्री दुबे जी की इसी प्रबन्ध कुशलता को देखकर प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने परीक्षा विभाग को व्यवस्थित करने के लिए प्रयाग बुला लिया था, जहाँ १४ माह रह कर रजिस्ट्रार की हैसियत से आपने काम किया था। बीच-बीच में वर्धा आकर वर्धा का काम भी सम्हालते थे।

दुबे जी उच्चकोटि के साहित्यकार भी हैं। साहित्य की सभी विधाओं में आपने काफी लिखा है, जिसका साहित्य जगत में स्वागत हुआ है। आपकी

अनेक पुस्तकों पर पुरस्कार प्राप्त हुआ है । मेरे द्वारा प्रकाशित 'जागरण' साप्ताहिक पत्र में दुबे जी के लेख बराबर छपते रहे हैं । जागरण के सम्पादकीय के ऊपर प्रत्येक अंक में श्री दुबेजी की दो पंक्तियाँ सादर छापी जाती हैं—

जाग्रत करता रहे जागरण भारत जनता जागे ।
चिर विकास मंगल प्रकाश से कलुष कालिमा भागे ।।

इस तरह दुबेजी का नाम हर अंक में छपता है ।

दुबे जी की विनोद वृति किसे मुग्ध न करेगी ? काफी विनोदी साहित्य आप ने लिखा है खुद हँसते हैं, दूसरों को हँसाते हैं । व्यंग्य रचनाएँ भी सुन्दर हैं ।

क्या करारी चोट नेताजी मुझी को दे गये ।
दे गये संदेश अपना, पेन मेरा ले गये ।।

मैंने दुबेजी के साथ काफी यात्रायें की हैं, वे एक अच्छे यात्री साथी हैं । कई सर्वोदय सम्मेलनों में साथ जाना हुआ । पिछले दिनों ही हम लोग उत्तर प्रदेश के बहराइच, गोंडा आदि जिलों में चल रहे रेशम - उद्योग का अध्ययन करने गये थे । उस यात्रा के रोचक प्रसंगों को भुलाया नहीं जा सकता ।

दुबेजी के बारे में जितना लिखा जाय, थोड़ा होगा । उनकी सादी रहन-सहन, सादी वेश-भूषा तथा लोगों के प्रति उनका सद्व्यवहार किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करता है । उनके हाथ के नीचे समिति में सैकड़ों कार्यकर्ता रहे हैं, प्रायः सभी के आप पूज्य 'पंडित जी' बने रहे हैं ।

दुबेजी का हिन्दी गीत—"भारत जननी एक हृदय हो" एक अमर रचना है । दुबेजी ने अनेकों पुस्तकें लिखी हैं पर 'हिन्दी गीत' सब से सिरमौर है और यह गीत दुबेजी को युगों तक अमर रखेगा । इसमें कोई शक नहीं कि दुबेजी का जीवन साधना, कर्मठता और सेवा का एक त्रिवेणी संगम है, उनके जीवन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है ।

✱ ✱

[पत्रकार, वर्धा]

व्यक्तित्व की एक झाँकी : दुबे जी

नागाशास्त्री नागप्पा

महात्मा गाँधी ने दक्षिण के चार प्रान्तों में हिन्दी प्रचार के लिये दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना सन् १९१८ में की थी । अट्ठारह साल

बाद १९३६ में भारत के शेष अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी हिन्दी प्रचार के लिए वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की। इन प्रमुख संस्थाओं में तथा हिन्दी-प्रचार करने वाली अन्य संस्थाओं में यों तो बहुतेरे हिन्दी प्रचारक हुए, पर श्री रामेश्वर दयाल दुबे जैसा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति समर्पित जीवन कम देखने को मिलता है।

लगातार चालीस वर्षों तक श्री दुबेजी ने वर्धा समिति की सेवा की। सन् १९३७ में जब ये वर्धा पहुँचे, तब ये युवा थे। नेत्रों में चमक, चेहरे पर युवावस्था का तेज व्यक्तित्व में गजब की स्फूर्ति। आखिर यह सब कहाँ खप गया? सन् १९७८ में समिति की सेवा से मुक्त होते-होते वह कान्तिमय शरीर बूढ़ा हो गया था। क्षीण दृष्टि, उतरा हुआ चेहरा, दुर्बल शरीर इतना ही तो बचा था, जब वे लखनऊ अपने घर वापस लौटे। सब कुछ राष्ट्रभाषा हिन्दी के हवाले हो चुका था। राष्ट्र की सेवा में स्वास्थ्य का एक-एक बूंद अर्पित करने वाले की इस हालत से मैं बेचैन हो उठा था। तभी एक सुखद घटना घटी।। तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन, दिल्ली में महीयषी महादेवी वर्मा की अध्यक्षता में आपको सम्मानित किया गया। यह सभी हिन्दी प्रेमियों के लिए एक सुखद समाचार था। मेरे हर्ष का तो कोई पारावार न था।

श्री दुबे जी, वर्धा में प्रारम्भ के लगभग चार वर्ष अध्यापन मंदिर में शिक्षण कार्य में लगे रहे। उसके बाद इन्हें सहायक मंत्री एवं परीक्षा मंत्री का दायित्वपूर्ण पद प्राप्त हुआ, यह कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य था, जिसका निर्वाह दुबेजी जैसे सौम्य कर्मठ व्यक्ति के लिये ही संभव था। समिति के परीक्षा-विभाग की व्यवस्था को सुधार कर जिस पद्वति को उन्होंने कायम किया, वह आज भी चल रही है।

श्री दुबे जी वर्धा में समिति के अपने व्यस्त कार्यक्रमों को अप्रभावित रखते हुए अपने व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन से समय चुराकर लेखन कार्य भी करते रहे पर तब यह कार्य उपजीव्य नहीं था। वर्धा से लौटने के बाद इनके सामने आर्थिक स्वालम्बन की समस्या आयी और इसने इनकी लेखनी की गति तेज कर एक के बाद एक उत्कृष्ट रचनाएँ, लेख और प्रणय कथाएँ प्रकाशित होने लगीं। पंचप्रभा, साप्तकिरण, उच्चकोटि के खण्ड काव्य चित्रकूट, गोकुल आदि वर्धा से सेवामुक्त होने के बाद की रचनाएँ हैं। अधिकांश रचनाएँ अहिन्दी प्रदेशों में लोकप्रिय ही नहीं हुयीं, बल्कि उनके अन्तस में प्रवहमान भावों की सहज ग्राह्यता, सरसता, और सरल-तरल भाषा के कारण पाठ्यक्रमों में भी प्रर्याप्त स्थान पा सकीं। दुबेजी ने अभी हाल में कर्नाटक के कला केन्द्र 'बेलूर' पर एक खण्ड

काव्य पूरा किया है । कर्नाटक के लिए इससे बड़ी प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ? इसके अलावा दुबेजी एक सिद्धहस्त हास्य लेखक भी हैं । शुष्क से शुष्क किसी भी सामान्य विषय को लेकर पाठकों को गुदगुदाते हुए बड़े सहज ढंग से उनके मन की गहराई में उतर जाते हैं । इनकी 'आलूचना' लेखमाला ने तो दक्षिण भारत के पाठकों पर जादू का काम किया था । एक तरफ लोगों ने इसे बड़े चाव से पढ़ा और दूसरी तरफ इसके द्वारा हँसी-खेल में हिन्दी ज्ञान प्रसार होता रहा । इस प्रकार दक्षिण भारत में इनके द्वारा किया गया हिन्दी-प्रसार का स्तुत्य कार्य कभी भुलाया नहीं जा सकता ।

श्री दुबे जी प्रारम्भ से हिन्दी के प्रबल प्रचारक रहे हैं और आज भी राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा कर रहे हैं । बेंगलूर की 'कर्नाटक महिला हिन्दी-सेवा समिति' की मासिक पत्रिका 'हिन्दी प्रचारवाणी' और बेंगलूर की साहित्यिक-साँस्कृतिक पत्रिका 'भाषा पीयूष' में दुबेजी के लेख आदर के साथ प्रकाशित हो रहे हैं । दक्षिण भारत से दुबेजी का प्रगाढ़ स्नेह है । इधर के हिन्दी प्रचारकों तथा हिन्दी विद्वानों के लिए वे दूर के व्यक्ति नहीं हैं । सन् १९६५ में दक्षिण भारत हिन्दी यात्रा पर जब राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्यकर्ताओं की टोली आयी थी उसमें सबसे मुखर श्री दुबेजी ही थे । अपनी यात्रा टोली के साथ दुबेजी मैसूर में हमारे घर आये । संत समागम जैसी आनन्द की अनुभूति हुई थी । आगे चलकर तो हमारा उनका सम्बन्ध पारिवारिक आत्मीयता में बदल गया । अपने सहज सरल और सेवा भावी व्यक्तित्व के कारण दुबेजी हम दक्षिण वासियों के मन में बस गये हैं ।

गांधी जी के नेतृत्व में हिन्दी प्रचार - प्रसार कार्य में भाग लेना अपने आप में गौरव की ही नहीं सौभाग्य की बात थी । उस समय प्रत्येक हिन्दी प्रचारक अपने को राष्ट्र का सेवक मान और इस पवित्र एवं रचनात्मक कार्य में निष्ठा से जुड़ा हुआ था । यह एक संकल्प था सारे भारतवर्ष के लोगों के हृदय को जोड़ने का । राष्ट्रभाषा प्रचार के इतिहास से सुहृद्वर दुबे जी ने अपना एक गहरा निशान छोड़ा है जो अमिट है जिसकी स्मृति मात्र से हम दक्षिणवासियों को हिन्दी-प्रसार कार्य में निरन्तर प्रेरणा मिलती रहती है ।

[भू० पू० अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय]

अनन्य हिन्दी सेवी : दुबे जी

पी० नारायण

भारत की आजादी की लड़ाई महज राजनैतिक स्वराज्य से सम्बन्धित नहीं थी। वह तो भारतीय भाषाओं का मुक्ति-संग्राम भी था। कांग्रेस का प्रारम्भिक नेतृत्व इस सत्य को सही परख करने में असमर्थ था। क्योंकि उसकी जबान पर शासक की भाषा सवार थी। १९०५ के बाद जब कांग्रेस के नरमदल पर गरमदल हावी हुआ तो स्वतन्त्रता संग्राम का नारा बना "स्वदेश, स्वदेशी और स्वभाषा"। इस मंत्र की वाचिक उद्घोषणा लोकमान्य तिलक ने की और उसे अमल में लाये कर्मवीर गाँधी स्वभाषा का मर्म जितनी व्यापकता से तथा गहराई से राष्ट्रपिता परख पाये थे, वह भारतीय जागरण परम्परा का सौभाग्य माना जायगा।

गाँधी जी दूर अफ्रीका से ही भाँप रहे थे कि विविध धर्म, सम्प्रदाय भाषा तथा आचार-विचार के भारत को एक जुट करके पर-सत्ता से भिड़ाना है तो राजनैतिक आन्दोलन के समानान्तर में भारतीय भाषा आन्दोलन को भी जगाना होगा तथा भारतीय मानस को जोड़ने पहचानने वाली एक भारतीय सम्पर्क भाषा अर्थात राष्ट्रभाषा-प्रचार भी अनिवार्य है।

इस भूमिका का तात्पर्य इतना है कि लार्ड मेकाले की अँग्रेजी शिक्षा नीति की विषबाधा से मूर्छित भारतीय भाषाओं के पक्ष में राष्ट्रभाषा हिन्दी-विप्लव जो कालान्तर में सम्पन्न हुआ, उसमें उक्त गान्धी-निष्ठा से अनुप्राणित हजारों हिन्दी सेवी, हिन्दी प्रचारक उत्सर्गित हुए। इस हिन्द- विप्लव का चमत्कार दक्षिण में राष्ट्रीय चेतना की दावाग्नि बनकर प्रकट हुआ। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की यज्ञशाला से दीक्षित हजार-हजार हिन्दी प्रचारकों ने राष्ट्रीयता के सम्पूर्ण रचना तत्वों को आत्मसात कर के अतीत काल के बुद्ध भिक्षुओं की तरह गाँव-गाँव में फैलकर राष्ट्र के हित में राष्ट्रभाषा का जैसा अलख जगाया वह कालान्तर में स्वतंत्र भारत के संविधान का मार्गदर्शक सिद्ध हुआ।

१९१८ में स्थापित दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की तरह ही १९३६ में स्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा भी हिन्दीतर भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी हिन्दी प्रचार की साधना करती रही।

दक्षिण के हिन्दी आन्दोलन के एक बुजुर्ग प्रचारक होने के नाते दक्षिणा-पथ के हिन्दी आन्दोलन में उत्तर भारत से आये हिन्दी सेवियों से मेरा परिचय

रहा । १९३२ में देवदास गान्धी जी के हाथों से अपनी 'प्रचारक सनद' हासिल की थी । सर्वश्री ऋषिकेश शर्मा तथा अवधनन्दन मेरे गुरुदेव रहे । सर्वश्री रघुबर दयाल मिश्र, देवदूत विद्यार्थी, रामानन्द शर्मा, बाबा राघवदास, श्रीगंगाशरण मिश्र से मेरा निकट का सम्पर्क रहा । श्री रामेश्वरदयाल दुबे जी को मैं इसी श्रेणी का हिन्दी सेवी मानता हूँ, जिनसे आज भी मेरा घनिष्ट सम्पर्क कायम है ।

श्री दुबेजी निस्सन्देह एक शास्त्रीय घुमक्कड़ हैं, मजे के भाषणकर्ता हैं, सधे हुए शिक्षक, लेखक, कवि तथा अथक हिन्दी सेवी हैं । उक्त विषयों में मेरी भी यत्किंचित सम-दिलचस्पी के कारण इस दिशा में मुझे सतत दुबेजी से प्रेरणा मिलती रही है । यह लेखन मैत्री इतनी गाढ़ी होती रही कि मैं दुबेजी की कतिपय रचनाओं का अपनी मातृभाषा मलयालम में भी अनुवाद करता रहता हूँ ।

१९३७ में वर्धा समिति में आने के बाद परीक्षामंत्री की हैसियत से ही नहीं अपितु समिति के समग्र विकास में दुबेजी का अमूल्य सहयोग रहा है । प्रचार हो या संगठन, लेखन हो या प्रकाशन दुबेजी संस्था के अप्रतिम पोशक तथा मार्गदर्शक रहे हैं । प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन समारोह में दुबेजी ह... कुशलता, कर्मशक्ति का मैं स्वयं प्रत्यक्षदर्शी रहा हूँ । ...मिति के

दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियों की साहित्यिक अभिरुचि की वृद्धि ...पनी मार्जन में भी दुबेजी की लेखन प्रतिभा का सहयोग उल्लेखनीय रहा है । एक जमाना था, जब दक्षिण की पुरानी पीढ़ी के हिन्दी परीक्षार्थी सर्वश्री रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त जी के खंडकाव्य चाव से पढ़ा करते थे । वह लोकप्रियता नई पीढ़ी में दुबेजी के 'कोणार्क' तथा 'चित्रकूट' से प्राप्त है । इतना ही नहीं दक्षिण भारत में प्रकाशित सभी हिन्दी पत्रिकाओं में संस्मरण, सामान्यज्ञान तथा हिन्दी व्याकरण विषयक छोटे तथा सरल लेख भी दुबेजी सदा लिखते रहते हैं । 'आलूचना' इसी प्रक्रिया का पुस्तक रूप कहा जा सकता है । इससे स्पष्ट हैं कि हिन्दीतर भाषी हिन्दी छात्रों के भाषा मार्जन के लिए कवि के भीतर का शिक्षक व प्रचारक कितना सतर्क है, आकुल है ।

दुबेजी की एक गद्य कृति 'दक्षिण दर्शन' में १९६५ में सम्पन्न उनकी दक्षिण की हिन्दी-यात्रा का सरस वर्णन है । यह यात्रा विवरण यात्रा मात्र नहीं हैं । अपितु यह तो दक्षिण के ऐतिहासिक तथा साँस्कृतिक स्थानों का प्रमाणित आलेख है ।

तिरुवन्तपुरम् में इन पंक्तियों के लेखक से दुबेजी की चर्चा रात में देर तक चली थी । हिन्दी-हिन्दुस्तानी का तत्कालीन प्रसंग चर्चा का विषय था । 'दक्षिण दर्शन' पुस्तक में मेरा नाम न देकर 'एक उत्सा...
मेरा स्मरण किया गया है ।

माननीय रामेश्वरदयाल दुबेजी के बहुमुखी सम्पर्क से दक्षिण का हिन्दी आन्दोलन धन्य हुआ है । राष्ट्र, राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रभारती के इस अनन्य सेवी को कभी भुलाया नहीं जा सकता ।

हम दक्षिण के हिन्दी-प्रचारक श्री दुबेजी को हिन्दीतर भारत का बुजुर्ग हिन्दी प्रचारक ही मानते हैं । कुछ माह पहले केरल हिन्दी यात्री दल का नेतृत्व करते हुये जब वर्धा समिति में पहुँचे तब दुबे जी की खूब याद आई । दक्षिण के हिन्दी प्रचारक दुबेजी को कैसे भूल सकेंगे भला ?

[पालघाट, केरल]

सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक : श्री रामेश्वर दयाल दुबे

एम. के. वेलायुधन नायर

मेरे परम मित्र श्रद्धेय श्री रामेश्वर दयाल दुबे जी का संस्मरण, दर्शन और सत्संग मेरे लिए सदा आनन्द का विषय रहा है । 'एक हृदय हो भारत जननी' की महान कल्पना करने वाले उस अनुभूहीन कवि और गीतकार का परिचय मैंने परोक्ष रूप से तब से पाया जब से मैं केरल हिन्दी प्रचार सभा से जुड़ कर कार्य करने लगा । हिन्दी संस्था संघ की बैठकों में भाग लेने जब से दिल्ली जाने लगा तब से दुबे जी के निकट सम्पर्क में आता गया । मैंने पाया कितनी गहरी विद्वता ! कितना लालित्य ! ठीक ही कहा गया है— विद्यता विनयमश्नुते मोटी खादी का कुर्ता और धोती, गान्धी टोपी । 'सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक । मुक्त हृदय की परिचायक मुक्त हँसी । कार्यकर्ताओं के हितैषी, साथी और मार्गदर्शक !

श्री दुबे जी का अनुभव तो अत्यन्त मूल्यवान है । उनसे किए वार्तालापों में मुझे हिन्दी की राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय अस्मिता का बोध स्पष्टता से होता गया । इस दृष्टि से वे मेरे गुरू भी हैं ।

दिल्ली में तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ, तब दुबे जी का विश्व रूप देखने को मिला । देश भर के ही नहीं विश्व भर के कितने ही हिन्दी-प्रेमी विद्वान उनसे आदर से मिल रहे थे और उनका नमन करके अपने को [illegible] रहे थे । दिल्ली नगरपालिका ने समिति के पदाधिकारियों के अभिनन्दन में जो विशेष प्रीतिभोज दिल्ली के अशोक होटल में आयोजित किया

था, उसमें भाग लेते समय मुझे यह सोच कर बड़ा आनन्द हो रहा था कि दुबे जी जैसे एक निस्वार्थ राष्ट्र सेवक का भी सम्मान उचित ढंग से किया जा रहा है।

केरल हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित और भी कार्यक्रमों में वे तिरुवनन्त पुरम् आया करते थे। सन् १९७७ में शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार की निरीक्षण समिति के सदस्य के रूप में शिक्षा मंत्रालय के विशिष्ट अधिकारी श्री भूपसिंह गुप्त जी के साथ वे जब तिरुवनन्त पुरम् आये, तब मेरे घर पर भी पधारे और हमारा आतिथ्य स्वीकार किया। तब से मेरे परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों से उनका आत्मीय सम्बन्ध जुड़ गया।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने एक ही समारोह में श्री रामेश्वर दयाल दुबे जी का और मेरा सम्मान — हम दोनों को — 'साहित्य महोपाध्याय' की उपाधि देकर किया। इस विशिष्ट अवसर पर श्री दुबेजी का सान्निध्य और सामीप्य मेरे लिए अत्यन्त हर्षप्रद रहा।

दुबे जी की रचनायें मैं बड़े चाव से पढ़ता आया हूँ। मुझे उनका 'कोणार्क' खंड काव्य बहुत अच्छा लगा। उसमें पाठकों की रुचि परिष्कृत करने की शक्ति है। इसीलिए हमने उसे केरल हिन्दी प्रचार सभा के पाठ्यक्रम में स्थान दिया है। इसके द्वारा केरल के हजारों विद्यार्थी दुबे जी के उदात्त विचारों से लाभान्वित हो रहे हैं। उनका हिन्दी गीत 'भारत जननी एक हृदय हो' केरल के हिन्दी समारोहों में आदर के साथ गाया जाता है। भारत जननी को एक हृदय बनाने की उनकी कामना को सफल करने में उनकी रचनायें निश्चय ही एक सीमा तक सहायक होंगी।

दुबे जी का जीवन हिन्दी सेवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है और भविष्य में भी रहेगा। ✱✱

[मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा]

समिति के प्राण : दुबे जी

उद्धवराज मेश्राम

सन् १९३८ की बात है। उस समय मेरी उम्र १२–१३ वर्ष की रही होगी। कद छोटा था ही, इसलिए बच्चा लगता था। इसका एक लाभ भी मिला। जिस राष्ट्रभाषा समिति में मैं काम कर रहा था, सभी का अनायास प्यार मुझे मिला करता था। अध्यापन मन्दिर के व्यवस्थापक पंडित जी का तो मै चहेता बालक कार्यकर्ता रहा।

पास ही एक कमरे में उनका परिवार रहता था। ब्राह्मण परिवार और मैं अन्त्यज, परन्तु पंडित जी किसी प्रकार का भेद न रखते थे। उनके परिवार में मेरी पहुँच थी और जब-तब मुझे खाने के लिए फल-मिठाई मिल जाती थी। मेरे निकट उस समय वे पिता-तुल्य थे।

बीच में मैं चार वर्ष के लिए दिल्ली श्री वियोगी हरि जी के पास चला गया। सन् १९४२ में लौटा। उस समय श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन मंत्री थे और पंडित जी सहायक मंत्री एवं परीक्षा मंत्री। पंडित जी की प्रेरणा से मैं समिति में एक लिपिक के रूप में काम करने लगा। समिति का परीक्षा-विभाग ही सबसे बड़ा विभाग था। अतः उसी में पंडित जी की देख भाल में काम करने लगा। तरह-तरह से उन्होंने मुझे ट्रेनिंग दी और जो कुछ भी सेवा मैं कर सका या आज भी कर रहा हूँ, वह पंडित जी की प्रेरणा तथा शिक्षा का ही परिणाम है।

लगभग पिछले पचास वर्षों से पंडित जी की छत्रछाया मेरे ऊपर रही है। सुख-दुख में वे साथ रहे हैं, मार्गदर्शक रहे हैं। मेरे पंडित जी सब कुछ हैं। मैं उन्हें इतना आदरणीय पुरुष मानता हूँ कि आज तक मुझे जो कुछ भी नहीं मिला, उनके पास मिल जाता है। माँ की ममता मैं उनमें पाता हूँ। वह मेरी माँ के समान ही हैं। इससे अधिक मैं और क्या लिख सकता हूँ। आज वे समिति में नहीं हैं, फिर भी, मेरे ऊपर ही क्या, प्रायः सभी कार्यकर्ताओं के प्रति उनका प्रेम पूर्ववत् बना हुआ। वे कार्यकर्ताओं का और समिति का समाचार सुनने के लिए उत्सुक बने रहते हैं।

हिन्दी नगर स्थित समिति के विशाल भवनों के ही निर्माण में नहीं, सम्पूर्ण समिति के निर्माण में जिन दो व्यक्तियों का विशेष हाथ रहा है— वे हैं श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी और श्री दुबे जी।

पंडित जी कवि भी हैं। उनकी पहली पुस्तक 'अभिलाषा' मेरे पास सुरक्षित है। वर्षों मैं उसका नित्य पाठ करता था। उनकी दूसरी पुस्तक 'विश्वास' की ये पंक्तियाँ तो मुझे जीवन में सदा मार्ग दर्शन करती रहती हैं—

"सुख एक घड़ी, दुख घड़ी एक
यह दो घड़ियों का जीवन है।
लहराये जब सुख का समीर, हँस ले इठला ले रे मन तू।
जब घिरे दुखों की प्रलय घटा, रो ले, अधीर हो ले मन तू॥
पर भूल न इतनी बात कभी
सुख-दुख का संयम जीवन है॥"

पंडित जी का बच्चों के प्रति असीम प्रेम था । पूरे २५ वर्ष तक उन्होंने वर्धा में बालकों की सेवा की थी , 'बाल समिति' की स्थापना कर उसके द्वारा वे सभी बालमन्दिरों के बच्चों को समिति प्रांगण में इकट्ठा कर कार्यक्रम कराते थे, जुलूस निकलवाते थे । 'बाल समिति' के वे प्राण थे । उनके जाने के बाद 'बाल समिति' ही समाप्त हो गई । उनकेद्वारा तैयार किया — 'बाल पंचशील' आज भी बाल मन्दिरों में विद्यमान है ।

सन् १९५१ में जब समिति पर संकट के बादल फहराये थे, कौन नहीं जानता कि जीवन का खतरा उठाकर भी पंडित जी ने समिति की रक्षा की थी । सन् १९५२ में जब श्री आनन्द जी समिति से बिदा हुए, तब वे लिख कर दे गये थे —

"सन् ४२ से ५२ के आरम्भ तक दो सहयोगी बैल एक साथ राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति के जुए में जुते रहे । जब एक के कन्धे पर भार बहुत बढ़ गया, तो वह अपने कन्धे का भार दूसरे के कन्धे पर डालकर भाग खड़ा हुआ ।" कहना न होगा, यह दूसरा बैल हमारे 'पंडित' जी ही थे ।

समिति के सभी कार्यों की ओर पंडित जी का ध्यान रहता ही था, साथ ही कार्यकर्ताओं का हित भी वे सदा चाहते थे । एक बार एक उप समिति ने सुझाव दिया कि परीक्षा विभाग में कार्यकर्ता अधिक हैं, कम किये जाँय । पंडित जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था— "अगर कार्य को सुचारु रूप से चलाना है तो उतने कार्यकर्ता चाहिये ही । फिर भी यदि कार्यकर्ता कम ही करने हों, तो कमी का काम मेरे नाम से शुरू हो ।"

उप समिति को अपना सुझाव वापस लेना पड़ा । जब कभी समिति के सम्बन्ध में चर्चा चलती है, तब मैं पंडित जी को, समिति से पृथक् नहीं मानता । उनकी सीख, उनकी विनय, उनकी वाणी, उनकी सेवा प्रकृति, उनका त्याग, उनकी मिलनसारिता, उनकी कार्य कुशलता, सभी दृष्टि से वे समिति के प्राण रहे हैं । ऐसा कोई कार्यकर्ता नहीं, जो उनके साथ कार्य करते हुए उनकी प्रेरणा से लाभान्वित न हुआ हो ।

पंडित जी समिति को 'माँ' तुल्य मानते थे, और आज भी मानते हैं । उनकी सहज इच्छा अपने जीवन की अन्तिम साँस तक समिति की सेवा करने की थी, किन्तु परिस्थितिवश वे स्वयं समिति को छोड़कर चले गये ।

पंडित जी ने लगातार ४० वर्ष तक प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार की सेवा में बिताये, अप्रत्यक्ष रूप से आज भी वे हिन्दी का प्रचार कर रहे हैं, और साहित्य निर्माण-द्वारा हिन्दी के साहित्य-भंडार को भर रहे हैं । पंडित जी के जीवन को मैं धन्य मानता हूँ ।

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा]

केवड़े का कमल

आशाराम वर्मा

पूज्य पंडित जी को केवड़े का कमल कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। वे कर्म के क्षेत्र में— कठोर, अनुशासनप्रिय, कर्मठ, न्यायनिष्ठ, तटस्थ और कर्मयोगी रहे हैं — केवड़ के काँटों की तरह ही।

किन्तु मर्म के क्षेत्र में वे — सहृदय मित्र, वत्सल पिता, रसिक कलावंत, रहित-परायण, भक्त-प्रवर रहे हैं — केवड़े के पराग की तरह ही।

तू आग है, पानी है
कौन तेरा सानी है।
सूरज की किरन है तू
दरिया की रवानी है॥

उनसे मेरी पहली मुलाकात महिलाश्रम के परिसर में एक नल पर हुई। हली ही मुलाकात में उन्होंने मुझे यह वाक्य कहकर के अपना मित्र, बना लिया— 'हम कविता लिखते हैं। तुम कविता में जीते हो। तुम साकार काव्य हो। तुम्हारा यक्तित्व और तुम्हारी दुनिया ही निराली।" उनके इस वाक्य की अणु-ऊर्जा जीवन भर मेरी कबिता का वायुयान कल्पना के आकाश में उड़ता रहा और ब भी उड़ रहा है।

जीवन के क्षेत्र में भी मैं उनका कृतज्ञ हूँ। उनके ही आग्रह से मैंने विशारद' और 'साहित्य-रत्न' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। उनके पत्र के कारण ो मैं सीधे 'मध्यमा' परीक्षा में सम्मिलित हो सका और इन परीक्षाओं के ारण ही मेरी नियुक्ति वर्धा के शासकीय विद्यालय में, उच्च श्रेणी में हिन्दी ाक्षक के पद पर हो सकी। यदि यौवन के मोड़ पर शिक्षा के इस देवदूत का झसे परिचय न होता, तो मैं आजीवन कूकुर की तरह मारा-मारा भटकता हता। मेरे उदर-भरण के यज्ञ में पंडित जी का स्थान पुरोहित का है, जिसकी क्षिणा मैं अब तक नहीं चुका सका हूँ। मुझ अकेले पर ही नहीं; राष्ट्र-ाषा के माध्यम से देश के सहस्रों युवकों पर पंडित जी ने ऐसा ही उपकार िया है।

शासकीय सेवाओं में प्रवेश करने के पहले पंडित जी की असीम कृपा कारण मैंने एक वर्ष तक अ० भा० प्रचार समिति की सवैतनिक सेवाएँ ी थीं। उस समय मैं पंडित जी की कठोर अनुशासन-प्रियता से भी परिचित

हुआ। भोलेपन के कारण एक दिन मुझसे एक भूल हो गयी। पंडित जी ने कहा — "तुमने लोहे की तप्त शलाका मेरे हृदय पर धर दी है।" मैं बहुत लज्जित हुआ और उस समय मैंने अनुभव किया कि — केवड़े में काँटे भी होते हैं। किन्तु दूसरे ही दिन वात्सल्य से मुझे पुकार कर कहा "कोई नई रचना की है ?" और मैं उन्हें अपनी नई रचना सुनाने लगा।

शासकीय सेवाओं में पदार्पण करने के बाद जब भी मैं उनसे मिलता, वे कहते — "अपनी कविताओं की पांडुलिपि तैयार करके मुझे दो, मैं तुम्हारा कविता-संग्रह कहीं न कहीं अवश्य प्रकाशित करवा दूँगा।" उनके इस स्नेहाग्रह से मैं अधिकाधिक साहित्य के प्रगति-पथ पर अग्रसर होता गया। अब भी पंडित जी को अपने काव्य-रथ का सारथी समझता हूँ।

पंडित जी मेरे नाटकों के भी प्रशंसक हैं। वे मुझसे कहते — "तुमने जो मराठी में नाटक लिखे हैं उनका हिन्दी में अनुवाद कर डालो। हिन्दी में ऐसे नाटकों की आवश्यकता है।" मेरे नाट्य-निर्देशन पर तो वे निछावर ही थे।"

पंडित जी स्वयं भी बहुत अच्छे नाटककार हैं। किशोर मंच के लिए उनके नाटक वरदान हैं। जड़ वस्तुओं के मानवीकरण के द्वारा तथा अमूर्त भावों के मूर्तिकरण के द्वारा उन्होंने जो प्रतीकात्मक नाटक लिखे हैं, वे हिन्दी साहित्य के लिए अमृतोपलब्धि हैं।

बच्चों के लिए उन्होंने जो काव्य-रचना की है वह भी हिन्दी साहित्य में अनुपम है। वात्सल्य रस के इस समर्थ कवि का अब तक उचित मूल्यांकन नहीं हुआ है, यह खेद का विषय है।

चाचा नेहरू के बाद सार्वभौम रूप से बच्चों पर वात्सल्य का वरद-छत्र धारण करने वाला ऐसा मातृ-हृदय पुरुष मैंने अब तक नहीं देखा। वर्धा का बाल-मेला इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो कि पंडित जी के वर्धा छोड़ने के बाद अब उजड़ गया है।

पंडित जी ने जो शिष्ट हास्य लिखा है वह 'न भूतो, न भविष्यति'— इतना ही कहना काफी है। उन्होंने अपने हास्य-रस से कवि-सम्मेलन को कदापि चक्कलस सम्मेलन नहीं बनने दिया।

वर्धा नगर पर पंडित जी की एक ऐसी महद् कृपा है, जो अविस्मरणीय है। वह कृपा है — राष्ट्रभाषा के प्रांगण में गोस्वामी तुलसीदास जी की भव्य और दिव्य प्रतिमा, जब भी मैं राष्ट्रभाषा के अन्तर्पथ से गुजरता हूँ तो उस समय मूर्ति के सन्मुख हाथ जोड़कर नत-मस्तक होते हुए कहता हूँ —

"सीय राम मय सब जग जानी।
करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी॥" और फिर केवड़े

की गन्ध से मेरी आत्मा स्नान करते हुए गुनगुनाने लगती है —

ऐसे तो अलभ - शलभ सब,
दीपक पर बन जाते क्षार ।
जो सूरज पर मँडराएँगा,
उसका सबसे ऊँचा प्यार ।
गूँजेगा कवि की वीणा पर,
जग में उसका जयजयकार ॥

[वर्धा, महाराष्ट्र]

मतभेद होने पर भी मनभेद हो न पाये

यदुनाथ थत्ते

महात्मा गान्धी ने रचनात्मक कार्यक्रमों का जो ढाँचा सोचा था, उसमें राष्ट्रभाषा प्रचार को भी स्थान दिया था । उस मोर्चे पर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में जिन व्यक्तियों को तैनात किया गया था, उसमें एक सिपाही थे – श्री रामेश्वरदयाल दुबे ।

पत्राचार से ही श्री दुबेजी के स्नेह का अनुभव करता रहा । राष्ट्रभाषा सेवक में धर्म, जाति, वंश, भाषा आदि भेदों को भूलने की क्षमता होनी चाहिए । उसे भाषा विशेष का प्रचारक नहीं, राष्ट्रीय भावना को परिपुष्ट करने वाला होना चाहिए । यदि राष्ट्रीयता की भावना न हो तो राष्ट्रभाषा का कोई मतलब ही नहीं होगा । इस भावना का जीता जागता मान रखने वालों में एक हैं — रामेश्वरदयाल दुबे । अतः मतभेद होने पर भी मनभेद को उन्होंने कभी कोई स्थान नहीं दिया । इसलिए उनके स्नेहीजनों का एक विशाल परिवार बन गया ।

सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हो गया । श्री दुबे जी राष्ट्रभाषा प्रचार को भाषाई नहीं, राष्ट्रीय आन्दोलन मानते थे, इसलिए उनकी भी जेल जाने की स्वाभाविक लालसा हुई, लेकिन गान्धी जी से उनको अनुमति नहीं मिली । गान्धी जी मानते थे कि रचनात्मक कार्यों की परिपूरित ही स्वराज्य की सिद्ध है, अतः रचनात्मक कार्यों में जुटे लोगों को अपना काम करते रहना चाहिए ।

सन् १९३२ के आन्दोलन की समाप्ति पर जब मैं नागपुर, वर्धा गया, तो

पं० ऋषिकेश शर्मा, पं० रामेश्वरदयाल दुबे आदि ज्येष्ठ राष्ट्रभाषा-सेवकों से परिचय हुआ। स्नेह बन्धन में सदा के लिये बँध गया। एक बिरादरी सी बन गई।

१९४२ में ही राष्ट्रभाषा को लेकर कुछ विवाद पैदा हुए। देश को महत्व देने वाले यह कदापि नहीं चाहते थे कि बिरादरी टूटे। साधन नहीं, मन का महत्व होता है। पत्थर बम बन सकता है और देवता भी बन सकता है। मन पर सब निर्भर करता है। मन छोटा हो, तो देश बड़ा बन नही सकता। दुबेजी ने इस बात को सर्वोपरि माना।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा बनी। मैं उसके साथ जुड़ा, लेकिन दुबेजी से जो स्नेह-बना था, उसका धागा कच्चा नहीं था। जब भी भेंट होती, तो अनौपचारिक ढंग से और गपशप में बड़ा मजा आता। दुबेजी चाहे किसी स्थान पर पैदा हुए हों, अखिल भारतीय नगरकिता उनके रग-रग में थी।

दुबेजी लेखक भी हैं और कवि भी। बहुत संवेदनशील मन उन्होंने पाया है। वे साहित्य के अच्छे निर्माता भी हैं और अच्छे अस्वादक भी। उनकी कुछ साहित्य - कृतियों को मैंने मराठी में प्रस्तुत किया, तो उनको बड़ी खुशी हुई थी। उनकी एक कहानी है 'टिकट चेकर से होली'। उसके मराठी अनुबाद को लोगों ने खूब पसन्द किया था। ऐसी कहानियों का उनके पास खजाना भरा पड़ा है।

स्व० साने गुरूजी के जीवन तथा कार्य से दुबेजी अच्छी तरह परिचित हैं। और मैं अपनी छोटी समझ उसी काम को बढ़ाने में लगा रहा हूँ। साने गुरूजी के द्वारा प्रवर्तित 'अन्तर भारती आन्दोलन' को दुबे जी का सदा समर्थन मिलता रहा। लेकिन जिस बात को उन्होंने सबसे अधिक पसन्द किया, वह बात है साने गुरूजी की 'कथामाला'। अपनी कहानी द्वारा साने गुरूजी ने कितने बाल कुमारों को, युवकों को सांस्कारित किया है। भाव साक्षरता का वह आन्दोलन है। यह आन्दोलन सारे देश भर में फैले ऐसी दुबेजी की भी इच्छा है, लेकिन बढ़ी हुई उम्र तथा आये दिन की बीमारी, चाहने पर भी उन्हें अधिक करने नही देती।

लखनऊ में उनके घर में मेहमान बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। दुबेजी और भाभी जी से दोनों से ही प्यार पाया। दुबेजी को मैं परेशान करता रहता हूँ। चाहता हूँ कि वे अपनी जीवनी लिखें, राष्ट्रभाषा आन्दोलन के संस्मरण लिखें। अनेक बड़े-बड़े नेताओं के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला है, उनके बारे में लिखें।

मेरी पुस्तक 'हमारी-आन हमारी-शान' का नया संस्करण निकालना था। मैं दुबेजी के पीछे पड़ा। दुबेजी ने लिखा "सुधार करने की अधिक गुंजाइश तो है नहीं कुछ सुझाव दिये जाते हैं।" इस पुस्तक को भारत सरकार

के शिक्षा मंत्रालय ने स्वीकार किया और पुरस्कार भी दिया । लेकिन दुबेजी के प्रमाण पत्र को मैं उससे अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। स्व० साने गुरू जी के 'खरा धर्म' गीत का दुबे जी ने "सही धर्म" नाम से इतना प्रसिद्ध अनुवाद किया कि वह गीत सारे भारत में फैल गया है । 'सही धर्म' इतना सच्चा बना कि वह अनुवाद नहीं लगता ।

पिछले दिनों मेरे द्वारा लिखी मराठी पुस्तक "साने गुरूजी" के अनुवाद करने का प्रश्न सामने आया । मेरे सुझाव पर नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ने श्री दुबेजी से अनुरोध किया कि वे उसका हिन्दी अनुवाद कर दें । श्री दुबे जी ने इसे स्वीकार कर लिया और उक्त पुस्तक का इतना सुन्दर अनुवाद किया कि नेशनल बुक ट्रस्ट के अधिकारियों ने उसे बहुत पसन्द किया । इस पुस्तक में साने गुरूजी की आठ मराठी कविताएँ भी थीं । श्री दुबेजी ने इन मराठी कविताओं का पद्यानुवाद हिन्दी में किया, जो पूरी तरह मूल से मिलता है । दुबेजी की लेखनी अब भी चल रही है, यह बड़े संतोष का विषय है । उनका स्नेह-[illegible]न बनना मुझे अपना सौभाग्य-सा लगता है ।

[आन्तर भारती, शनिवार पेठ, पुणे]

दुबे जी की देन : हिन्दीनगर डाकघर

'स्वर्णांकिता' पुस्तक से

डाकघर सरकारी कार्यालय होता है, इसलिए समिति का उसके साथ कोई वैधानिक सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, किन्तु जहाँ तक उसके नाम 'हिन्दीनगर डाकघर' का सम्बन्ध है, उसका भी एक प्रसंग है, जिसे समिति के इतिहास में स्थान मिलना ही चाहिए ।

जब तक समिति का कार्यालय, बापू सेठ के बंगला, काकावाड़ी और गोरक्षण में रहा, वर्धा का पोस्टमैन डाक पहुँचाता रहा, किन्तु जब समिति का कार्यालय गोरक्षण संस्था से हटकर सन् १९४७ में अपने निजी भवन में पहुँचा तो पोस्टमैन ने वहाँ डाक पहुँचाना बन्द कर दिया । कारण यह था कि जिस स्थान पर समिति का नया भवन बना था, वह भले ही सड़क की दूसरी ओर २५ कदम पर था, फिर भी वह वर्धा शहर की सीमा से बाहर था । डाक-समस्या को हल करने के लिए समिति के एक कार्यकर्ता को सड़क पर बैठाना पड़ता था

जो पोस्टमैन से डाक प्राप्त करता था। मनीआर्डर आदि लेने के लिए तो अधिकारी को सड़क पर जाना पड़ता था।

समिति को आने वाली डाक कम नहीं होती थी। समस्या को हल करने के लिए डाक विभाग के अधिकारियों से सम्पर्क किया गया और उन्होंने कृपापूर्वक १९४७ में एक्सपेरीमेन्टल डाकघर समिति के परिसर में ही खोल दिया। यह पोस्ट आफिस पास के गाँव 'सिन्दी प्लाट्स' के नाम पर खोला गया था। काम चल निकला। छः माह बाद उसके नाम का प्रश्न पैदा हुआ। 'सिन्दी प्लाट' गाँव के निवासियों ने चाहा कि चूँकि डाकघर उनके गाँव के नाम पर मिला है, इसलिए 'सिन्दी प्लाट' नाम होना चाहिए। गाँव वालों को बहुत समझाया गया कि अधिकांश डाक 'समिति' की होती है, इसलिए इसका नाम 'राष्ट्रभाषा डाकघर' रखना उचित होगा, पर किसी ने इसे स्वीकार नहीं किया।

तब डाक-विभाग के एक विशेष अधिकारी की उपस्थिति में एक सभा का आयोजन किया गया। बड़ी देर तक चर्चा हुई। समिति के अधिकारी 'प्लाट' जैसे अँग्रेजी शब्द को स्वीकार करने लिए तैयार न थे। अन्त में निश्चय हुआ कि नाम 'सिन्दी नगर' रहे। समिति के परीक्षा मंत्री पं० रामेश्वर दयाल जी दुबे ने नम्रतापूर्वक सुझाव दिया कि चूँकि 'स' का उच्चारण 'ह' हो जाता है, इसलिए व्यवहार में यह 'सिन्दी'-हिन्दी हो जायगा और अँग्रेजी में लिखे हुए (SHINDI) में से S गायब हो जाने पर 'हिन्दी' रह जावेगा, तब क्यों न 'सिन्दी नगर' को 'हिन्दी नगर' मान लिया जाय। हर्षपूर्ण वातावरण में सबने 'हिन्दी नगर' नाम स्वीकार कर लिया। हिन्दी प्रचार करने वाली संस्था को और चाहिए ही क्या था?

[कान्ति शर्मा, मधु-निवास, बाराबंकी]

जिसका जीवन सदा धर्ममय
व्यर्थ नहीं शंकित होवे।
जो अधर्म का जीवन जीता
आज नहीं तो, कल रोवे॥
कोई यह न समझ ले जग में
उससे बढ़कर और नहीं।
खरी कहावत — सेर जहाँ है
सवा सेर भी सदा वहीं॥

— पं० रामेश्वर दयाल दुबे

साहित्य-साधना

वाणी - वन्दना

जयति वाणी भारती जय
जयति वीणा धारिणी माँ !
जयति पुस्तक धारिणी माँ !

भीति भ्रम तम तोम शकित
सहज गति मति जब प्रकम्पित
नीर - क्षीर विवेक मणि की
प्रिय प्रभा विस्तारिणी माँ !

शब्द में सौन्दर्य सौरभ
छन्द में छवि गीत गौरव
काव्य की कमनीयता में
भाव - रस संचारिणी माँ !

शुभ्र अम्बर धारिणी माँ
मोद मंगल कारिणी माँ
चरण - रज चन्दन बने, वर
दे यही वर दायिनी माँ !

— रामेश्वर दयाल दुबे

साहित्य स्रजन के अजस्र स्रोत :
पं0 रामेश्वरदयाल दुबे

डॉ॰ रामप्रसाद त्रिवेदी

गान्धीवादी जीवन मूल्यों से अनुप्रेरित पं॰ रामेश्वरदयाल दुबे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचारकों और रचनाकारों की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें माँ भारती के चरणों में बैठकर नि:स्वार्थ भाव से साहित्य-साधना के द्वारा समाज और राष्ट्र में एक सात्विक ज्योति जलाने का प्रयत्न किया है । आज उस पीढ़ी और उस आदर्श के संरक्षक बहुत थोड़े से बचे हैं, लेकिन उनकी तपस्या और साधना की अखंड दीपशिखा अब भी चतुर्दिक प्रकाश विखेर रही है । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास और अमर कथा शिल्पी प्रेमचन्द जैसे साहित्य के महारथियों और श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे हिन्दी के अनन्य पक्षधरों की सत्प्रेरणा और आशीषों की पूँजी लेकर हिन्दी भाषा के प्रचार हेतु दुबेजी सन् १९३७ में वर्धा गये थे और अपने जीवन के चालीस वर्ष उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के द्वारा स्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की सेवा में बिताये । समिति के महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करते हुए भी उनकी लेखनी अजस्र गति से प्रवाहित होती रही ।

वर्धा में पूज्य बापू का निकट सम्पर्क तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की सेवा ने दुबेजी की रचनात्मक प्रतिभा को धार दी है । कह सकते हैं कि उनकी रचना-धर्मिता का बीज वर्धा की त्याग और तपस्यापूर्ण मिट्टी में फूटा है ।

राष्ट्रीयता ही दुबेजी के जीवन का मूलमंत्र है और उसी के प्रकाश में उन्होंने साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में अपनी क्षमताओं का परिचय दिया है । यद्यपि उनके आदर्शवादी और भावुक मन को सर्वाधिक परितोष काव्य रचना में मिलता है, लेकिन इसके साथ वे नाटक, बाल-साहित्य, एकांकी, कहानी, हास्य-प्रधान एवं मनोरंजक साहित्य, जीवनी, संस्मरण, यात्रा-वर्णन, गान्धी-साहित्य, पद्यानुवाद और स्फुट निबन्ध लेखन में भी बड़े अधिकार के साथ अपनी सिद्धहस्त कला और शैली का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं ।

दुबेजी के सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन यहाँ मेरा अभीष्ट नहीं है । मैं तो उनकी रचनाओं का यहाँ उल्लेख मात्र कर रहा हूँ । साथ ही कुछ प्रमुख रचनाओं का अत्यन्त संक्षेप में परिचय दे रहा हूँ ।

काव्य

(१) कोणार्क (२) सौमित्र (३) नूपुर (४) चित्रकूट (५) गोकुल (६) अभिलाषा

(७) नि:स्वास (७) बेलूर (८) माटी की महक (९) पंचप्रभा (१०) सप्तकिरण (११) बैठे ठाले आदि ।

कोणार्क — उत्कल प्रदेश के समुद्र तट पर स्थित कोणार्क मन्दिर अपनी अद्वतीय शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है । इस मन्दिर के साथ एक बड़ी ही करुण कथा जुड़ी है । उसी का आधार लेकर भावुकता के साथ इस खंड काव्य की रचना की गई है । दुबेजी का प्रथम खंड काव्य होने पर भी उसने हिन्दी के प्रथम श्रेणी के खंडकाव्यों में स्थान पाया है, लोकप्रिय बना है ।

"इस शोकान्तिका में लेखक ने मानों अपने प्राण ही भर दिये हैं । प्रतिभा, कल्पना और इतिहास — तीनों से कोणार्क का चढ़ाव इतना ओतप्रोत है कि स्वभावता इसे बार बार सुनने की इच्छा होती है ।

— माखन लाल चतुर्वेदी

सौमित्र — दुबेजी का यह प्रथम राम काव्य है । रामायण के अन्य पात्रों द्वारा रामानुज लक्ष्मण का चरित्र उभारा गया है । सौमित्र की भूमिका सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है ।

"लक्ष्मण को केन्द्र मानकर इस छोटे से काव्य फलक पर रामायण की समस्त कथा संक्षेप में आ गई है और लक्ष्मण के सभी आयामो की सशक्त अभिव्यक्ति ने इस काव्य को महत्वपूर्ण बना दिया है ।

—सुमित्रानन्दन पन्त

नूपुर — इस खंडकाव्य का कथानक तमिल साहित्य से लिया गया है । एक भाषा की चीज दूसरी भाषा में प्रवेश पाती जावे - यह देश की एकता के लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी । दुबेजी ने इस दिशा में बहुत कुछ किया है ।

"खंडकाव्य की सँभाल कवि को यत्नपूर्वक करनी पड़ती है । दुबेजी ने नूपुर खंडकाव्य को अच्छा सँभाला है । उनकी भाषा सरल छन्द निर्दोश और भाव मनोमुग्धकारी होते हैं । ये सभी गुण इस खंडकाव्य में विद्यमान हैं ।"

— रामधारी सिंह 'दिनकर'

चित्रकूट— राम कथा में महत्व की दृष्टि से चित्रकूट का स्थान अयोध्या से भी आगे है । चित्रकूट वह पुनीन स्थान है, जहाँ कभी मानवीय उदात्त संवेदनाओं का आदर्श प्रस्फुटित हुआ था । उसी घटना का मनोहारी वर्णन मधुर भाषा में अंकित है । इसकी भूमिका महादेवी वर्मा ने लिखी है । डॉ० 'जिज्ञासु' के शब्दों में—"रस कविता की आत्मा है" जिसे इस सिद्धान्त में विश्वास न हो, उसे चित्रकूट पढ़ लेना चाहिए ।

"चित्रकूट में भगवान राम के चित्रकूट प्रवास का वर्णन अत्यन्त रोचक उदात्त और कवित्वपूर्ण है। भाषा और भाव की दृष्टि से यह काव्य अत्यन्त उच्चकोटि का है। प्राकृतिक सौन्दर्य को शब्दों में उतारने में कवि को अच्छी सफलता मिली है। त्याग और कर्तव्य का यह उच्च मानवीय स्तर पर किया गया चित्रण जनता के लिए कल्याणकारी है। चित्रकूट शिव काव्य है।"

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

गोकुल — कृष्ण जन्म से लेकर कंस वध तक की कथा को इस सद्य: प्रकाशित खंडकाव्य में अंकित किया गया है। कृष्ण कथा के तथाकथित चमत्कारों को बोधगम्य रूप देना इसकी विशेषता है।

अभिलाषा— शुभ संकल्पों को समेटे २३ पदों की छोटी पुस्तिका। कंठाग्र करने के हेतु बच्चों में नि:शुल्क वितरण के लिए प्रकाशित। कई संस्करण छापे गये।

नि:श्वास — असमयवज्रपात से मर्माहत हृदय के शोक सन्तप्त बारह करुण गीत। इसकी भूमिका श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखी।

"कविता का प्रधान गुण सरसता हृदय-ग्राहिता और भावुकता है। भाषा सरल सुबोध और ललित होनी चाहिए। 'नि:श्वास' में यह सभी गुण विद्यमान है। इसलिए उसे पढ़कर मुझे विशेष हर्ष हुआ।"

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

"कवि के हृदय में जो वेदना है, उसे प्रकट करने की कला भी उसमें है। यही तो सफल कवित्व है। कवि के 'नि:श्वास' में रसिक भी अपनी नि:श्वास मिलाने को विवश हो जाता है।"

—मैथिलीशरण गुप्त

बेलूर — कर्नाटक प्रान्त का बेलूर मन्दिर अपनी शिल्पकला के लिए विश्व विख्यात हैं। दो महान शिल्पी कलाकारों के जीवन की घटनाएँ इस से जुड़ी हुई हैं। उन्हीं के आधार पर बेलूर खंडकाव्य की रचना की गई है। कला मूर्तियों का वर्णन और कला सम्बन्धी विवेचन प्रशंसनीय बन पड़ा है। नाटकीय तत्व ने इसे और मनोरम बना दिया है।

माटी की महक—दुबेजी का सरल व्यक्तित्व आडम्बर भरी पश्चिमी सभ्यता की भौतिकता से ऊब कर ग्रामजीवन के स्वच्छ निर्मल, निस्वार्थ मानवीय सौहार्द की गोदी में लौटने के लिए लालायित प्रतीत होता है। यद्यपि ग्रंथों की आज वह स्थिति नहीं रही है, फिर भी दुबेजी के काव्य में उसी उदात्त आलोकन का आह्वान है।

"ग्राम-जीवन की शुद्ध-बुद्ध हार्दिकता से सराबोर कवि ने अपनी सहज

मार्मिकता से ग्राम्य जीवन तथा उसके परिवेश को मूर्तिमान करने का श्लाघनीय प्रयत्न 'माटी की महक' में किया है।

— शिवमंगल सिंह 'सुमन'

पंचप्रभा – इस काव्य ग्रंथ में महासती सीता, उर्मिला, राधा, द्रोपदी, और यशोधरा की जीवन-गाथा के बड़े मर्मस्पर्शी चित्रकाव्य तूलिका से अंकित किये गये हैं।

"दुबेजी हिन्दी के एक समर्थ कवि हैं। उनकी काव्य दृष्टि जहाँ पात्रों की अनन्त संवेदनाओं तक पहुँचती है, वहीं उनकी सरल सुबोध भाषा उनके भावों की अभिव्यंजना में रस-संसार की अद्‌भुत योजना कवि की सशक्त लेखनी द्वारा इस ग्रंथ 'पंचप्रभा' में सम्भव हो सकी हैं।

— रामकुमार वर्मा

सप्तकिरण–भारतीय संस्कृति में नारियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। 'सप्तकिरण' में सात भारतीय नारियों की यशगाथा गाई गयी है — मारुई, सती जयमती, जसमा, पन्नाधाय रानी दुर्गावती, रानी चेनम्मा, और महारानी लक्ष्मीबाई। दुबे जी की दृष्टि के सन्मुख मात्र कोई विशेष प्रदेश नहीं सम्पूर्ण भारत रहता है। उनकी यह व्यापक दृष्टि वंदनीय है।

बैठे ठाले – दुबेजी ने बैठे ठाले १०० मुक्तक लिखे हैं, उनमें चिन्तन है, मनोरंजन है और है विनोद भी।

"जब दुबेजी बैठे ठाले इतना सुन्दर लिख सकते हैं, तब चलते-फिरते कितना क्या लिखेंगे!

— नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

नाटक

(१) ऋतुचक्र (२) असत्य (३) साँची के स्वर (४) सम्राट बहादुरशाह जफर

ऋतुचक्र – इस छोटे से नाटक में लेखक ने अपनी अनुपम सूझ का परिचय दिया है। ऋतुओं का मानवीकरण किया गया है। पृथ्वी माँ है, ग्रीष्म बड़ा भाई, वर्षा बहन और शरद, हेमन्त शिशिर तथा वसन्त चार छोटे भाई हैं। वार्तालाप द्वारा ऋतुओं का सम्पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया गया है, जो मनोरंजक है।

"हिन्दी एकांकी की वसन्त ऋतु में दुबेजी का 'ऋतुचक्र' ऐसा मनोरम कुसुम है, जिसकी सुरभि दूर-दूर तक आनन्द का प्रसार कर सकेगी। ऋतुओं में चेतना का सौन्दर्य भरकर दुबेजी ने प्रत्येक की विशेषता अत्यन्त स्वाभाविक मनोविज्ञान में उपस्थित की है। छोटे-छोटे बालक भी उसमें रस लेकर अभिनय के क्षेत्र में उतर सकते हैं। ऋतुचक्र के

संक्षेप रूप ने उसे छोटे नायकों का नायक बना दिया है ।

— रामकुमार वर्मा

अगस्त्य — ऋषि अगस्त्य से सम्बन्ध रखने वाली चमत्कारपूर्ण घटनाओं को बोधगम्य रूप देकर दुबेजी ने उन्हें स्वाभाविक रूप में अंकित किया है । उत्तर से दक्षिण तक की ऋषि अगस्त्य की सांस्कृतिक अभियान-यात्रा का सुन्दर परिचय इस नाटक में मिल जाता है ।

"सुन्दर सम्वाद शैली के सुयोग से अगस्त्य की घटना चित्रण में जो मनोरमता और आकर्षण उत्पन्न हुआ है, वह वस्तुत: स्तुत्य है । भावनात्मक एकता के लिये अगस्त्य नाटक को सदा स्मरण किया जावेगा ।

— डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

एकांकी

(१) सप्तपर्ण (२) नर्मदा

नर्मदा — पुराण और इतिहास के गर्त में से चुनचुनकर मोती इस नर्मदा 'एकांकी' संग्रह में दुबेजी ने संजोये हैं ।

"त्याग और वलिदान की भावना के बिना किसी भी देश या राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता । वैसी ही दर्द भरी कथा कहने वाले हैं ये उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत लघु नाटक, जो आने वाली पीढ़ियों के मन को निर्मल करते रहेंगे ।

— विष्णु प्रभाकर

कहानी

(१) बात तो थी (२) भारत की प्रणय कथायें

भारत की प्रणय कथायें—सम्पूर्ण भारत के २३ अंचलों की एक-एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रणय कथा को उस अंचल की पार्श्वभूमि को प्रस्तुत करते हुए मनोरम शैली में इस संग्रह में प्रस्तुत किया गया है ।

"प्रादेशिक प्रेम कथाओं का यह संग्रह अनोखा है । सरल भाषा शैली और सरस वर्णन इस संग्रह की विशेषता है । राष्ट्रभाषा प्रचारक के रूप में दुबेजी ने भारत प्रणय का सौभाग्य पाया है । भारत की प्रणय कथाएँ इस अनुभव यात्रा का निचोड़ हैं ।"

— अमृतलाल नागर

हास्य

(१) आलूचना (२) पिकनिक

आलूचना – दुबेजी हास्य लिखने में भी निपुण हैं । उनका हास्य शिष्ट, रोचक और गुदगुदा देने वाला होता है । गद्य और पद्य दोनों में ही उन्हों

ने हास्य साहित्य की रचना की है।

"दुबेजी प्रतिभा के धनी हैं उनके पास काफी रंग-रंग के मसाले हैं। एक से एक चटपटे और अटपटे। उनका मसालेदार 'आलूचना' ने विशेष प्रसिद्धि पायी है। 'आलूचना' में खटाई मिठाई और चटपटेपन का जो सामंजस्य है, वह अद्‌भुत है। 'आलूचना' दुबेजी की सूझ-बूझ का सुन्दर नमूना है।

—बेधड़क बनारसी

गान्धी साहित्य

(१) बापू की बातें (२) जीवन की बूंदे (४) गान्धी जीवन झलक (४) गान्धी जीवन दर्शन

अनुवाद

(१) आश्रय प्रार्थना (२) मधुकरी (३) तिरुकुरल (४) भ्रमर गीतलु (५) सुमति शतक (६) धम्मपद (७) साने गुरू जी (८) ज्ञान गंगा

ज्ञानगंगा – ज्ञानगंगा में तमिल, तेलुगू, कन्नण, मराठी, असमिया आदि विभिन्न भाषाओं के अनमोल रत्नों को हिन्दी के पाठकों के लिये पद्यानुवाद करके सुलभ किया गया है। इस पुस्तक में बुद्ध, महावीर, कुरान और बाइबिल के शाश्वत वचनों का भी पद्यानुवाद है। 'ज्ञानगंगा' भावात्मक एकता का प्रतीक है, क्योंकि सभी संतों की चिन्तन की धारा एक है।

यात्रा - वर्णन

भारत का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहाँ दुबेजी अनेक बार न गये हों। यात्रा सम्बन्धी उनके सैकड़ों लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। पुस्तक रूप में एक ही पुस्तक सामने आई है, वह है 'दक्षिण दर्शन' सन् १९६५ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का एक यात्री दल दक्षिण में हिन्दी की वास्तविक स्थिति को समझने गया था। मुख्य उद्देश्य वही था। दक्षिण के देश-दर्शन, लोक-दर्शन और संस्कृत-दर्शन का भी सौभाग्य यात्री दल को प्राप्त हुआ। उसी का मनोहर वर्णन दुबेजी ने 'दक्षिण-दर्शन' में किया है।

"दुबेजी की गद्यकृति 'दक्षिण दर्शन' में दक्षिण की ही हिन्दी-यात्रा का सरस विवरण है। यह मात्र विवरण नहीं है, यह तो दक्षिण के ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक स्थानों का प्रमाणिक आलेख है जो उत्तर के यात्रियों के लिए ही नहीं, अपितु दक्षिण के यात्रियों के लिए भी माननीय है।

—पी० नारायण, पालघाट, केरल

बाल साहित्य

(१) भारत के लाल (२) क्या यह सुनी कहानी ? (३) चले चलो (४) कुकड़ूँ कूँ (५) प्यारे बच्चे (६) माँ, यह कौन ? (७) फूल और काँटा (८) डंडा और बाँसुरी (९) बड़े जब छोटे थे (१०) बगला सफेद क्यों (११) कौआ काला क्यों (१२) उत्तर प्रदेश (१३) डाल डाल के पंछी (१४) धरती के लाल (१५) कृष्ण का गोवर्धन धारण (१६) राम कथा (१७) घूमघूम कर देखें देश ।

"श्री दुबेजी बाल साहित्य के सिद्ध लेखक हैं । 'घूम घूम कर देखे देश' कविवर दुबे की मनमोहक रचना है । बालकों के लिए भारत के प्रमुख प्रदेशों का इसमें ऐसा वर्णन है जसे हम उसे अपनी आँखों से देख रहे हों ।"

— सोहनलाल द्विवेदी

हिन्दी में सुव्यवस्थित और अधिकारपूर्ण ढंग से बाल साहित्य का सृजन बहुत कम हुआ है । लेकिन बालकों की जिज्ञासा और कौतूहल वृत्ति का समाधान करने वाले साहित्य की जो भी कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें दुबेजी का अपना निराला रंग है ।

जीवनी

(१) भारत के रत्न (२) बाबा राघवदास (३) राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन (४) माता कस्तूरबा (५) महात्मा गान्धी पुरस्कार प्राप्तकर्ता

अन्य पुस्तकें

(३) धर्म अनेक हम सब एक (२) भारत के बाहर भारत (३) अन्ध विश्वासों की आँधी

स्वर्णांकिता

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के गत ५० वर्ष का इतिहास (एक विशाल ग्रंथ)

दुबेजी के ग्रंथों पर विशिष्ट विद्वानों के पचास से अधिक समीक्षात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं ।

नागपुर विश्वविद्यालय की छात्रा श्रीमती सूर्यकान्ता शर्मा, गुजरात विश्व-विद्यालय की छात्रा कुमारी अर्चना शुक्ल, कर्नाटक अनुसंधान केन्द्र धारवार के रवाजी राव नदाय तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्र आलोक कुमार त्रिवेदी ने दुबेजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में लघु शोध प्रबन्ध लिखे हैं ।

उस्मानिया विश्वविद्यालय के डा० चन्द्रवती (प्रोफ़ेसर हिन्दी विभाग) के निर्देशन में "हिन्दी खंड काव्य परम्परा — रामेश्वर दयाल दुबे का योगदान" विषय पर बृहद् शोध ग्रंथ लिखकर डॉ० सोमनाथ राव ने पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की है ।

आज कल दुबेजी लखनऊ स्थित निराला नगर के नागरिक हैं और 'चित्रकूट' की सात्विक छाया में रचनाकर्म में दत्तचित्त हैं । मुझे विश्वास है कि उनकी रचनात्मकता की मन्दाकिनी कभी नहीं सूखेगी और साहित्य साधना के द्वारा वे निरन्तर अपनी सक्रियता का प्रमाण देते रहेंगे ।

सम्पादित

(१) रहीम के दोहे (२) गुलदस्ता २ और ३ (३) मुहावरे और कहावतें (४) श्री राम कथा (५) सर्वमान्य हिन्दी

✱ ✱

रामकथा के एक और गायक : पं० रामेश्वर दयाल दुबे

डॉ० पाण्डेय रामेन्द्र

राम का संघर्षपूर्ण पुरुषार्थी रूप भारतीय जन-मानस में ऐसा रस-बस गया है कि उस आदर्श चरित्र में 'ब्रह्मस्वरूप' मानकर कवियों ने उसके प्रति अपनी असीम श्रद्धा और भक्ति व्यक्ति की है । सभी ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उस उदात्त चीज से प्रेरणा ली है । राष्ट्रपिता गाँधी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं ।

महात्मा गाँधी से विशेष प्रभावित होकर पं० रामेश्वरदयाल दुबे ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के उत्कर्ष के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था । अत: गाँधी जी की राम-भावना और मर्यादावादी चरित्र ने दुबेजी को विशेष प्रभावित किया था । इसके अतिरिक्त राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के राम-काव्यों का दुबेजी ने गम्भीर अध्ययन किया । वे 'साकेत' महाकाव्य से प्रभावित हुए । इस प्रकार उनकी राम भावना पर गाँधी और गुप्त जी का भी प्रभाव पड़ा ।

दुबे जी को राम-भक्ति अपने पारिवारिक परिवेश से प्राप्त हुई थी । पिता पं० देवीदयालु दुबे के संयोजकत्व में उनके गाँव हिन्दूपुर (मैनपुरी) में प्रत्येक वर्ष धनुषयज्ञ का मंचन होता, जिसमें बालक रामेश्वर लक्ष्मण का अभिनय करता, जब गाँव में राम, सीता और लक्ष्मण के विमान की फेरी होती, तो उनके पिता भी राम सीता के साथ-साथ लक्ष्मण बने अपने पुत्र रामेश्वर के पैर छूते और कहते मैं तुम्हारे नहीं, लक्ष्मण के पैर छूता हूँ । इस परिप्रेक्ष्य में रामेश्वर जी द्वारा मुझे लिखे गये एक पत्र का उल्लेख करना असंगत न होगा ।

"मेरे पिता पं० देवीदयालु जी अपने दोनों पुत्रों को राम-लक्ष्मण की भाँति समझते थे । हम मात्र दो भाई हैं । बड़े भाई पं० मंसुखलाल जी और मैं । मेरे

पिता जी प्राय: कहा करते थे — "हमारे दो बेटे राम-लक्ष्मण जैसे हैं। जब 'सौमित्र' खण्डकाव्य प्रकाशित किया, तो उसे मैंने अपने बड़े भाई को समर्पित किया— तथाकथित राम के प्रति लक्ष्मण की यह श्रद्धा थी। घर पर वर्ष में अनेक बार मानस का अखण्ड पाठ होता। इसके अतिरिक्त मैनपुरी पहुँचने पर प्रख्यात मानस मर्मज्ञ राजबहादुर लमगोड़ा के प्रवचनों तथा उनके सम्पर्क का बालक रामेश्वर जी पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे संत-महात्माओं एवं व्यासों को व्याख्यानों को सुनने के दीवाने हो गये। उन्होंने राम विषयक तीर्थों का भ्रमण किया। फलत: राम-भक्ति सम्बन्धी इस व्यापक और सुदृढ़ भाव-भूमि का दुबेजी के व्यक्तित्व तथा विचारधारा पर प्रभाव पड़ा। वस्तुत: यही उनकी राम - भक्ति की पृष्ठभूमि बनी। दुबेजी के राम - भक्ति-काव्य में उनके हृदय की पावनता, साधुता, परदुख कातरता और भक्ति-भावना का सहज परिचय मिलता है।

परिवार में पिता द्वारा उन्हें लक्ष्मण सदृश मानने और रामलीला में लक्ष्मण का अभिनय करने का परोक्ष किन्तु स्पष्ट प्रभाव दुबेजी के चिंतन-जगत पर निरन्तर पड़ता रहा। फलत: सन् १९६७ में (जीवन के साठ वर्ष पूरे करने पर) उन्होंने 'सौमित्र' नामक प्रबन्ध काव्य की रचना की। कैकेयी ने राम के लिए वनवास माँगा था न कि लक्ष्मण हेतु; फिर भी वे अपने अग्रज के आपत्ति काल में उनके सहायक बनकर सहर्ष वन जाते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय में जिस सामीप्य-मुक्ति की परिकल्पना की गयी है राम-भक्ति में लक्ष्मण और हनुमान उसके आदर्श हैं। 'सौमित्र' प्रबन्ध काव्य में दुबेजी की भक्ति लक्ष्मण के रूप में व्यक्त हुई है। वे त्याग-तपस्या सेवा और शौर्य के प्रतिमूर्ति थे। इसीलिए रामकथा गायकों के बीच लक्ष्मण सदा श्रद्धा और भक्ति के साथ गाये जाते रहेंगे।

'सौमित्र' खंडकाव्य की भाषा, छंद - विधान एवं भाव - सम्पदा पर मैथिलीशरण गुप्त की अमिट छाप है। 'साकेत' के राम की भाँति 'सौमित्र' के राम अपने अनुज की मुक्त कण्ठ से सराहना करते हैं।

भरत भरत है, किन्तु न लक्ष्मण, तुम सा बन्धु अन्य देखा।
अग्रज के ही लिए कि जिसका लिया गया जीवन - लेखा॥

× × ×

अनुज - धर्म तो तूने लक्ष्मण, सीमा से आगे साधा।
निभ न सकी अग्रज की ममता, विधि ने ही डाली बाधा॥
तू रहता है निकट कि श्लाघा कहने में निज की होती।
मानस - हंस मौन चुगता नित, तृप्ति तोष के ही मोती॥
वाणी की वीणा पर कोई कब तक कितना गायेगा।
तेरी यश गाथा अनन्त है, अन्त न कोई पायेगा॥

'सौमित्र' में रामानुज के निर्भीक, तेजस्वी, ओजस्वी तथा यशस्वी चरित्र की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। दशरथ, सुमित्रा, सीता और राम इन्हीं चरित्रों के नाम पर सर्गों का नामकरण हुआ है। इन्हीं पात्रों की गम्भीर भावात्मक प्रतिक्रियाओं के मिस कवि ने सम्पूर्ण रामकथा को काव्य फलक पर प्रस्तुत किया है। आलोच्य काव्य द्वारा दुबेजी ने राम-भक्ति के साथ-साथ देश के युवकों को लक्ष्मण जैसा आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा दी हैं।

काव्य की भाषा प्राञ्जल, प्रवाहपूर्ण तथा ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से युक्त है। भावों की निर्मल एवं अकृतिम अभिव्यक्ति प्रत्येक सहृदय पाठक को बरबस आकर्षित करती है।

तुलसी कृत 'मानस' और गुप्तजी कृत 'साकेत' के चित्रकूट प्रसंग से दुबेजी अभिभूत रहे हैं। सन् १९६२ में उन्होंने चित्रकूट के दर्शन भी किये। सहृदय पाठकों और सुधी समीक्षकों से उनके 'सौमित्र' को भरपूर सम्मान मिला। फलत: उनमें राम-भक्ति का प्रवाह तीव्र गति से फूट पड़ा। परिणामस्वरूप दुबेजी ने 'चित्रकूट' नामक एक अन्य राम-भक्ति-प्रधान खण्डकाव्य की रचना की। वे १९७८ में पुन: चित्रकूट गये और उसके अनन्तर उसी वर्ष 'चित्रकूट' का प्रकाशन कराया। यह प्रबन्ध काव्य 'सौमित्र' से भी अधिक लोकप्रिय हुआ। यहीं चित्रकूट के प्रकाशनोपरान्त दुबेजी की हार्दिक इच्छानुसार लखनऊ के निराला नगर में उन्हें एक बना-बनाया सुन्दर भवन मिल गया। उसे खरीदने के अनन्तर भक्त कवि ने उसका नाम 'चित्रकूट' रखा। इस तीर्थ के प्रति दुबेजी की अगाध निष्ठा से सम्बन्धित निम्नांकित काव्यांश द्रष्टव्य है।

भावुक मन को चित्रकूट यह युग-युग तक खींचेगा।
इसके लिए तृषित कण्ठों को मधुरस से सींचेगा॥

× × ×

राम-चरण-रज छू जिस थल की, धरा हो गयी धन्या।
जनक सुता को मिली प्रकृति की गोदी जहाँ अनन्या॥

जहाँ रोष लक्ष्मण का सहसा भभका, सकुचा, पिघला।
जहाँ शील-गिरि-श्रृंग चूमने स्नेह भाव शिशु मचला॥

जहाँ आज भी सुस्मृतियों के सुख से होता मुखरित राम।
चित्रकूट की रम्य थली को कवि का श्रद्धा सहित प्रणाम॥

जहाँ लगा मंदाकिनि तट पर, मृदु ममता का मेला।
जहाँ राज्य को गेंद बनाकर गया करों से खेला॥

जहाँ कैकेयी गली ग्लानि से भीतर-भीतर रोयी।
जहाँ भरत के भ्रातृ-प्रेम की रही न सीमा कोई॥

जहाँ भक्तिवश तुलसी-चन्दन स्वयं लगाते हैं श्रीराम।
चित्रकूट की पुण्य थली को कवि का श्रद्धा सहित प्रणाम॥

समग्र काव्य में तुलसी कृत 'मानस' और गुप्तजी रचित 'साकेत' की अनुगूँज विद्यमान है।

'चित्रकूट' खण्डकाव्य में कुल पाँच सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में प्रकृति के अद्भुत उल्लास द्वारा भगवान राम के चित्रकूट -आगमन का कवि ने पूर्वाभास दरसाया है। द्वितीय सर्ग के अन्तंगत चित्रकूट में राम द्वारा पर्णकुटी-निर्माण एवं वहाँ के कोल किरात और भीलों की भक्ति-भावना दरसायी गयी है। तृतीय सर्ग में भरत के चित्रकूट आगमन की सूचना मिलने पर अनिष्ट की आशंका से लक्ष्मण की राम-भक्तिमय वीरोचित प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। भरत के रामकुटी तक पहुँचते ही भक्ति-प्रधान मिलन का हृदयग्राही वर्णन हुआ है। चतुर्थ सर्ग के अंतर्गत राम को अयोध्या लौट चलने हेतु उन्हें मनाने के लिए चित्रकूट में सभा होती है। पंचम सर्ग में अयोध्या तथा जनकपुर-वासी चित्रकूट का भ्रमण और दर्शन करते हैं। विदा लेते हैं। प्रबन्धकार दुबेजी ने इसी सर्ग में अपना संदेश दिया है। परम्परागत हिंदी-रामकाव्य की तुलना में 'चित्रकूट' की मौलिकता पाँच रूपों में दृष्टिगत होती है—

१– 'चित्रकूट' के कवि ने शत्रुहन को मुखर बनाया है।

२– इस काव्य में राम और कैकेयी की मंदाकिनी के एकांत तट पर भेंट का उल्लेख है, जिसमें कवि ने कैकेयी को निर्दोश दरसाया है।

३– जनक-शिविर में माता सुनयना और सीता की भेंट में कवि ने मातृत्व का विशेष उद्‌घाटन किया है।

४– गुप्तकृत 'साकेत' की भाँति लक्ष्मण-उर्मिला-मिलन चित्रित है, किंतु दोनों की वार्ता का ढंग बदला हुआ है।

५– चारों भाइयों की पत्नियों के पारस्परिक सौहार्द्रपूर्ण मिलन का स्वाभाविक और मार्मिक वर्णन इस प्रबन्धकाव्य की एक अन्य उल्लेखनीय नवीनता या मौलिकता है।

लक्ष्मण के तप-त्याग-सेवा और पुरुषार्थ में उर्मिला की भूमिका अविस्मरणीय है, फिर भी 'सौमित्र' खण्डकाव्य में इसका अभाव पाकर छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत ने उसकी भूमिका में इसका उल्लेख किया। इस महत्वपूर्ण कमी को दूर करने में दुबेजी ने 'चित्रकूट' के पंचम सर्ग में लक्ष्मण-उर्मिला भेंट चित्रित करने की दिशा के साथ ही साथ बहनों की वार्ता के मध्य उर्मिला के प्रति सभी की सहानुभूति दरसायी है। उर्मिला जैसी त्यागमयी नारी के प्रति कवि को इतनी सहानुभूति पर्याप्त नहीं लगी तभी अपने 'पंचप्रभा' (१९८०–८१) में जिन पाँच

आदर्श भारतीय नारियों की महिमा चित्रित की, उनमें सीता और उर्मिला को भी स्थान दिया। सीता का चरित्र परंपरा से कोई विशेष भिन्न नहीं है, किंतु उर्मिला—चरित्र में भक्त कवि दुबेजी ने पर्याप्त नवीनता का समावेश किया है। इस प्रकार 'सौमित्र' काव्य की 'उर्मिला विषयक उदासीनता' का मार्जन दुबेजी ने 'पंच-प्रभा' में किया है। निश्चय ही लक्ष्मण चरित्र की पूर्णता हेतु यह आवश्यक था। उर्मिला-चरित्र की सृष्टि हेतु दुबेजी मैथिलीशरण गुप्त की नारी-भावना तथा उनकी मानस पुत्री उर्मिला से प्रभावित हैं, 'पंचप्रभा' की उर्मिला भारतीय नारी की महिमा से मण्डित है। उसका प्रेम प्रिय के कर्तव्य पालन में कहीं किंचित भी अवरोध नहीं उपस्थिति करता। इस उदात्त नारी चरित्र की सुकोमल उक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक एवं अनुभूतिमयी हैं—

विधि-विडम्बना ने देखा है, रंग किसी ने इतना गहरा।
हँसने पर आहों का अंकुश, रोने पर पलकों का पहरा॥
अधिक याद करने में भी डर, उनको कहीं न हिचकी आयें।
रो पड़ती, तो डरती उनके, नयन नहीं गीले हो जायें॥
चित्त बड़ा चंचल चिंतन में, कहाँ - कहाँ फिरता बेचारा।
बनवासी हो जाय न यह भी, खेल बिगड़ जायेगा सारा॥
रत सेवा में रहें वहाँ वे, उनको मेरी याद न आये।
शेष बने यह अवधि ओस सी, सुप्रभात आभा फैलाये॥
बहक-बहक जाती क्यों फिर-फिर, व्यर्थ विचारों को क्यों पालूँ।
उठूँ, बुलाता मुझे, चलूँ उस वर्तमान को अभी सँभालूँ॥

रामकथा-प्रधान 'सौमित्र', 'चित्रकूट' और 'पंचप्रभा' काव्यों से संबंधी इस विवेचन से स्पष्ट है कि राम-भक्ति कवि दुबे ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भाँति अपने रामकाव्यों तथा उनसे सम्बन्धित चरित्रों के पारम्परिक रूप को अक्षुण्ण रखते हुए उन्हें आधुनिक सन्दर्भों में प्रस्तुत कर रामकथा के अनेक उल्लेखनीय पात्रों को शाश्वतता प्रदान की है। पात्रों के कथनों-अकथनों द्वारा भक्त कवि ने जो स्वाभाविक भावभूमि प्रदान की, उससे पाठक की सम्पूर्ण सहानुभूति अर्जित करने में वह सफल हुआ है। इस प्रकार दुबेजी ने रामकथा को विस्तृत जीवन झलक तो दिया ही, इसके अतिरिक्त उसे देशकालतीत भी बनाया है।

[१७ चन्द्रनगर, रायबरेली]

श्री रामेश्वरदयाल दुबे के-काव्य में सांस्कृतिक चेतना

डॉ० श्रीमती उर्वशी० जे० सूरती

' सांस्कृतिक चेतना ' अर्थात् सांस्कृतिक विशेषताओं का समग्र रूप में क्रियाशील अभिव्यक्ति । चेतना तो परम सत्यस्वरूप वह तत्व है, जो आकृति, प्रकृति निष्कृति और संस्कृति से असंग है, फिर भी समान रूप से सबको शक्ति प्रदान करती है । इतिहास - पुराण, धर्म - दर्शन, कला - साहित्य के स्तम्भ हैं । संस्कृति की पूर्णता इन छहों स्तम्भों की सनातनता में है, तो उसकी पराकाष्ठा नित्य नूतनता में है । जो स्तम्भ सनातनता और नित्य नूतनता का परिचय दे सके, उसे साँस्कृतिक चेतना से सम्पन्न माना जाता है ।

कवि श्री रामेश्वरदयाल दुबे के काव्य में, विशेषत: उनके खण्डकाव्यों में हमें इस साँस्कृतिक चेतना का परिचय मिलता है । उनका काव्य भारतीय संस्कृत की विरासत का एक विशिष्ट रूप है । इस बहुमुखी प्रतिभाशाली कवि की मौलिक काव्य रचनायें अनेक हैं । यहाँ पर हम उनकी कुछ मौलिक काव्य कृतियों को केन्द्र में रखकर उनकी सांस्कृतिक उपलब्धि पर एक दृष्टिपात करेंगे ।

मुख्यतया ये रचनायें काव्य हैं, अत: साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से मूल्यांकन करने पर उनके कला-पक्ष और भावपक्ष की सफलता एक विशिष्ट उपलब्धि है, जिसका रहस्य उनकी साँस्कृतिक चेतना में व्याप्त होता है । उन्होंने इतिहास और पुराण, धर्म और दर्शन के तत्वों को अपनी रचनाओं में इस अनुपात में ग्रहण करके उसे रचनात्मक सौन्दर्य प्रदान किया है कि उससे काव्यत्व का ह्रास नहीं होता, बल्कि कवि-कर्म की तेजस्विता प्रगट होती है । इतिहास पुराण के आख्यान को वे आधुनिक युग-चेतना से सम्बद्ध करने का प्रयत्न करते हैं ।

धर्म को मानव के व्यावहारिक जीवन मे चरितार्थ करने का और दर्शन को यथार्थ का धरातल देने का उनका प्रयत्न आधुनिक युग जीवन के सन्दर्भ में परम आवश्यक है । इस दिशा में भी उन्होंने अपनी काव्यकला का सफल प्रयोग किया है । वे गान्धी दर्शन से प्रभावित हैं किन्तु गान्धीवादी नहीं, इसलिए गान्धी-दर्शन की सजीवता और सार्थकता से वे अनुप्राणित हैं ।

उड़ीसा का ' कोणार्क ' सूर्य मन्दिर धर्म भावना से प्रेरित उत्कृष्टतम कलाकृति है । श्री दुबेजी का प्रथम खंडकाव्य ' कोणार्क ' की कथावस्तु इसी मन्दिर पर आधारित है ।

वेदी पीठ न केवल प्रस्तर, क्रम से कला नियोजित ।
पाद कुम्भ के ऊपर कवि वसन्त है शोभित ।।

बारह बर्ष तक बारह सौ शिल्पियों के लगातार परिश्रम के फलस्वरूप निर्मित इस मन्दिर में मात्र शिल्पकला ही नहीं, शिल्पकला के माध्यम से भारत के इतिहास, पुराण धर्म-दर्शन और साहित्य सबको साकार प्रस्तुत किया गया है ।

मंत्री विश्वासघात करता है, राजा नृसिंह देव छला जाता है । पवित्र विश्वास का अनुचित लाभ उठाने वाला मंत्री मूल विघटन को अपना जीवन-मंत्र मानने की गलती करता है । यह उसकी सांस्कृतिक चेतना का ह्रास है । फलस्वरूप सूर्यमन्दिर भग्न हो जाता है । कोणार्क खंडकाव्य सत्य को मुखर बनाता है कि सांस्कृतिक विकास के अभाव में मानवता का लोप हो जाता है ।

बलिदान हमेशा बत्तीस लक्षण वाले पुरुष का ही तो होता है । कथा के अनुसार शिल्पियों को न धम्मपद की सदभावना में विश्वास रहा, न विशु के उपदेश में श्रद्धा रही । वह समझता ही रहा—

मानव का कर्तव्य यही है वह सद्‌वृत्ति न छोड़े ।
तोड़े नहीं स्नेह का बन्धन, जोड़ सके तो जोड़े ।।

विशु की कल्पना से निर्मित कलापूर्ण सूर्यमन्दिर और उसकी साधना शिल्पियों की सांस्कृतिक चेतना को सजग न कर सकी । इस अवसर पर धम्मपद की सांस्कृतिक चेतना अत्यधिक तेजस्विता के साथ प्रकट हुई है—

यश की स्पृहा शमित हो जग में कर्म - कला पूजित हो ।
त्याग तरणि के शुचि प्रकाश में प्रेम-पद्म विकसित हो ।।

इसीलिए मैं चला स्वयं हूँ घोर हलाहल पीने ।
सुमन सभी सुनते हैं कोई कंटक भी तो बीने ।।

कवि को सांस्कृतिक चेतना की सनातनता पर विश्वास है, तभी तो वह कहता है—

किन्तु त्याग की अभी भी नित अरुणोदय बन आती ।
चीर स्वार्थतम जगजीवन पर पुण्य प्रकाश सजाती ।।

विकल त्याग पाता जब जग में स्नेह-सिक्त रस वाणी ।
प्रेम - श्रेय देती मानव को शुचि संस्कृति कल्याणी ।।

× × ×

'नूपुर' खंडकाव्य के कथानक का आधार तमिल साहित्य है । काव्य की नायिका कण्णकी श्रेष्ठ वणिक व्यापारी की पुत्री थी । उसका पति कोवलन पुहार नगर की नृत्यांगना माधवी के रूप जाल में फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठता है । अपनी सती पत्नी कण्णकी का उसने त्याग किया । माधवी ने भी अपना रूपजाल

फैलाकर कोवलन को पथ भ्रष्ट किया । यह प्रसंग दोनों पक्षों में सांस्कृतिक चेतना के ह्रास की कथा है ।

षट् विकार सबको छलते हैं नर हो अथवा नारी ।

× × ×

संयम ज्ञान प्रखर प्रज्ञा भी तूल सदृश जल जाती ।।

वरवधू को अस्तित्व में लाने वाला समाज ही तो है । उसे धन और सम्मान देता है, उसके रूप को खरीदता है । मार्ग जब कंटकाकीर्ण है तब पैर में काँटे चुभेंगे ही । कोवलन को घातक परिणाम भोगना पड़ा, जब माधवी ने उसे सब प्रकार से लूट कर दुत्कार दिया । कोवलन ने जब माधवी को 'विश्वास-घातिनी' 'निर्लज्ज' कहा, तब माधवी ने नर-समाज को ही दोषी ठहराया ।

लाज, लाज तो नर समाज ने छीनी हम से कब की ।

कुत्सित घृणित बनी दिनचर्या तब से ही हम सबकी ।।

वरवधू के द्वारा दुत्कारा गया कोवलन अपनी पत्नी कण्णकी के पास पहुँचता है । उसकी साँस्कृतिक चेतना जाग्रत होती है ।

तुम-सी सती छोड़कर मैंने कितना पाप कमाया ।

मस्तक उठता नहीं सामने चिर कलंक ही पाया ।।

सांस्कृतिक चेतना की प्रतिमूर्ति कण्णकी अपने चरित्र द्वारा भारतीय नारी के गौरव का परिचय देती है । इस प्रकार 'नूपुर' खंडकाव्य में संस्कृत के ह्रास-विकास का मनोवैज्ञानिक निरूपण बड़ी कुशलता से किया गया है, दुवेजी के दो खंडकाव्य 'सौमित्र' और 'चित्रकूट' रामायण से सम्बन्धित है ।

'सौमित्र' में लक्ष्मण के चरित्र को अन्य पात्रों के मुख से कहला कर अच्छा उभारा गया है । 'चित्रकूट' एक पवित्र खंडकाव्म है । ऋषि वशिष्ठ ने श्री रामचन्द्र में संस्कृति की पराकाष्ठा के दर्शन किये हैं

तात ! तुम्हारे चारु चरित्र ने नये क्षितिज हैं खोले ।

× × ×

जन-जन का उद्धारक होगा पावन चरित्र तुम्हारा ।

रामनाम में केन्द्रित होगा संस्कृति सौरभ सारा ।।

कवि ने अपनी कल्पना का सहारा लेकर 'चित्रकूट' में अनेक मार्मिक प्रसंग उपस्थित किये हैं । कैकेयी-राम का सम्वाद, सुमित्रा और लक्ष्मण की बातचीत, चारों बन्धुओं की आपस में चर्चा, सीता का अपनी माँ से मिलन आदि प्रसंग मन को मुग्ध कर लेते हैं ।

उर्मिला पर जब उसकी बहने तरस खाती हैं, तब उर्मिला का यह कथन

सांस्कृतिक चेतना को अक्षुण्य रखता है—

किन्तु उच्च आदर्श हेतु जब दुख है ओढ़ा जाता ।
बाहर का आँसू, भीमा दुख भीतर सुख बन जाता ॥

'पंचप्रभा' में रामायण के दो पात्र हैं — सीता और उर्मिला । महाभारत की द्रोपदी और राधा को भी प्रस्तुत किया गया है । गौतम पत्नी यशोधरा का मार्मिक चित्रण उसमें विद्यमान है ।

'पंचप्रभा' में सीता का अनुताप विशेष मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है । उसका कथन —

धृति के साथ गई मति मेरी

× × ×

आडम्बर ही माना मैंने पूर्वार्जित तप को यश को ॥

पश्चाताप को प्रकट करता है । लेखक की यह कल्पना नितान्त मौलिक है । उर्मिला विरहावेश में अपने सुख की कामना करते सजग हो जाती है । वह स्वयं को पूर्णत: मिटा देना चाहती है ।

रत सेवा में रहें वहाँ वे
उनको मेरी याद न आये ।

पंचप्रभा में, द्रोपदी, राधा और यशोधरा भी इसी भावधारा में बहती हैं । द्रोपदी का मातृत्व जगज्जननी का परिचय देता है, दंड न देकर मुक्त करने को कहती है—

माँ होकर दुख सहा आज जो
वही दु:ख पर को कैसे दूँ ।
अश्वत्थामा की माँ भी माँ
पुत्र शोक उसको कैसे दूँ ।

दुख की चरम सीमा पर द्रोपदी के हृदय में एक ही कामना शेष रही — माँ की ममता को कभी तड़पना न पड़े । क्षमा दया के आश्रम में मानव करुणा की सृष्टि करके सम्पूर्ण जगत को शीतलता दे । रागद्वेष की पूर्ण निवृत्ति ही मानस का संस्कार है ।

राधा ने देखा कि उसके प्रिय कृष्ण की सभी लीलाएँ जग मंगल की भावना से प्रेरित हैं । वह पूर्ण रूप से उनकी सहायक बनती है और सेवा का मार्ग अपनाकर अपने जीवन को धन्य बनाती है ।

यशोधरा की त्याग भावना अद्वितीय है । द्विधामुक्त होकर उसने गौतमबुद्ध के चरणों में पुत्र सहित आत्मदान किया —

मिली भिक्षु को भिक्षा उत्तम, धर्म पताका फहरी ।
करुणा मैत्री स्नेह त्रिवेणी लोल लहर मे लहरी ॥

इस प्रकार विभिन्न संदर्भों के आधार पर इन रचनाओं का अवगाहन निष्कर्षस्वरूप जो उपलब्धि कराता है वह संक्षेप में है— 'मानव की सांस्कृतिक चेतना, महत्व उसकी आवश्यकता और उसका प्रभाव।' उसके अभाव में न केवल एक व्यक्ति, समस्त मानव जाति पर विपत्ति आती है, क्योंकि सर्वप्रथम आध्यात्मिकता से वह वंचित हो जाती है और फिर विपत्तियों की परम्परा रुकती नहीं। सांस्कृतिक जागरण की वास्तविकता मनुष्य के मन वचन, धर्म की एकता में मिलती है। दुबेजी के काव्य का प्रमुख स्वर भी इसी सन्देश को बार-बार दुहराता है। इस स्वर को बुलन्द करके काव्याकाश में प्रसारित करने वाले श्री दुबेजी ने अपनी लेखनी को धन्य बनाया है। ❋ ❋

[अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विश्वविद्यालय, बम्बई]

पं० रामेश्वर दयाल दुबे : उनके खण्डकाव्य

डॉ० सोमनाथ राव

आधुनिक हिन्दी में, खण्डकाव्यों की रचना करके काव्य-धारा को निरन्तर प्रवाहित करने वाले कर्मठ साहित्यकार, श्री रामेश्वरदयाल दुबे एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं। उनके खण्ड-काव्य, असंख्य फुटकर कविताएँ, एकांकी, नाटक, कहानी, जीवनी आदि ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया है। "भारत जननी एक हृदय हो" हिन्दी गीत की रचना से दुबे जी की लोकप्रियता और भी बढ़ गयी है। लगभग सात दशकों की सुदीर्घ साहित्य-यात्रा में लगभग ७० रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने साहित्य के सभी विधाओं में अपनी अद्भुत कल्पना, रचना-सामर्थ्य, तथा युगबोध का परिचय दिया है।

'कोणार्क' कवि का प्रथम खण्ड-काव्य है। इस कृति में पिता-पुत्र कलाकारों की साधना और उत्सर्ग की करुण गाथा का वर्णन है जिसे कवि ने कोणार्क सूर्य मन्दिर के पुरातन प्रस्तर खण्डों से लेकर प्रस्तुत किया है। उत्कल नरेश महराज नरसिंह देव के अनुरोध पर महाशिल्पी विशु अपने नन्हें पुत्र और पत्नी को घर पर ही छोड़कर मन्दिर के निर्माण में जुट जाता है। १२०० शिल्पी १२ वर्ष के अथक प्रयास के फलस्वरूप रथाकृति में सूर्य मन्दिर का निर्माण तो हो जाता है, किन्तु शिखर पर कलश ठहर नहीं पाता। इस संकट-स्थिति में एक युवा शिल्पकार धर्मपद आकर कलश को प्रतिष्ठित कर देता है। अपने श्रेय को एक नवागत युवक को प्राप्त करते देखकर, शिल्पकार उसकी हत्या करने

की ठानते हैं । उससे पूर्व ही धर्मपद, विशु के विश्वासी साथी राजीव को कुछ सँकेत देकर रात के अन्धेरे में समा जाता है । यह दुखद समाचार पाकर महा-शिल्पी विशु उसकी खोज में सदा-सदा के लिए खो जाता है । पुत्र और पिता एक दूसरे के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं । सरल किन्तु प्रांजल शैली में प्रस्तुत किये जाने से पाठकों पर इसका स्वच्छ एवं शुभ प्रभाव पड़ता है ।

"कवि की प्रतिभा, अद्भुत कल्पना और इतिहास, तीनों से 'कोणार्क' का चढ़ाव इतना ओत-प्रोत है कि स्वभावत: इसे बारम्बार पढ़ने-सुनने की इच्छा होती है । कवि ने यह बात सिद्ध कर दी है कि सच्ची असाधारणता, साधारणता के खिलवाड़ में निवास करती है ।"

—माखनलाल चतुर्वेदी

"सौमित्र" दुबेजी का द्वितीय खण्ड-काव्य है । रामायण के प्रमुख पात्रों के द्वारा अप्रत्यक्ष विधि से लक्ष्मण के चरित्र को उभारा गया है । इस कृति में राम, सीता, सुमित्रा तथा दशरथ अपने-अपने दृष्टिकोण से धीर, वीर, विरागी एवं सेवाभावी लक्ष्मण के सम्बन्ध में अपने भावोद्गार प्रकट करते हैं । सौमित्र अनुपस्थित नायक होते हुए भी उपरोक्त चारों पात्रों की संवेदनाओं के आलम्बन बने रहते हैं । भिन्न-भिन्न पात्रों के भिन्न-भिन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं की भावाभिव्यंजना के साथ-साथ लक्ष्मण के मूल संवादों को भी उद्धृत करते जाने से काव्य में सजीवता बनी रही है । विशेषकर सीता की मन:स्थिति को पूर्णतया प्रकट करने का सुअवसर कवि को प्राप्त हुआ है । बड़े सहज और मार्मिक ढंग से लेखक ने सीता के अन्तर्मन की बात इस काव्य में प्रकट की है ।

"लक्ष्मण को केन्द्र बनाकर इस छोटे से काव्य-फलक पर सौमित्र के अद्भुत ओजस्वी चरित्र के प्राय: सभी आयामों को सशक्त अभिव्यक्ति में इस खंड काव्य को महत्वपूर्ण बना दिया है । भाषा की सरलता, भावों की स्वच्छता तथा निश्चल अकृत्रिमता काव्य में चार चाँद लगा देती है ।

—सुमित्रानन्दन पन्त

कवि का तृतीय खण्ड-काव्य "नूपुर" है । सात सर्गों में रचित इस काव्य [illegible] कथा-नायिका तमिलनाडु की सती कण्णकी है । परम्परागत भारतीय [illegible] रतीय आदर्शों के प्रति निष्ठावान् कवि श्री दुबेजी ने "नूपुर" [illegible] आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया है । कण्णकी के द्वारा [illegible] ट करने का सफल प्रयास किया है ।

[illegible] राल कवि को यत्नपूर्वक करनी पड़ती है । श्री दुबेजी [illegible] अच्छा सम्हाला है । श्री दुबेजी की भाषा सरल

और सरस होती है, उनके छन्द निर्दोष ओर भाव मनोमुग्धकारी होते हैं। ये सभी काव्योचित गुण 'नूपुर' में दिव्यमान है।"

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

इसी कथानक को लेकर श्री अमृतलाल नागर जी ने 'सुहाग के नूपुर" एक उपन्यास लिखा है, जो चर्चित हुआ था। स्त्री को केवल भोग्य मानने वालों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने-हेतु श्री दुबेजी के इस खंडकाव्य में बड़ी सतर्कता से वधू-धर्म का निर्वाह हुआ है। सती-धर्म की अवज्ञा, उपेक्षा या अवहेलना के दुष्परिणामों का उद्घोष किया गया है। "नूपुर" खण्डकाव्य का वास्तविक महत्व उसके सन्देश में है। मूल्यों के विघटन वाले आज के युग में कवि ने परम्परागत भारतीय संस्कृति की गरिमा को स्पष्ट किया है।

"चित्रकूट" चतुर्थ खण्डकाव्य है। राम-भरत मिलन की पुण्यस्थली, चित्रमय भूमि "चित्रकूट" को केन्द्र बनाकर, रामायण की एक अनुपम घटना को कवि ने अपनी कथावस्तु बनाया है। वन गमन प्रसंग में श्रीराम का सीता और लक्ष्मण सहित चित्रकूट पहुँचना— ऋषि, सती अनुसूया, अन्य मुनि-मण्डली तथा कोल किरातों के द्वारा आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य, मन्दाकिनी नदी के तट पर पर्णकुटी बनाकर सीता, राम, लक्ष्मण का निवास, परिवार सहित भरत का आगमन, श्रीराम के राज्याभिषक की चर्चा, चौदह वर्ष की अवधि तक राज्य भार भरत को ही सँभालने का अनुरोध, भरत राम की पादुकाओं को लेकर अयोध्या-लौटने की घटना का वर्णन 'चित्रकूट' नाम के अनुरूप ही हुआ है। पाँच सर्गों में विभक्त छोटी-सी कथा को कवि ने अत्यन्त मनोयोग एवं कुशलता से सँवारकर सुन्दर बना दिया है। प्रकृति के सतत उपासक कवि को चित्रकूट के प्रकृति वर्णन का सुअवसर मिला है। गुप्तजी की परम्परा को बनाये रखते हुए उसे युगीण परिवेश प्रदान किया गया है। नगर और वन्य जीवन की चर्चा, राजमहल और पर्णकुटी, श्रम-साधना, ऊँच-नीच के भेदभाव का निर्मूलन, कोल किरातों की आत्मीयता, अयोध्या वासियों के शुद्ध जीवन, प्रजातंत्र की चर्चा का कवि ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से उल्लेख किया है।

महात्मा गान्धी तथा बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी के सम्पर्क में रहने से उनका उनके कवि पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। सरल और सुबोध शैली में खण्डकाव्य की प्रस्तुति, पग-पग पर कवि की महत्ता प्रकट करती है। श्रम-साधना, मानवतावाद, ऊँच-नीच भाव का निमूलन आदि गान्धीवादी विचारधारा के द्योतक हैं। अपनी कृतियों के द्वारा कवि रामेश्वरदयाल दुबे ने ऐतिहासिक पात्रों को आधुनिक परिवेश में लाकर खड़ा किया है। अपनी मौलिक उद्भावनाओं के साथ-साथ न

केवल युगीन समस्याओं को प्रस्तुत किया, अपितु उनका परिष्कार भी किया है। कवि का सफल प्रयास स्तुत्य है ।

श्री दुबेजी का पाँचवा खंडकाव्य 'गोकुल' भी प्रकाशित हो चुका है। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर कंस बध तक की कथा को समेटा गया है। भगवान कृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र अद्भुत है और उनका बचपन तो चमत्कारपूर्ण ही है। परन्तु कुशल कवि ने इस खंडकाव्य में उन चमत्कारों को उसी रूप में स्वीकार कर श्रद्धा भावना की रक्षा करते हुए उन्हें आज की दृष्टि से बोधगम्य और विश्वशनीय बनाया है। उसी प्रकार कृषि उन्नति का काम भैया हलधर बलदऊ को, नारी जागरण का कार्य राधा को सौंप कर तथा गो संवर्धन मा काम स्वयं हाथ मे लेकर ब्रज की सर्वांगीग उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है ।

कर्नाटक के प्रसिद्ध कलापूर्ण मन्दिर 'बेलूर' पर आधारित नवीन खंडकाव्य भी प्रकाश में आनेवाला है। आशा है वह खंडकव्य भी कवि की प्रतिभा को और उजागर करेगा । ✻✻

[वरिष्ठ प्राध्यापक, हैदराबाद]

कोणार्क

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

प्रस्तुत कृति एक खंडकाव्य है। कला-केन्द्र कोणार्क में ऐसा कुछ आकर्षण है कि ढहे रूप में भी उसे देखते ही प्रातिभ विभूतियाँ स्पदिन्त हो उठती हैं। प्रस्तुत कृति के प्रणेता श्री दुबेजी संवेदनशील और सहृदय सर्जक हैं। कोणार्क-दर्शन से भला वे कब अप्रभावित रह सकते थे ? दर्शन— समकाल समद्भूत सहानुभूति के सहारे कल्पना ने मानो सारा अतीत उड़ेल कर रख दिया। कवि एक साथ सौन्दर्य और करुणा की भावना में आपादमस्त भीग उठा। भाव-लहरियाँ अनायास समुच्छलित हो उठीं— 'कोणार्क, काव्य आकार पा गया ।

कोणार्क की कथावस्तु संक्षिप्त है। उत्कल नरेश नृपति नरसिंहदेव सूर्य-ब्रत के फलवस्वरूप अपने को जन्म देने वाली दिवंगत माँ की स्मृति में समुद्र से निकलते हुए रथारूढ़ सूर्य-मन्दिर-निर्माण का संकल्प लेते हैं । महामंत्री आदिष्ट होकर महाशिल्पी विशु को आमन्त्रित करता है। मन्दिर जिसके प्रत्येक प्रस्तर-खंड कला की छेनी से जीवन्त हो उठी हैं— प्राय: तैयार हो जाता है। कहीं कोई त्रुटि रह जाने से कलश अपनी जगह ठहर नहीं पाता। तदर्थ मुनादी कराई

जाती है। महाशिल्पी विशु का पुत्र धर्मपद वियोगतुरा माँ से विदा लेकर समस्या-स्थान पर जाता है। कलश प्रतिष्ठित हो जाता है। सहज ही लुटती कीर्ति को देखकर शिल्पी ईर्ष्या की आग प्रज्वलित करते हैं। उसकी लपटों से निकलकर भी माँ एवं पिता की गोद सदा-सदा के लिए सूनी कर धर्मपद कभी समाप्त न होने वाले अन्धकार में विलीन हो जाता है। पिता रहस्य ज्ञाता होने पर उसी नियति निर्दिष्ट पथ का अनुगामी बनता है। पत्नी और माँ चन्द्रलेखा न पत्नी रह जाती है और न माँ, रह जाती है केवल आँसुओं की कभी न चुकने वाली राशि।

प्रस्तुत कृति द्विवेदी युगीन प्रबन्धों के स्वर में बोलती है। वही धारा-वाहिक वर्णन, भाव व्यंजना और उदात्त चरित्रों की उदात्त विचारावली समस्त कृति में लक्ष्य करने की चीजें हैं। वर्णन स्वल्पकाय भी है और अपेक्षाकृति वृहत्काय भी। स्वल्पकाय वर्णनों में प्रात: सायं के प्राकृतिक खंडदृश्य और बृहत्काय वर्णन के उदाहरणस्वरूप मन्दिर वर्णन को लिया जा सकता है। वर्णन इतने रम कर किये गये हैं कि वर्ण्य का सौन्दर्य और तज्जन्य भावराशि भावक के कल्पना हृदय पटल पर शीघ्र ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं। सौन्दर्य एवं तज्जन्य आह्लाद की भावना से रस ग्रहण करती हुई कल्पना ने वाणी को जो काव्योचित भंगिमा दे रखी है, पाठक उसे पग-पग पर लक्षित कर सकता है। एक उदाहरण लें—

प्रभापूर्ण प्राची का दमका, शुचि सिन्दूरी कोना।
लगा बरसने पात-पात पर, सरस सलोना सोना॥

इसी प्रकार मन्दिर के वर्णन की बारीकियाँ भावक के समक्ष एक नितान्त आकर्षक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करती है।

भाव-व्यंजना तो इस करुण काव्य का मूल लक्ष्य ही है। इस काव्य का अंगीरस ही है— करुण, जिसका आश्रय है चन्द्रलेखा और आलम्बन हैं पति तथा पुत्र। वैभव के चाकचिक्य से अंधी आँखे गरीब कुटियों की भावनाओं को कहाँ देख सकती है? पति और पुत्र का महाशिल्पी होना पत्नी और माँ चन्द्रलेखा के लिए अभिशाप बन जाता है। इसी अभिशाप और करुणा की कथा को आज भी मन्दिर के अवशेष और सागर के हाहाकार सभी मिलकर दुहरा रहे हैं।

इसका हाहाकार प्रतिध्वनित बना सिन्धु गर्जन में।
उसके ही आंसू बिखरे हैं पात-पात कण-कण में॥

थोड़ी देर तक जो पिता पुत्र विषयक करुणा का आश्रय बनता है, शीघ्र ही वह पत्नी की करुणा का आलम्बन बन जाता है। और सब मिलकर दर्शक मन्दिर एवं समुद्र की शाश्वत हूक बन जाते हैं। कवि की लेखनी ने इस हूक को मूर्त कर देने में अपने हृदय की उन्मुक्त उदारता प्रदान की है।

कितना विवश, धैर्य दे अपने सपने सुला न पाता ।
भीतर तपन तीव्रतर, बाहर अंचल भीगा जाता ।।
हृदय हूक उठ निश्वासों में खंड-खंड में बिखरी ।
जितनी धोई गई अश्रु से, विरह वेदना निखरी ।।

वास्तव मे जीवन और जगत का मूल स्वर यही करुणा, यही हूक है — यही मानवता की माँग का सिन्दूर है — उसके सिर की रोली है । जिस मन्दिर का निर्माण दिवंगता माँ की स्मृति में हुआ, उसका उपसंहार निर्माता की माँ को दिवंगत करने में हुआ । नियति भी वैभव और गरीबी से क्या खेलती है !

उदात्त चरित्रों में महाशिल्पी विशु और पुत्र धर्मपद विशेष उल्लेखनीय हैं । वास्तव में कलाकार, कलाकार हो ही नहीं सकता, जब तक उच्चतम विचार जीवन के माध्यम से कला में प्रस्फुटित न हो । कला का सम्बन्ध विचारों से सीधे नहीं है, जीवन के माध्यम से है । सीधा सम्बन्ध तो शास्त्र और विज्ञान का होता है विचारों से । जिस समय छोटे-मोटे शिल्पी अपने छिने जाते हुए यश के कारण ईर्ष्याग्नि में स्वयं दग्ध होते रहते हैं और धर्मपद को दग्ध करना चाहते हैं, उस समय आन्तरिक रहस्य न जानता हुआ भी विशु धर्मपद की विदग्धता और प्रातिभ क्षमता पर इतना मुग्ध है, कि उसे वक्ष से लगा लेता है और रोम-रोम से तृप्ति अनुभव करता है । उसे अपनी यशोराशि की पतन की चिन्ता ही नहीं। बच्चे की यशोराशि का उत्थान ज्यादा पसन्द है । बड़े बाप का बड़ा बेटा धर्मपद, क्या कहना !

किसी की कीर्ति न लुटे अतः वह स्वयं को लुटा देता है । अन्ततः दोनों ही बाप-बेटे मृत्यु का वरण कर मानवता के स्मारक बन जाते हैं । इस स्मारक की नींव में चन्द्रलेखा की करुणा आज भी पत्थरों को पिघलाती और वज्रों की छाती दरका देती है । इन सबका स्मारक 'कोणार्क' बन गया है ।

भाषा की अपेक्षा, काव्य भाषा का लक्ष्य, केवल भावनाओं और विचारों का प्रकाशन मात्र नहीं होता, बल्कि सुन्दर ढंग से प्रकाशन होता है । कथन का सुन्दर या आकर्षक ढंग ही काव्य में अलंकरण कहा जाता है । इसलिए जहाँ भारतीय आचार्यों ने "वर्णनमा काव्यमुच्यते" कहा है, वहाँ पश्चिम के चिन्तकों ने घोषणा की है ।

"Art has no aim Except its Expression, That Its Aim is Complete When Expression is Complete." कला का कोई लक्ष्य नहीं होता, सिवा इसके कि वह अभिव्यक्त हो जाय । इस प्रकार कला का लक्ष्य तभी पूरा हो जाता है, जब अभिव्यक्ति पूरी हो जाती है । यह

अभिव्यक्ति भी यदि भावावेश में सहज बन जाय, तब प्रतिमान बन जाती है। प्रस्तुत कृति में ऐसे भी स्थल वहाँ मिलते हैं, जहाँ सचमुच कवि का भावजगत पात्र का भावजगत बन जाता है। अधिक तो नहीं, एक स्थल वह लें जहाँ धर्मपद महाप्रस्थान करता है। लगता है कि भीतर की उफान ज्यों की त्यों ऊपर आ गई है। एक ओर आदर्श की प्रकाशमयी किरणें फैल रही हैं और दूसरी ओर विषाद का घना चादर सब कुछ ढाँक रहा है।

भाषा प्रसव, प्रवाहपूर्ण एवं यथासम्भव परिष्कृत है। उसे अपना जो कुछ कहना है, उसमें समर्थ और शय है।

कवि कितना भी अतीत में चला गया हो, उसका वर्तमान कहीं न कहीं अवश्य बोलता है। निम्नलिखित पंक्तियों में वही बोल रहा है —

खाद्यों का असह्य महँगापन भले न जाये भोगा।
मातृ-स्तन से मिलने वाला दूध न मँहगा होगा॥

× × ×

मेरा तो विश्वास मनुज पर से उठता जाता हैं।
बढ़ता है नैराश्य, चतुर्दिक, और तिमिर छाता है॥

कुछ भी हो पुरातन संस्कार माननीय आदर्श का गान कवि द्वारा उसे रिझाकर करा ही लेते हैं। इस स्वस्थ कृति के लिए बधाई।

"साकेतकार की 'उर्मिला' और 'यशोधरा' का सा विरह के आँसुओं में डूबा, करुण रस की सीमा को स्पर्श करने वाला रूप लगभग अर्ध शताब्दी के बाद पुनः हिन्दी पाठकों को इस कृति 'कोणार्क' में उपलब्ध हुआ। श्री दुवेजी की यह कृति इतनी रोचक, स्पष्ट एवं सहज बोधगम्य है कि यह साधारण से लेकर विशिष्ट पाठक तक के लिए समान रूप से प्रभोत्पादकसिद्ध होगी।"

— डॉ० उदयनारायण तिवारी

✻ ✻

[विक्रम बिश्वविद्यालय, उज्जैन]

कठिन कार्य में सफलता

महादेवी वर्मा

आमकथा के मार्मिक स्थलों में चित्रकूट का मिलन-पर्व अन्यतम है, क्योंकि इसमें पात्रों के माध्यम से जितने अधिक आदर्शों का, कर्तव्यों का, जीवन-मूल्यों

कितना विवश, धैर्य दे अपने सपने सुला न पाता ।
भीतर तपन तीव्रतर, बाहर अंचल भीगा जाता ।।
हृदय हूक उठ निश्वासों में खंड-खंड में बिखरी ।
जितनी धोई गई अश्रु से, विरह वेदना निखरी ।।

वास्तव में जीवन और जगत का मूल स्वर यही करुणा, यही हूक है — यही मानवता की माँग का सिन्दूर है — उसके सिर की रोली है । जिस मन्दिर का निर्माण दिवंगता माँ की स्मृति में हुआ, उसका उपसंहार निर्माता की माँ को दिवंगत करने में हुआ । नियति भी वैभव और गरीबी से क्या खेलती है !

उदात्त चरित्रों में महाशिल्पी विशु और पुत्र धर्मपद विशेष उल्लेखनीय हैं । वास्तव में कलाकार, कलाकार हो ही नहीं सकता, जब तक उच्चतम विचार जीवन के माध्यम से कला में प्रस्फुटित न हों । कला का सम्बन्ध विचारों से सीधे नहीं है, जीवन के माध्यम से है । सीधा सम्बन्ध तो शास्त्र और विज्ञान का होता है विचारों से । जिस समय छोटे-मोटे शिल्पी अपने छिने जाते हुए यश के कारण ईर्ष्याग्नि में स्वयं दग्ध होते रहते हैं और धर्मपद को दग्ध करना चाहते हैं, उस समय आन्तरिक रहस्य न जानता हुआ भी विशु धर्मपद की विदग्धता और प्रातिभ क्षमता पर इतना मुग्ध है, कि उसे वक्ष में लगा लेता है और रोम-रोम से तृप्ति अनुभव करता है । उसे अपनी यशोराशि की पतन की चिन्ता ही नहीं । बच्चे की यशोराशि का उत्थान ज्यादा पसन्द है । बड़े बाप का बड़ा बेटा धर्मपद, क्या कहना !

किसी की कीर्ति न लुटे अत: वह स्वयं को लुटा देता है । अन्तत: दोनों ही बाप-बेटे मृत्यु का वरण कर मानवता के स्मारक बन जाते हैं । इस स्मारक की नींव में चन्द्रलेखा की करुणा आज भी पत्थरों को पिघलाती और वज्रों की छाती दरका देती है । इन सबका स्मारक 'कोणार्क' बन गया है ।

भाषा की अपेक्षा, काव्य भाषा का लक्ष्य, केवल भावनाओं और विचारों का प्रकाशन मात्र नहीं होता, बल्कि सुन्दर ढंग से प्रकाशन होता है । कथन का सुन्दर या आकर्षक ढंग ही काव्य में अलंकरण कहा जाता है । इसलिए जहाँ भारतीय आचार्यों ने "वर्णनमा काव्यमुच्यते" कहा है, वहाँ पश्चिम के चिन्तकों ने घोषणा की है ।

"Art has no aim Except its Expression, That Its Aim is Complete When Expression is Complete." कला का कोई लक्ष्य नहीं होता, सिवा इसके कि वह अभिव्यक्त हो जाय । इस प्रकार कला का लक्ष्य तभी पूरा हो जाता है, जब अभिव्यक्ति पूरी हो जाती है । यह

अभिव्यक्ति भी यदि भावावेश में सहज बन जाय, तब प्रतिमान बन जाती है। प्रस्तुत कृति में ऐसे भी स्थल वहाँ मिलते हैं, जहाँ सचमुच कवि का भावजगत पात्र का भावजगत बन जाता है। अधिक तो नहीं, एक स्थल वह लें जहाँ धर्म-पद महाप्रस्थान करता है। लगता है कि भीतर की उफान ज्यों की त्यों ऊपर आ गई है। एक ओर आदर्श की प्रकाशमयी किरणें फैल रही हैं और दूसरी ओर विषाद का घना चादर सब कुछ ढाँक रहा है।

भाषा प्रसव, प्रवाहपूर्ण एवं यथासम्भव परिष्कृत है। उसे अपना जो कुछ कहना है, उसमें समर्थ और शय है।

कवि कितना भी अतीत में चला गया हो, उसका वर्तमान कहीं न कहीं अवश्य बोलता है। निम्नलिखित पंक्तियों में वही बोल रहा है —

खाद्यों का असह्य महँगापन भले न जाये भोगा।
मातृ-स्तन से मिलने वाला दूध न मँहगा होगा॥

× × ×

मेरा तो विश्वास मनुज पर से उठता जाता हैं।
बढ़ता है नैराश्य, चतुर्दिक, और तिमिर छाता है॥

कुछ भी हो पुरातन संस्कार माननीय आदर्श का गान कवि द्वारा उसे रिझा-कर करा ही लेते हैं। इस स्वस्थ कृति के लिए बधाई।

"साकेतकार की 'उर्मिला' और 'यशोधरा' का सा विरह के आँसुओं में डूबा, करुण रस की सीमा को स्पर्श करने वाला रूप लगभग अर्ध शताब्दी के बाद पुनः हिन्दी पाठकों को इस कृति 'कोणार्क' में उपलब्ध हुआ। श्री दुबेजी की यह कृति इतनी रोचक, स्पष्ट एवं सहज बोधगम्य है कि यह साधारण से लेकर विशिष्ट पाठक तक के लिए समान रूप से प्रभोत्पादकसिद्ध होगी।"

— डॉ० उदयनारायण तिवारी

[विक्रम बिश्वविद्यालय, उज्जैन]

कठिन कार्य में सफलता

महादेवी वर्मा

आमकथा के मार्मिक स्थलों में चित्रकूट का मिलन-पर्व अन्यतम है, क्योंकि इसमें पात्रों के माध्यम से जितने अधिक आदर्शों का, कर्तव्यों का, जीवन-मूल्यों

का तथा नीतियों का संगम अनायास होता है, उतनी अधिक विविधता में वे अन्यत्र नहीं मिलते । गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, पति-पत्नी, माता-पुत्र, पिता-पुत्री भाई-भाई आदि-आदि जितने सामाजिक सम्बन्ध संभव हैं, वे सब अपने उदात्त रूपों में 'चित्रकूट' की सभा में प्रत्यक्ष होते हैं; किन्तु आश्चर्य यह है कि वे मूलकथा को बोझिल नहीं बनाते, वरन् उसे मर्मस्पर्शी बनाकर विराट् जीवन-फलक देते हैं । उस मिलन-पर्व में भरत के जीवन मूल्यों को तत्वत: समझ लेने पर बिस्मय के साथ जो आनन्दानुभूति होती है, वही रामकथा की देश - कालातीत उपलब्धि है ।

श्री रामेश्वर दयाल दुबे ने राम कथा को अपने काव्य के मूल-भाव के रूप में ग्रहण कर उस पर बहुत कुछ लिखा है । उनके लिए रामकथा-माला की इस सुमेरु मणि को छोड़ देना अचित्य था । अत: उन्होंने सम्पूर्ण मनोयोग्य से 'चित्रकूट' खण्डकाव्य की रचना की है । कथा के प्रत्येक पात्र को, उसके पारम्परिक रूप को अक्षुण्य रखते हुए उन्होंने बर्तमान युग-सन्दर्भ में उपस्थिति किया है । इस कठिन कार्य में उन्हें जो सफलता मिली है, बह प्रत्येक सुधी पाठक को प्रभावित करेगी।

कथा के कवि की रचना-प्रक्रिया, प्रगीत पुस्तक के कवि के कार्य से भिन्न ही नहीं, कठिन भी होती है । मुक्तक के कवि को अपनी अनुभूति अथवा परिस्थिति या परिवेश विशेष ही व्यक्त करना होता है । तीव्र अनुभूति के क्षण में यह कवि-कर्म अनायास, अत: सहज हो जाता है । इसके विपरीत कथा के कवि को अनेक पात्रों ने जीकर, उनकी अनुभूतियों और क्रियाओं को उनके युग तथा अपने युग की संगति में बैठाकर अपनी रचना में व्यक्त करना होता है । अत: यह सृजन अधिक मर्म-विदग्धता की भी अपेक्षा रखता है तथा आत्मबोध और युगबोध की भी ।

प्राकृतिक परिबेश में 'चित्रकूट' के कवि ने अपने पात्रों के चरित्र को अनेक कथन - उपकथन द्वारा इस प्रकार है कि वे हमारे निकट विशिष्ट न होकर सामान्य और आत्मीय बन जाते हैं ।

कबि ने अपनी कल्पना का भी कथाक्रम में यत्र - तत्र प्रयोग किया है, किन्तु वह उपयोग चमत्कृत करने वाला न होकर, पात्र की मानसिकता तथा उसके अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करने वाला है । राम और कैकेयी का, सुमित्रा और लक्ष्मण का सम्वाद भी उनके मूल भावों की ही व्याख्या करता है । उर्मिला के चरित्र को वह मार्मिक चित्रण आज तक नहीं मिला, जिसकी वह सदा से पात्री और प्रतीक्षारत रही है । आदि कबि ने उसे जिस कुहेलिका में वन्दिनी बना दिया था आज तक वह उससे बाहर नहीं आ सकी ।

कबि के शब्दों में चित्रकूट का जो महत्व है, देखिए —

धन्य हो गयी धरा प्रीति का संगम जहाँ हुआ था ।
जहाँ धर्म ने छोर कीर्ति का अति उत्तुंग छुआ था ।।
चित्रकूट, यह धर्म-धरा है तीर्थ - भूमि जन - जन की ।
कर्तव्यों के आड़े आई जहाँ न प्रीति स्वजन की ।।

चित्रकूट' के पाठकों के मानस में भी प्रतिध्वनित हो सके, यही कामना वाभाविक है ।

✻✻

प्रयाग, फाल्गुन पूर्णिमा, सं० वि० २०३५]

पंच प्रभा : मूल्य चेतना और प्रगतिशीलता का काव्य

डॉ० सुरेशचन्द्र त्रिवेदी

'हरि अनंत हरि-कथा अनंता' की भाँति 'कवि अनंत कवि-कथा अनंता' भी एक अनुभूत सत्य है । कवि सर्वाधिक संवेदनशील व्यक्ति होता है । उसकी संवेदना मूलतः तो मानव-मात्र की नाना प्रकार की संवेदनाओं का ही प्रतिनिधित्व करती है । इन संवेदनाओं का न तो रूप निश्चित है, न संख्या ही । मनुष्य के हृदय में उठने-गिरने वाले भावों का सही-सही स्वरूप निर्धारण न तो मनोविज्ञान ही कर पाता है न काव्य शास्त्र ही । पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'भ्रमर गीत सार' की भूमिका में गोपियों के विरह की व्याख्या करते हुए कुछ इस आशय का कथन प्रस्तुत किया था कि गोपियों के विरही हृदय की न जाने कितनी अवस्थाएँ हैं, जिनका शास्त्र आख्यान नहीं कर पाया, न मनोविज्ञान नाम दे पाया । जिस प्रकार संवेदनाएँ असंख्य एवं नाना रूप हैं, उसी प्रकार उनकी अभिव्यक्ति के भी असंख्य रूप हैं । तभी तो आचार्य आनंदवर्धन ने कहा था कि 'अनन्ता हि वाग्विकल्पः तच्चेव अलंकार प्रकाशः' । वाग्विकल्प अनेक प्रकार के हैं, अनंत हैं । बाल्मीकि की अभिव्यक्ति उनकी अपनी है, कालिदास की अपनी निराली अभिव्यक्ति है, तुलसी, सूर, जायसी, कबीर, प्रसाद, मैथिलीशरण सब की अपनी-अपनी अभिव्यक्ति है ।

यह सत्य हैं कि हर कवि अपने पूर्ववर्ती कवि या परंपरा से कुछ-न-कुछ प्रभाव ग्रहण करता है, परन्तु वह अपनी निजी मौलिक सत्ता भी रखता है । इसलिए किसी कवि की या उसकी किसी कृति की समीक्षा करते समय उस प्रभाव मात्रका निरूपण कर देना समीक्षक की इति कर्तव्यता नहीं है । कि परंपरा से प्राप्त किसी विषय का ही वर्णन प्रस्तुत कर दे, उसमें उसका कुछ नवोन्मेष होना चाहिए ।

इसलिए जब कोई मैथिलीशरण को, तुलसी की परम्परा में रख देता है, या डा० रामेश्वरदयाल दुबे को मैथिलीशरण गुप्त की परम्परा से जोड़ देता है, या उनसे प्रभावित मात्र कहकर मौन रह जाता है तो मेरी समझ में वह अपना समीक्षक धर्म ठीक से नहीं निभाता है। कहने में न तो मैथिलीशरण गुप्त की महिमा बढ़ती है न दुबेजी की। अभी कुछ दिन पूर्व मेरे एक सहकर्मी हिन्दी प्राध्यापक ने कहा कि 'दुबेजी गुप्त-गोत्र के कवि हैं।' किन्तु क्षण भर के लिए मेरी चेतना सजग हो उठी। उनसे प्रश्न किया कि क्या 'दुबेजी' इससे भिन्न कुछ भी नहीं ? यदि है, तो वह क्या है ?

यह ठीक है कि दुबेजी ने अपनी काव्य-कृतियों के विषय लगभग वे ही चुने जिन पर पहले मैथिलीशरण गुप्त लिख चुके हैं, परन्तु उनकी काव्य-कृतियों का मनोयोग पूर्वक पठन करने पर किसी भी सहृदय के लिए यह समझना कठिन नहीं होगा कि विषय के निरूपण में दुबेजी की मौलिकता बहुत सुस्पष्ट है। यही नहीं, इन विषयों में भी दुबेजी के प्रगतिशील मानवतावादी विचार अनायास अभिव्यक्त हो सके हैं। भारतीय संस्कृति की अच्छी परम्पराओं की महिमा का गौरव गान तो वे करते ही हैं, साथ ही मनुष्य के विकास के लिए साधक, उपादेय विचारों की बड़ी संवेदनापूर्ण रोचक और प्रभाविक अभिव्यक्ति भी वे करते हैं।

इस दृष्टि से उनकी नव प्रकाशित कृति 'पंच प्रभा' विशेष ध्यातव्य है। '[illegible]' के अन्तर्गत [illegible] डा० रामकुमार वर्मा जी ने बहुत कम शब्द में अधिक महत्वपूर्ण बातें कह डाली हैं। "काव्य का क्षेत्र अनंत है रामायण, महाभारत के पात्रों की सम्भावना भी अनन्तरूपा है। दुबेजी की काव्य-दृष्टि पात्रों की अनन्त सम्भावनाओं तक पहुँची है और उन्हें सरस-सुबोध भाषा में अभिव्यक्त करती है। परम्परा का निर्वाह करते हुए भी उनमें प्रयोगधर्मिता है। उन का काव्य मनोविज्ञान और युग के मनोभावों को जोड़ता है। ग्रंथ में वर्णित पात्रों की जीवन गाथा बड़ी मर्मस्पर्शी है और उसके चित्र बड़े प्रभावशाली हैं। उन्होंने इस प्रकार भी अद्भुत रीति से कर दिखाया है। भारतीय संस्कृति के विकास में नारियों के योगदान का अतीव महत्व है और इस महत्व का परिचय परिवर्ती पीढ़ियों को भी होना चाहिए" आदि-आदि। डा० वर्मा जी ने गागर में सागर भर दिया है। परन्तु इस गागर से कुछ छलक कर बाहर भी बह जाता है, उसे समेटने अंजुरियों में भरने की मुझे स्पृहा है।

इस काव्य खंड में पाँच महिमामयी नारियों की हृदय व्यथा अभिव्यक्त है-सीता, उर्मिला, राधा, द्रौपदी और यशोधरा। मैं इसे 'पाँच कथा काव्यों का संग्रह' कहूँगा अथवा पाँच 'खण्ड काव्यों' का संग्रह कहूँगा। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं— महाकाव्य पूरी कथा वर्णन से सम्बद्ध है।, खंड-काव्य एक अंश से। यहाँ पाँच

प्रसंग हैं, अत: यहाँ एक कृति में पाँच खण्डकाव्य हैं ।

'सीता' शीर्षक, अंश, स्वागतोक्ति एकालाप, स्मृति पर आधृत और संबोधन शैली से संसक्त होने के कारण अपूर्व हो सका है । आत्मग्लानि की ऐसी काव्यात्मक अभिव्यक्ति आसानी से नहीं उपलब्ध होती । अपनी भूल पर पछताती हुई सीता के मुख से कतिपय सुन्दर पंक्तियाँ निकल पड़ती है, जिनका काव्यीय संवेदन बड़ा आकर्षक हैं ।

(१) "पंख लगाकर उड़ने वाले जड़े जमाकर बैठे दिन"—में सजीवा-रोपण (मानवीकरण इसलिए नही कि उड़ना मानव का कर्म नहीं है) का प्रयोग मनमोहक है ।

(२) "इस अशोक के नीचे भी है दूर हुआ कब मेरा शोक ?"–(अशोक' शब्द का साभिप्राय प्रयोग और उसके कंट्रास्ट में 'शोक' शब्द की स्थिति । परिकर अलंकार की है पर भावस्थिति को अधिक गहराती है ।

(३) "विधि चाहा ही हुआ, मनुज की स्वप्न सृष्टि सब बिखर गई ।" में भाग्य की सर्वोपरिता और उसके सामने मनुष्य की विवशता की सटीक अभिव्यक्ति है।

(४) "अरे स्वर्ण ने छला न किसको मृग-सा ही चंचल बनकर ?'—सुवर्ण या धन के पीछे मनुष्य की यह जो अंधी दौड़ है, उसको बहुत कम शब्दों में सटीकता से प्रस्तुत किया है ।

(५) "आग्रह तक तो ठीक, दूराग्रह मात्र दु:ख का दाता है" ।—आज के युग-जीवन में दु:ख का एक मात्र कारण दुराग्रह नहीं है क्या ?

(६) "जो विधि से है प्राप्त, उसी से नाव उसे अपनी खेना" । —ईश्वर या विधि के दिये हुए दान में संतोष करना ही हमारे आज के सांस्कृतिक संकट का उपाय है ।

(७) ", पुरुष रखे विश्वास, त्याग ही एक मात्र नारी जीवन" ।— नारी के त्याग का महत्व पुरुष कब समझेगा ?

'उर्मिला' में केवल आत्मनिवेदन शैली अपनाई गई है, जो समीचीन है । उर्मिला के लिए अनुताप करने का न तो कोई अवसर है न कारण ही । उर्मिला में भारी संयम है । 'विदेह' की पुत्री के योग्य तितिक्षा और संयम का परिचय वह देती है । दुबेजी गत और अनागत को छोड़ वर्तमान पर ही बल देते हैं, अत: उर्मिला कहती है ।

"मेरा मत मानव जीवन का वर्तमान ही मधुर गीत है" बन में लक्ष्मण जिन कष्टों और असुविधाओं को भोगते हैं, महल में उर्मिला भी वही भोगतीं है । विरहिणी के लिए महल में भी सारे दु:ख मौजूद हैं जो विपिन में लक्ष्मण को प्राप्त हैं । एक स्थान पर तो तन्मयता की अद्भुत व्यंजना हो पायी है ।

"आती तो तब हो उनकी जब याद कभी जाती हो मन से" ।
जब मन से उनकी याद जाती ही नहीं, तो आएगी कैसे ?

"उठूँ बुलाता मुझे चलूँ उस
वर्तमान को अभी सम्हालूँ ।"

इसी वर्तमान को सम्हालना तो कवि का केन्द्रीय कर्म है ।

× × ×

तीसरी कथा है राधा की । दुबेजी की राधा सूर की राधा नहीं है । वह कर्तव्यामुख सेविका है । श्रीकृष्ण के सभी प्रगतिशील कदमों से कदम मिलाकर साथ देने वाली । उसके सामने कृषि और गोपालन का प्रमुख प्रश्न है । हमारी आधारभूत जरूरते हैं — अन्न और दूध-दधि उसका वितरण न होकर क्रय विक्रय हो और उसके उत्पादक ही उससे वंचित हों, इस बात से न कृष्ण सहमत हो सकते हैं, न राधा । दुबेजी की राधा का चित्रण हमें गांधी-युग की स्वयं सेविकाओं का स्मरण दिला देता है । प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व में राधा की चेतना में कर्तव्य सर्वोपरि है । राधा और कृष्ण ने एक से एक बढ़कर क्रान्तिकारी कदम उठाये और ब्रज के जनजीवन में नई चेतना उत्पन्न कर दी है । 'वसुधा ही हमारा परिवार है — इन भावनाओं को दुबेजी की राधा अच्छी ...ह प्रतिपादित करती है ।

गृह - कुटुम्ब की जाति - देश की ये सीमित सीमाएँ ।
...वी का जो पुत्र उसे ये भला बाँध क्यों पाएँ ।।

दुबेजी ... ...ध स्थान पर उपमा भी लोक जीवन से ग्रहण कर प्रस्तुत की है ।

...घुलती प्रीति स्वार्थ की क्षण में, जैसे मिट्टी कच्ची ।

...राधा के मुख से यही निकलता है—

रहें कहीं भी, केवल जन-हित उसका ध्येय रहेगा ।
पातक बने प्रलापी जग में वह यह नहीं सहेगा ।।

...

... कर्म की बंशी सजे सृष्टि यह सारी ।
...को आलिंगन कर ले ममता मंगलकारी ।।

ह... ... राधा से एक कदम आगे बढ़कर दुबेजी की राधा जनहित के लि... ...र्घकालीन, बल्कि चिर विरह भी सहना वरेण्य समझती है ।

× × ×

...ा' यदि कर्तव्य की प्रतीक है, तो द्रौपदी करुणा, दया और क्षमा ... । महाभारत की द्रौपदी से बहुत भिन्न यह दुबेजी की द्रौपदी है ।

अपने पाँचो पुत्रों की हत्या करने वाले अश्वत्थामा का वध वह केवल इसीलिए नहीं करने देती कि एक और माँ पुत्र विहीन हो जाएगी । मातृत्व सदा दया और करुणा से भरा रहता है । 'क्षमा' करना तो माँ ही जानती है । वैर से वैर की शान्ति नहीं होती । रसानुकूल आरभरी वृत्ति, ओपादि गुणों का सन्निवेश करने में दुबेजी की भाषा बड़ी ओजस्वी और प्रभावशाली सिद्ध हुई है —
द्रौपदी कहती है —

अब अन्तिम है यही कामना
माँ की ममता कभी न तरसे ।
क्षमा, दया, की छाया होवे
करुणा का शीतल जल बरसे ।।

ऐसी द्रौपदी की महिमा का गान कृष्ण ने गाया यह कहकर —

वही कभी जो अभिमानी थी, करुणामय उस कल्याणी का ।

× × ×

अन्तिम कथा है 'यशोधरा' की । 'यशोधरा' समर्पण और त्याग का प्रतीक है । वह अपने पति का विरह तो सहती ही है, पुत्र को भी भिक्षा में अर्पित कर देती है । गर्बिणी गोपी का रूप गुप्त जी में मिलता है — त्यागमयी यशोधरा का रूप दुबेजी में मिलता है । बहुजनहिताय बहुजनसुखाय वह अपना पुत्र भी गौतम के चरणों में अर्पित कर अपनी त्याग - समर्पण भावना का परिचय देती है ।

शैली की प्रभावकता के लिए कहीं - कहीं दुबेजी ने आवर्त्तक शैली का विनियोग किया है —

कल होगा क्या, होगा क्या कल, कुछ भी सोच न पाती ।

गर्विणी गोपी करुणामयी यशोधरा बन जाती है और अन्त में दुबेजी को कहना पड़ता है :

जैसा था भिक्षुक, वैसी ही भिक्षा देने वाली ।
दे सर्वस्व स्वयं को भी, जो अर्पित करने वाली ।।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि ये पाँचो कथाएँ स्वतन्त्र काव्य हैं और पाँचो नारी - पात्र प्रतीक हैं । सीता तितिक्षा या धैर्य का, उर्मिला संयम और कर्तव्य - बोध का, राधा नई चेतना और सक्रिय कर्मठता का, द्रौपदी करुणा और दया का तथा यशोधरा समर्पण और त्याग का प्रतीक हैं । इन कथाओं के माध्यम से दुबेजी ने प्रमुख मानव मूल्यों की प्रस्थापना तथा नई वैचारिक भूमियों का उत्खनन किया है । आधुनिक शब्दावली में नई चेतना के लिए जमीन तोड़ी है । पौराणिक पात्रों के माध्यम से नई चेतना की अभिव्यक्ति की है । पात्र पुराने हैं परन्तु पेय नया है । इस रचना पर वे अनेकशः बधाइयों के पात्र हैं । ❋❋

‘ हिन्दी - गीत ’
जिसने इतिहास बनाया

डॉ० विद्याबिन्दु सिंह

सभा समारोहों का प्रारम्भ प्राय: वन्दना गीत से किया जाता है। राष्ट्रीय समारोहों के प्रारम्भ में प्राय: ‘ वन्देमातरम् ’ गीत गाया जाता है। साहित्यिक और सांस्कृतिक समारोहों का प्रारम्भ माँ सरस्वती की वन्दना — ‘ या कुन्देन्दु तुषार हार धवला ’ से होता है, अब इधर महाकवि निराला के गीत ‘वीणा-वादिनि वर दे ’ का प्रयोग होने लगा है।

सदियों से हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में काम करती आ रही है, किन्तु उसको ‘ राष्ट्रभाषा ’ की संज्ञा इसी सदी में दी गई है और भारत के हिन्दीतर प्रदेशों में तथा विदेशों में भी उसका विधिवत प्रचार करना भी इसी सदी का काम है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार - कार्य के साथ श्री रामेश्वरदयाल दुबे का सम्बन्ध सन् १९३६ में ही हो गया था, जब राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन की प्रेरणा पर वे हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी प्रचार करने के लिए वर्धा पहुँचे थे। उन्होंने उस समिति में काम करना प्रारम्भ किया था, जिसके तत्कालीन अध्यक्ष थे देशरत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद और संरक्षक थे महात्मा गान्धी।

राष्ट्रभाषा के समारोहों में गाये जाने के लिए एक उपयुक्त गीत की तलाश श्री दुबेजी को थी। अपनी अल्प खोज के आधार पर उन्हें कोई गीत नहीं मिला। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का बोध वाक्य था —

एक राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, एक हृदय हो भारत जननी हो।

हिन्दी प्रचार क्षेत्र के बीच यह लोकप्रिय भी बहुत था। दुबेजी ने इससे प्रेरणा लेकर सन् १९४० में एक गीत लिखा जिसे उन्होंने ‘ हिन्दी-गीत ’ संज्ञा दी।

धीरे-धीरे यह गीत लोकप्रिय होने लगा, यत्र-तत्र गाया भी जाने लगा, किन्तु किसी बड़े समारोह में प्रथम बार सन् १९५३ में नागपुर में गाया गया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) द्वारा समायोजित राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन का पाँचवाँ अधिवेशन आदरणीय श्री एन० [illegible] की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था, जिसका उद्घाटन मद्रास के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री श्रीप्रकाश जी ने किया था। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी विशिष्ट अतिथि के रूप में पधारे थे। तीनों महानुभावों ने गीत की मुक्त कंठ से सराहना की और लेखक को हार्दिक बधाई दी।

आगे चलकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने इस हिन्दी-गीत का विविध प्रकार से प्रचार किया। अनतिकाल में ही यह हिन्दी-गीत अत्यन्त लोकप्रिय हो गया और हिन्दीतर प्रदेशों में होने वाले राष्ट्रभाषा के समारोहों में ही नहीं, हिन्दी की कथाओं में भी प्रारम्भ में विद्यार्थियों द्वारा गाया जाने लगा।

सन् १९५६ में वर्धा में एक वृहद् हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया गया। हिन्दी के सभी शीर्षस्थ साहित्यकार उसमें सम्मिलित हुए थे। प्रारम्भ में नागा प्रदेश की कन्यायों ने इस गीत को गाया, जिसे सभी ने विशेष पसन्द किया।

हिन्दी सम्मेलन की पहली बैठक के बाद डा० रामकुमार वर्मा ने जिज्ञासा-वश श्री दुबेजी से पूछा—"यह हिन्दी सम्बन्धी गीत किसका है?" जब दुबेजी ने विनम्रतापूर्वक उन्हें बताया कि उस गीत का लेखक उसके सामने खड़ा है, तो वर्मा जी ने दुबेजी को आलिंगन में कस लिया और प्रसन्न होकर कहा—मैं जानता हूँ, आपने बहुत कुछ लिखा है, पर मैं कहता हूँ कि यह गीत आपको अमर बनायेगा।

१९६५ में हिन्दी यात्री दल के साथ यह हिन्दी-गीत दक्षिण के प्रान्तों में पहुँचा। सर्वत्र इसे पसन्द किया गया। सभी संस्थाओं ने इस गीत को अपनाया। अनेक अनेक विद्वानों, साहित्यकारों तथा नेताओं ने इस हिन्दी-गीत की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

सन् १९७४ में माननीय प्रो० शेरसिंह की अध्यक्षता में वर्धा में १४वाँ राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हुआ। इस अधिवेशन में पारित प्रस्ताव क्रमांक ७ के अनुसार समिति ने इसे अपना संस्था गीत घोषित किया। प्रस्ताव की शब्द शैली इस प्रकार थी—

"श्री रामेश्वरदयाल दुबे द्वारा लिखित – भारत जननी एक हृदय हो— हिन्दी-गीत राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की राष्ट्रीय भावना का सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। यह गीत अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है। पिछले २० वर्षों से हिन्दी तथा हिन्दीतर प्रदेशों में यह बड़ी श्रद्धा के साथ गाया जाता है।

राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन का यह १२वाँ अधिवेशन इस हिन्दी-गीत को अपनी मान्यता प्रदान करता है और राष्ट्रभाषा प्रचारकों एवं अन्यान्य राष्ट्रभाषा प्रेमियों से अनुरोध करता है कि वे इसका यथोचित उपयोग करें।

प्रस्तावक – द्वारकादास वेद

अनुमोदक – पं० मु० डाँगरे

हिन्दी प्रचार करने वाली कई संस्थाओं ने 'हिन्दी-गीत' को 'संस्था-गीत' के रूप में स्वीकार किया।

सन् १९८३ में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा की ओर से दुबेजी के पास पत्र आया कि वे इस गीत को संस्थागीत के रूप में लेना चाहते हैं। अतः कृपया

अनुमति दें । दुबेजी ने उन्हें उत्तर दिया कि उनका यह गीत राष्ट्रभाषा हिन्दी जगत को समर्पित है । इसका उपयोग जो भी जिस रूप में चाहे कर सकता है ।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा ने अपनी ता० ९-११-८३ की बैठक में, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन केन्द्रीय उपमंत्री माननीय श्री पी०के० थुंगन ने की, यह निश्चय किया गया कि 'भारत जननी एक हृदय हो' शीर्षक गीत को संस्थान-गीत के रूप में अपनाया जाय ।

बेंगलोर की 'कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति' ने भी एक प्रस्ताव करके 'हिन्दी-गीत' को संस्थागीत स्वीकार किया है ।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के अपने रजत जयन्ती वर्ष के समापन समारोह में ता० १९-४-९१ को नई दिल्ली में उपराष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा ने हिन्दी-गीत में सन्निहित भावों की प्रशंसा करते हुए उसके लेखक श्री रामेश्वरदयाल दुबे का सम्मान एक प्रशस्ति पत्र और शाल समर्पित कर किया । इस प्रकार 'हिन्दी-गीत' को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ ।

पं० रामेश्वरदयाल दुबे की हिन्दी-साधना समस्त हिन्दी जगत के लिए प्रेरणा का स्रोत है । उनके द्वारा रचित यह गीत जो अब 'हिन्दी का गीत' बन गया है, हर भारतीय मन को छू सकेगा और भिगोता रहेगा ।

साहित्य - सेतु
पं० रामेश्वरदयाल दुबे

डॉ० सरला शुक्ला

श्री रामेश्वरदयाल दुबे को हिन्दी एवं हिन्दीतर प्रदेश के सभी साहित्य-प्रेमी जानते होंगे, क्योंकि उनका जन्मस्थान हिन्दी भाषी प्रदेश है किन्तु उनकी कर्मस्थली हिन्दीतर भाषी प्रदेश ही रहे । भारत के विभिन्न प्रदेशों में भ्रमणकर हिन्दी का प्रचार-प्रसार और भारतीय संस्कृति की एक सूत्रता की नई पहचान कराना उनकी अभिरुचि है ।

हिन्दी विभाग में पहली बार 'हिन्दी-दिवस' समारोह को व्यापक फलक पर आयोजित करने का संकल्प लेते ही मुझे उनका 'भारत जननी एक हृदय हो' गीत स्मरण आया और उनकी महती उपस्थिति में जब उसका गायन किया गया तो सभी विश्वविद्यालयों से आये छात्र एवं अध्यापक बन्धु रोमांचित हो गये । जब से वे लखनऊ आ बसे हैं, मैं उनके निकट सम्पर्क में आई हूँ और उनका प्रत्येक कार्य एवं विचार गान्धी-दर्शन, पुरुषोत्तम-कर्म एवं महामना-संकल्प से

प्रभावित दृष्टिगोचर होता है। भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में एकात्मकता की प्रतिष्ठा उनकी रचनाओं के माध्यम से सुसम्पन्न हुई है। हिन्दी प्रचार कार्य में संलग्न दुबेजी ने देश-दर्शन, लोक-दर्शन और संस्कृति-दर्शन भरपूर किया है, जो उनकी सप्तकिरण, भारत की प्रणय कथायें, 'सुमति शतक', 'वेमना शतक', 'भ्रमर-गीतलु', 'मधुकरी', तिरुक्कुरल, सानेगुरु जी, 'धम्मपद' 'अगस्त्य', 'कोणार्क' 'नूपुर' 'वेलूर' आदि कृतियों में स्पष्ट देखा जा सकता है।

'ज्ञानगंगा' उनकी अनूठी कृति है। अपनी इस कृति में दुबेजी ने सिद्ध कर दिया है कि भाषा की भिन्नता के आधार पर भारत विभाजन के हिमायती लोग कितनी भूल करते हैं। भाषा आवरण के पीछे भावों की एकता पर उनकी दृष्टि नहीं जाती। अपनी इस कृति में दुबेजी ने सम्पूर्ण भारत के सन्त विचारकों के ज्ञान को हिन्दी में अनुवादित कर गंगा सुरसरि के समान सबके लिए हित-कारी बना दिया है। तमिलनाडु के सन्त तिरुवल्लुवर, आन्ध्र प्रदेश के सन्त वेमना, कर्नाटक के क्रान्ति दृष्टि सर्वज्ञ, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, सिख गुरुओं की वाणी, बाइबिल और कुरान वाणी के ज्ञान को एक ही ग्रन्थ में समाहित कर भारतीय वैचारिक एकता को बल प्रदान किया है, और इस दावे को झुठला दिया है कि हिन्दी भाषी प्रदेश के साहित्यकारों की रुचि अन्य प्रदेशों के साहित्य, लोक जीवन या संस्कृति को जानने-समझने की नहीं है।

अपनी कृति 'दक्षिण दर्शन' में उन्होंने अपनी २८ दिन की दक्षिण भारत के चारों राज्यों की यात्रा का विवरण लिपिबद्ध किया है और यह आशा की है कि यदि 'दक्षिण दर्शन' की लालसा इस ग्रन्थ को पढ़ने से जाग्रत होती है तो लेखक अपना श्रम सार्थक समझेगा।

श्री दुबेजी सभी विधाओं के समर्थ लेखक हैं। उनका विवरण एक ओर तो यात्रा-साहित्य की कसौटी पर खरा उतरता है और दूसरी ओर दक्षिण के आचार-विचार, लोक संस्कृति, भौगोलिक सौन्दर्य, शिल्प-सौन्दर्य एवं अडिग आस्था का जीवन्त दस्तावेज है। 'भारत की प्रणय कथायें' कृति में भारत के प्रत्येक अंचल से चुनी हुयी २१ प्रणय कथायें वर्णित हैं जो लेखक की मधुकरी वृत्ति का परिचायक है। जो लोकरंजक होने के साथ ही प्रेम के मंगलीसूत्र को एकता एवं अखंडता का आधार बनाती हैं। नश्वर को अनश्वर, लौकिक को अलौकिक सिद्ध करती हैं और पद्मावत के "मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी नाहित काह छार भरि मूठी" भाव को विस्तृत कर जीवन में इन्द्रधनुषी रंग भरती हैं।

तेलुगु का शतक काव्य बहुत प्रसिद्ध है। तेलुगु-हिन्दी काव्य के अन्तर्गत सुमति शतक और वेमना शतक का अनुवाद प्रस्तुत कर दुबेजी ने अनुकरणीय

कार्य किया है । भ्रमर गीतलु कृष्ण काव्य का सर्वप्रिय प्रसंग है । श्री विश्वनाथ सत्यनारायण द्वारा रचित कृति भ्रमर गीतलु का हिन्दी अनुवाद भी दुबेजी ने किया है । तमिल के महान ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' को भी अनुवादित कर दुबेजी ने न केवल हिन्दी भाषियों के, वरन् हिन्दी के माध्यम से सम्पूर्ण भारत की जनता के घर आँगन में 'ज्ञान गंगा' प्रवाहित कर दी है । जिज्ञासा और लालसा होते हुए भी सभी भारतीय भाषाओं का अध्ययन सरल नहीं, किन्तु दुबेजी ऐसे समर्थ रचनाकारों के माध्यम से लिप्यन्तरित एवं अनुवादित होकर जब सत् साहित्य पाठक वर्ग के सम्मुख पहुँचता है तो उनका ज्ञान वर्धन सरल हो जाता है । दुबेजी ने इस दिशा में साहित्य-सेतु का काम किया है ।

अपने प्रसिद्ध खंडकाव्य 'कोणार्क' द्वारा दुबेजी ने हमें उड़ीसा के कला वैभव से परिचित कराया है तो 'नूपुर' खंडकाव्य द्वारा तमिलनाडु की प्रसिद्ध कथा 'कण्णकी' और वहाँ की संस्कृति का दर्शन कराया है । कर्नाटक के प्रसिद्ध कलापूर्ण मन्दिर और उस से जुड़ी कथाओं के आधार पर लिखा उनका 'बेलूर' खंडकाव्य हमें कर्नाटक पहुँचा देता है । दुबेजी का 'अगस्त्य' नाटक भी उल्लेखनीय है । अगस्त्य मुनि उत्तर एवं दक्षिण दोनों में समान श्रद्धा के अधिकारी हैं । इस नाटक द्वारा दुबेजी ने भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच साहित्य-सेतु तैयार किया है ।

मेरा मानना है कि दुबेजी ने अपनी अनेक कृतियों द्वारा एक बार फिर भारत के सांस्कृतिक सूत्रों को जोड़ने का प्रशंसनीय प्रयास किया है । ✻ ✻

दुबे जी का हास्य प्रधान साहित्य

कौशलेन्द्र पाण्डेय

अँग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी-साहित्य में शुद्ध हास्य का अभाव है । हिन्दी में उपलब्ध हास्य में व्यंग्य की प्रधानता है । हास्य, राग-द्वेष से परे होता है, उसका विशुद्ध उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना एवं उन्हें स्वस्थ बनाना है । इसके विपरीत व्यंग्य विसंगतियों, विद्रूपताओं या अव्यवस्था के प्रति होता है । अत: हास्य की भाँति वह अविकारी न होकर विकारग्रस्त होता है । व्यंग्य वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन के उद्देश्य से होते हैं, इसके विपरीत हास्य वर्तमान को ही बनाये रखने का पक्षधर होता है और उसी के साथ हँसी-खुशी से रहना उसे रास आता है ।

पं० रामेश्वर दयालु दुबे के साहित्य में हास्य की अवतारणा इसी पुनीत

भावना का परिणाम है । वह निर्विकार तथा स्वस्थ परम्परा का प्रतिपालक है । दुबेजी के इस संयत या मर्यादित हास्य का कारण सदाचार की सुदृढ़ नींब हैं । वे राष्ट्रपिता गांधी से विशेष प्रभावित थे । अत: शिष्टता, सौमनस्य, सद्भाव, समता एवं समर्पण की भावना से प्रेरित होने के कारण उनके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या - विद्वेष, हिंसा या प्रतिशोध - भावना का नितांत अभाव है । पण्डित जी ने हास्य रस के कितने ही निबन्धों, कविताओं, गप्पों, चुटकुलों तथा किस्से-कहानियों की रचना कर हिन्दी साहित्य में हास्य के अभाव को दूर करने का श्लाघनीय कार्य किया है ।

'सब की बोली', 'राष्ट्रभाषा पत्र', 'हिन्दी समाचार' (मद्रास), 'हल' 'बाल सखा', नोंक झोंक' (आगरा), 'उदय' (हैदराबाद), तथा 'वर्धा की चिट्ठी' इत्यादि लोकप्रिय हिन्दी पत्र - पत्रिकाओं में पण्डित जी की रचनायें प्राय: छपती रहती थीं । दुबेजी की हास्य - प्रधान रचनायें उनके वास्तविक नाम के साथ - साथ 'झखमार पण्डित' 'शीलधन शर्मा', एवं 'विनोदानन्द' इत्यादि विभिन्न नामों से भी निकलती थीं । यही [illegible]हीं, दुबेजी ने अनेक पत्र - पत्रिकाओं में हास्यरस - प्रधान स्तम्भों के लिए अनव[illegible]त लिखा । 'नोंक झोंक' (आगरा) के चर्चित स्तम्भ 'वर्धा की चिट्ठी' (१९[illegible]–४८), हैदराबाद के 'उदय' में 'विनोदानन्द की डाक' जैसे हास्यरस प्रधा[illegible]तम्भों का लेखन किया ।

हास्य प्रधान साहित्य के सृजन की [illegible]ोर उन्मुख होने की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में दुबेजी बताते हैं कि "१९३१ से [illegible]तक — जिन दिनों श्री सतीश-चन्द्र, आई० सी० एस० के छोटे भाई - बह[illegible]ों [illegible] पढ़ाता था, स्वभाव से बहुत गम्भीर था । भाई - बहनों के टयूटर होने के [illegible]ण सतीशचन्द्र जी मुझे बहुत सम्मान देते थे । मेरी गम्भीरता को ले[illegible]र [illegible]र एक दिन उन्होंने कह ही डाला — "आप क्यों हमेशा मुँह लटका[illegible] — 'Create joy and enjoy it' उनका यह परामर्श मेरे मन [illegible] समा गया और तभी से मेरा ध्यान हास्य की ओर गया । फलत: [illegible]-वृत्ति का संचार हुआ । दैनिक 'आज' में प्रकाशित चुटकुलों तथा [illegible]य - रस प्रधान सामग्री का संग्रह करना और उसे बच्चों को सुनाना [illegible]हो गया ।"

सन् १९३७ में श्री दुबेजी [illegible]पक प्रचार - प्रसार हेतु वर्धा गए, तो हास्य की यह रोचक साम[illegible] लेते गए । वहाँ पहुँचने पर वे विनोदपूर्ण कहानियाँ लिखने लगे [illegible]ल में प्रकाशित हो रहे 'संसार', 'हल', 'नोंक झोंक' और [illegible]इत्यादि पत्र - पत्रिकाओं में उनके नाम की धूम थी । बढ़ती लोक[illegible]स्वरूप दुबेजी कवितायें,

कार्य किया है । भ्रमर गीतलु कृष्ण काव्य का सर्वप्रिय प्रसंग है । श्री विश्वनाथ सत्यनारायण द्वारा रचित कृति भ्रमर गीतलु का हिन्दी अनुवाद भी दुबेजी ने किया है । तमिल के महान ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' को भी अनुवादित कर दुबेजी ने न केवल हिन्दी भाषियों के, वरन् हिन्दी के माध्यम से सम्पूर्ण भारत की जनता के घर आँगन में 'ज्ञान गंगा' प्रवाहित कर दी है । जिज्ञासा और लालसा होते हुए भी सभी भारतीय भाषाओं का अध्ययन सरल नहीं, किन्तु दुबेजी ऐसे समर्थ रचनाकारों के माध्यम से लिप्यन्तरित एवं अनुवादित होकर जब सत् साहित्य पाठक वर्ग के सम्मुख पहुँचता है तो उनका ज्ञान वर्धन सरल हो जाता है । दुबेजी ने इस दिशा में साहित्य-सेतु का काम किया है ।

अपने प्रसिद्ध खंडकाव्य 'कोणार्क' द्वारा दुबेजी ने हमें उड़ीसा के कला वैभव से परिचित कराया है तो 'नूपुर' खंडकाव्य द्वारा तमिलनाडु की प्रसिद्ध कथा 'कण्णकी' और वहाँ की संस्कृति का दर्शन कराया है । कर्नाटक के प्रसिद्ध कलापूर्ण मन्दिर और उस से जुड़ी कथाओं के आधार पर लिखा उनका 'बेलूर' खंडकाव्य हमें कर्नाटक पहुँचा देता है । दुबेजी का 'अगस्त्य' नाटक भी उल्लेखनीय है । अगस्त्य मुनि उत्तर एवं दक्षिण दोनों में समान श्रद्धा के अधिकारी हैं । इस नाटक द्वारा दुबेजी ने भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच साहित्य-सेतु तैयार किया है ।

मेरा मानना है कि दुबेजी ने अपनी अनेक कृतियों द्वारा एक बार फिर भारत के सांस्कृतिक सूत्रों को जोड़ने का प्रशंसनीय प्रयास किया है । ✱ ✱

दुबे जी का हास्य प्रधान साहित्य

कौशलेन्द्र पाण्डेय

अँग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी-साहित्य में शुद्ध हास्य का अभाव है । हिन्दी में उपलब्ध हास्य में व्यंग्य की प्रधानता है । हास्य, राग-द्वेष से परे होता है, उसका विशुद्ध उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना एवं उन्हें स्वस्थ बनाना है । इसके विपरीत व्यंग्य विसंगतियों, विद्रूपताओं या अव्यवस्था के प्रति होता है । अत: हास्य की भाँति वह अविकारी न होकर विकारग्रस्त होता है । व्यंग्य वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन के उद्देश्य से होते हैं, इसके विपरीत हास्य वर्तमान को ही बनाये रखने का पक्षधर होता है और उसी के साथ हँसी-खुशी से रहना उसे रास आता है ।

पं० रामेश्वर दयालु दुबे के साहित्य में हास्य की अवतारणा इसी पुनीत

भावना का परिणाम है। वह निर्विकार तथा स्वस्थ परम्परा का प्रतिपालक है। दुबेजी के इस संयत या मर्यादित हास्य का कारण सदाचार की सुदृढ़ नींव हैं। वे राष्ट्रपिता गांधी से विशेष प्रभावित थे। अत: शिष्टता, सौमनस्य, सद्भाव, समता एवं समर्पण की भावना से प्रेरित होने के कारण उनके मन में किसी के प्रति ईर्ष्या-विद्वेष, हिंसा या प्रतिशोध-भावना का नितांत अभाव है। पण्डित जी ने हास्य रस के कितने ही निबन्धों, कविताओं, गप्पों, चुटकुलों तथा किस्से-कहानियों की रचना कर हिन्दी साहित्य में हास्य के अभाव को दूर करने का श्लाघनीय कार्य किया है।

'सब की बोली', 'राष्ट्रभाषा पत्र', 'हिन्दी समाचार' (मद्रास), 'हल' 'बाल सखा', नोंक झोंक' (आगरा), 'उदय' (हैदराबाद), तथा 'वर्धा की चिट्ठी' इत्यादि लोकप्रिय हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में पण्डित जी की रचनायें प्राय: छपती रहती थीं। दुबेजी की हास्य-प्रधान रचनायें उनके वास्तविक नाम के साथ-साथ 'झखमार पण्डित' 'शीलधन शर्मा', एवं 'विनोदानन्द' इत्यादि विभिन्न नामों से भी निकलती थीं। यही नहीं, दुबेजी ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में हास्यरस-प्रधान स्तम्भों के लिए अनवरत लिखा। 'नोंक झोंक' (आगरा) के चर्चित स्तम्भ 'वर्धा की चिट्ठी' (१९४७–४८), हैदराबाद के 'उदय' में 'विनोदानन्द की डाक' जैसे हास्यरस प्रधान स्तम्भों का लेखन किया।

हास्य प्रधान साहित्य के सृजन की ओर उन्मुख होने की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में दुबेजी बताते हैं कि "१९३१ से ३६ तक — जिन दिनों श्री सतीश-चन्द्र, आई० सी० एस० के छोटे भाई-बहनों को मैं पढ़ाता था, स्वभाव से बहुत गम्भीर था। भाई-बहनों के टयूटर होने के कारण सतीशचन्द्र जी मुझे बहुत सम्मान देते थे। मेरी गम्भीरता को लेकर आखिर एक दिन उन्होंने कह ही डाला — "आप क्यों हमेशा मुँह लटकाये रहते हैं — 'Create joy and enjoy it' उनका यह परामर्श मेरे मन-प्राणों में समा गया और तभी से मेरा ध्यान हास्य की ओर गया। फलत: मुझमें विनोद-वृत्ति का संचार हुआ। दैनिक 'आज' में प्रकाशित चुटकुलों तथा अन्य हास्य-रस प्रधान सामग्री का संग्रह करना और उसे बच्चों को सुनाना मेरा व्यसन हो गया।"

सन् १९३७ में श्री दुबेजी हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु वर्धा गए, तो हास्य की यह रोचक सामग्री अपने साथ लेते गए। वहाँ पहुँचने पर वे विनोदपूर्ण कहानियाँ लिखने लगे। फलत: उस काल में प्रकाशित हो रहे 'संसार', 'हल', 'नोंक झोंक' और 'बाल सखा' इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में उनके नाम की धूम थी। बढ़ती लोकप्रियता के फलस्वरूप दुबेजी कवितायें,

निबन्ध, चुटकुले और गप्पें इत्यादि हास्य रस-प्रधान सभी विधाओं में कार्य करने लगे। सभी प्रकार के विषयों में हास्य की अवतारणा कर पाठक को प्रभावित करना दुबेजी का स्वभाव बन गया 'कहिये तो आपको तबलायें' (बतलायें), 'नामों की विडम्बना', 'अजायबघर', 'बुरे फँसे', 'तुलसीदास जी बी० ए० फेल थे', 'रेडियो एक बला', 'हमारे भी हैं', 'मेहरबाँ कैसे-कैसे', 'हा हा हे हें वाद', 'मैं बीमार होना चाहता हूँ', 'हँसती दीवारें', उधार लेना भी एक कला है' और 'पत्नी की खोज में' इत्यादि उनके रोचक तथा स्वस्थ हास्य-सर्जक निबन्ध हैं। इनमें लेखक की जिन्दादिली, सूझ-बूझ तथा विषय एवं शैली-वैविध्य की छटा देखने योग्य है।

दुबेजी की हास्य में विशेष रुचि जागृत करने में हिन्दीतर प्रदेशों के परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं का विशेष योगदान रहा। सन् १९४२ से १९७८ तक वे हिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु परीक्षा मंत्री थे। फलत: परीक्षा में आने वाली हजारों उत्तर पुस्तिकायें दुबेजी के सामने आतीं और उनमें बिखरी ढेरों विनोदपूर्ण सामग्री के आधार पर वे हास्य-प्रधान साहित्य का सृजन करते। सन् १९५३ में पुणे (महाराष्ट्र) से प्रकाशित उनकी प्रथम कृति 'आलूचना' में परीक्षार्थियों की सामग्री का भरपूर प्रयोग हुआ है। 'आलूचना' कृति का नाम भी पण्डित जी को एक परीक्षार्थी की उत्तर पुस्तिका से मिली थी। पुणे (महाराष्ट्र) से मुद्रित इस पुस्तक की भूमिका पं० सीताराम चतुर्वेदी ने 'लल्लू के बाबू जी' जैसे हास्य प्रधान छद्नाम से लिखी थी। इसके अन्तर्गत मजेदार मुहावरे, कहावतें तथा उनके प्रयोग इत्यादि की भरमार है। उदाहरण के लिए कुछ अंश द्रष्टव्य हैं—

'बापू के प्रति' कविता का भावार्थ लिखिये—

परीक्षार्थी ने उत्तर में लिखा—"बापू की प्रीति अपन पर कैसी है, जैसी माँ की प्रीति अपन पर है। माँ अपन को पालन करती है—बापू जी बाजार से अपन को अच्ची अच्छी चीजें लाकर देते हैं।" (आलूचना, पृ० ८)

सन् १९५०–५५ की अवधि में दुबेजी में इतनी जिन्दादिली थी कि वे व्यवहार में भी अति विनोदी हो गए थे। १९५२ के राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन, पूना के अधिवेशन की सांस्कृतिक संध्या में दुबेजी वेष बदलकर हास्यपूर्ण रूप में मन्च पर अवतरित हुए और अपनी रोचक रचनाओं—किस्सों, गप्पों, कविताओं और चुटकलों द्वारा उपस्थित श्रोताओं को लोट-पोट कर दिया था।

'आलूचना' की अत्याधिक प्रसिद्धि ने दुबेजी के हास्य-परक साहित्य-सृजन के हौसले को और बुलन्द किया। फलत: विभिन्न-पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर उनकी हास्यरस प्रधान जो कवितायें छपा करती थी, उन्हें

पण्डित जी ने पुस्तकाकार रूप दिया। जनवरी सन् १९६६ में 'पिकनिक' के नाम से उनकी हास्यरस परक कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ। हास्यरस के प्रख्यात कवि 'बेधड़क बनारसी' ने 'पिकनिक जरूरी है' शीर्षक से इस संकलन की भूमिका लिखी थी। इस कविता-संग्रह का समर्पण कवि की लोकसंग्रही भावना की सहज परिचायक है -

"उन स्नेही मित्रों", राष्ट्रभाषा-प्रचारकों तथा हिन्दी के विद्यार्थियों को जिनका मनोरंजन इन रचनाओं ने किया।"

अपने हिन्दी-प्रचार अभियान के अन्तर्गत दुबेजी हास्यरसपूर्ण कविताओं द्वारा लोगों का मनोविनोद करते तथा उनमें हिन्दी के पठन-पाठन के प्रति रुचि जागृत करते थे। इस प्रकार हिन्दीतर भाषियों का हृदय जीतकर उनमें हिन्दी-प्रेम जगाना पण्डित जी का मूल उद्देश्य था।

दुबेजी के हास्य का उद्देश्य किसी (व्यक्ति) की खिल्ली उड़ाना नहीं, बल्कि विशुद्ध मनोरंजन करना था। इसलिए उनके विषय, देश के प्रमुख राजनेता-राष्ट्रपिता गांधी, के० एम० मुन्शी और देशमुख इत्यादि तक बने थे। यथा: —

जय जय, जय जय बकरी माता !
पीकर दूध तुम्हारा बापू —
बना शांति - सुख का दाता।

× × ×

क्या करारी चोट नेता जी मुझी को दे गये।
दे गये सन्देश अपना, पेन मेरा ले गये ॥

× × ×

हम बन्दर क्यों डरें ? नहीं वे 'मन्तर छू' हैं।
'बा' के बिना अरे बापू तो केवल 'पू' हैं ॥

इस विवेचन से स्पष्ट है कि पं० रामेश्वरदयाल दुबे का हास्यपरक साहित्य सार्थक, अविकारी एवं लोकमंगलकारी है। ❋ ❋

[सी - १३/१, पेपरमिल कालोनी, निशातगंज, लखनऊ]

●

लाख बनै करता धरता कोइ
कौतुक कृत्य करैया है औरुइ।

— मृगेश

बाल साहित्य के अनन्य सेवक : रामेश्वरदयाल दुबे

चक्रधर नलिन

उन्नत ललाट, छरहरा वदन, तेजस्वी नेत्र और शान्त आभा से दीप्त चेहरा—यह है बाल साहित्य के वरिष्ठ साधक रामेश्वरदयाल दुबेजी की भौतिक पहचान। दुबेजी की बाल साहित्य-सेवा दशकों के अनवरत लेखन का परिणाम है। यह यात्रा प्रारम्भ हुई बाल कविता से और विविध प्रवाहों से जुड़ती, घटती - बढ़ती और विभाजित होती बाल साहित्य की श्रीवृद्धि करती गयी। कविता, कहानी नाटक, बाल रिपोर्ताज, जीवनियाँ, सामान्य बाल निबन्धों की रचना करके दुबेजी ने बाल साहित्य की अप्रतिम सेवा की है। आपकी रचनाओं का उद्देश्य बाल-मनो में भारतीय संस्कारों का संचार करना है और उनमें आदर्श तथा पूर्ण मानव के गुणों का विकास करना है, जिससे बालक - बालिकायें अपनी छिपी शक्तियों का पर्याप्त विस्तार कर सकें। दुबेजी का साहित्य मात्र मनोरंजात्मक न होकर सोद्देश्य पूर्ण है और है पूर्ण गुणवता से ओतप्रोत। बाल साहित्य के उन्नयन, विकास और श्रीवर्धन की जब भी साहित्यिक चर्चा होगी, उसमें दुबेजी का सादर उल्लेख अवश्य होगा।

दुबेजी बच्चों के अनन्य प्रेमी हैं। बच्चों का भोलापन और उनका निर्दोष मन दुबेजी के लिए आकर्षण के केन्द्र बने। उनके मनोविनोद के लिए आप बाल-लेखन के प्रति आकृष्ट हुए, लेकिन यह लेखन अन्ततोगत्वा सन्तुष्टि और आनन्दानुभूति का सहज आधार बन गया।

दुबेजी का मानना है कि बच्चों की उम्र का ध्यान रखकर बाल साहित्य की रचना करनी चाहिए। इसी दृष्टि से आपने विभिन्न बाल वर्ग के लिए उपयुक्त बाल रचनायें की हैं।

आरम्भ में आप की रचनायें, बालसखा, बालक, बानर, किशोर, चन्दामामा, बाल भारती, नन्दन पराग आदि प्रमुख बाल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। दुबेजी ने बच्चों के लिए लगभग ३०० कवितायें, अनेक बाल नाटक, बाल कहानियाँ, जीवनियाँ आदि लिखी हैं और अपनी सहज प्रभावी पकड़ से बच्चों का मन मोहते रहे हैं।

१९३७ में वर्धा पहुँचने के पश्चात् दुबेजी की बाल साहित्य रचना की प्रवृत्ति को विशेष बल मिला। अकोला (महाराष्ट्र) के बच्चों के एक स्कूल में स्थापित 'बाल माझादेव' (बालक मेरा देवता) की मूर्ति, श्री काशीनाथ त्रिवेदी

द्वारा प्रकाशित 'शिक्षण पत्रिका', तारा बहन मोडक तथा गिजू भाई के लेखों का सहज प्रभाव आपके लेखन में आसानी से मिलता है ।

कवि की 'खोटी अठन्नी' कविता सबसे पहली स्वीकृत बाल कविता है। असावधानी से एक खोटी अठन्नी आ गई । उसे चलाने का प्रयत्न किया गया । खोटी अठन्नी चल गई, पर बदले में खोटा रुपया आ गया । 'खोटी अठन्नी' की कविता एक पहचान छोड़ती है ।

मूर्ख बनाने चला, स्वयं वह पहले मूर्ख बनेगा ।
सच है जो डालेगा छीटें, कीचड़ बीच सनेगा ।।
घातक है प्रत्येक बुराई, हो कितनी ही छोटी ।
खरी बात यह बता गई है मुझे अठन्नी खोटी ।।

गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की पाठ्य पुस्तकों में इस कविता को स्थान दिया गया ।

रामेश्वर दयाल जी एक सफल बाल कवि हैं । उनकी कवितायें बच्चों को एक दिव्य सन्देश देकर उनके मानसिक विकास की ओर अग्रसरित करती हैं। बच्चे इन्हें पढ़कर एक रत्न सा पाते हैं और अधिकांश कवितायें एक बार सुनने में ही सहजरूप से कंठस्थ हो जाती हैं। दुबेजी की कवितायें 'अभिलाषा' (१९१४ प्रकाशन वर्ष) 'चले चलो' प्रका० वर्ष १९४३ मयूर प्रकाशन, झांसी) माँ यह कौन ? (प्रका० वर्ष १९४८-४९) ३० कविताओं का संकलन जिनमें राष्ट्र-नेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों, महापुरुषों की जीवन झाँकियाँ प्रश्न उत्तर के माध्यम से रचित हैं, 'उत्तर-प्रदेश उत्ताम-प्रदेश' (२५ कविताओं का संग्रह) 'डाल-डाल के पंछी' (प्रकाशन वर्ष १९७७), ३२ कविताओं का संकलन), बाल काव्य कृतियों में संग्रहीत हैं । कवितायें सहज, सरल और अन्तरस्पर्शी हैं । 'मेरा घोड़ा' की पंक्तियाँ 'इसे न कहना कोई डंडा— यह तो मेरा घोड़ा है । यह सरपट की चाल दिखाता — लगता जब ही कीड़ा है' या 'मौसी के घर जायेंगे हम' की पंक्तियाँ, 'बहुत प्यार फिर पायेंगे हम, बढ़िया मजे उड़ायेंगे हम । जब तक शाला नहीं खुलेगी – नहीं लौट कर आयेंगे हम' सरल भाषा में बाल-मनो-विज्ञान को ध्यान में रखकर लिखी गई सुन्दर पंक्तियाँ हैं जो बच्चों के नस पर स्वस्थ प्रभाव डालती है ।

शिशुओं के लिए— 'कुकड़ूँ कूँ' बाल नाटक लिखने के पश्चात् पाँच वर्ष से सात वर्ष तक की अवस्था के बच्चों के लिए आपने 'डंडा और बाँसुरी' तथा 'फूल और काँटा' दो नाटक संग्रह लिखे जो 'लोक भारती' प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुए । 'सप्तपर्ण' एकांकी संग्रह हैं जो १० से १४ वर्ष तक के बच्चों

को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं । रंगशाला, वैयाकरण, बाँकी, परिधि, चिन्हू चाचा आदि विशेष लोकप्रिय बने । अनेक बार मंचित किये गये हैं । इनकी सब से बड़ी विशेषता है, विषयों का मानवीकरण ।

'वैयाकरण' एकांकी में पात्र कल्पना इस प्रकार है — भाषा पत्नी है, व्याकरण चन्द्र पति है । संज्ञा पुत्र है, क्रिया पुत्री है । विशेषज्ञ दूसरा पुत्र है । सभी एकांकियों में यही पद्धति अपनाई गयी है। वार्तालाप मनोहर है, विद्यार्थियों के लिए शिक्षाप्रद भी ।

'ऋतुचक्र' नाटक तो अद्वितीय है । डा० रामकुमार वर्मा ने भूमिका में इसे 'छोटे नाटकों का नायक' माना है ।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

दुबेजी ने बच्चों के लिए शिक्षाप्रद, मनोवैज्ञानिक, मनोरंजात्मक कहानियाँ लिखी हैं । 'क्या यह सुनी कहानी (१५ कहानियों का संग्रह १९४७ में कटक से प्रकाशित) तथा 'बगला सफेद क्यों' (१५ कहानियों का संग्रह १९७७ में लखनऊ से प्रकाशित) सुन्दर कहानियों के संग्रह हैं जिनसे बच्चे प्रेरणा और आदर्श प्राप्त करेंगे । इन कहानियों में यथार्थ और आदर्श का अद्भुत समन्वय है । बच्चे इन कहानियों को पढ़कर आनन्द और सुख का अनुभव करते हैं ।

जीवनियाँ

जीवनी साहित्य में दुबेजी की प्रमुख कृतियों में भारत के रत्न (प्रकाशन वर्ष १९८०, उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद्) तथा 'बड़े जब छोटे थे' (१९६९ में बोरा एन्ड कम्पनी, इलाहाबाद में प्रकाशित तथा पुस्तक में लोकमान्य तिलक, मामा वरेरकर, काका साहब गाडगिल, बाबा राघवदास, महापंडित राहुल साँकृत्यायन कस्तूरबा गांधी, मौलाना अब्दुलक्लाम आजाद, जमनालाल बजाज, ईश्वर चन्द विद्या सागर, सरदार पृथ्वीसिंह, डा० सम्पूर्णानन्द, गणेशशंकर विद्यार्थी, मैथिली-शरण, माखनलाल चतुर्वेदी, विनोबा जी, सरोजनी नायडू, सुभाष चन्द्र, जवाहरलाल, पुरुषोत्तमदास टंडन, लाजपत राय, बल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद: शरत चन्द्र, रामतीर्थ, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द, चितरंजन दास, मोती-लाल नेहरू, म० गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र, बंकिम चन्द्र, मदन मोहन मालवीय, गोपालकृष्ण गोखले, आदि का जीवन चरित्र संकलित) आदि सफल उल्लेखनीय सरल हिन्दी भाषा में लिखी बालगोपीय प्रसंग हैं । 'भारत के रत्न' में लोक मान्य, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, पं० मदनमोहन मालवीय, नेताजी सुभाष बोस, श्रीमती सरोजनी नायडू, आदि महामानवों की जीवनियाँ संग्रहीत हैं । इन जीवनियों से बच्चों के जीवन निर्माण के साथ ही उनके चरित्र-निर्माण में भी

प्रेरणा-स्रोत का कार्य होगा। इन महापुरुषों की जीवनियों को पढ़कर बच्चे अनुप्राणित होकर अपने जीवन को उच्च और महान् बना सकते हैं।

'बालक मेरा देवता' के आराधक

दुबेजी की बाल साहित्य साधना का यश उज्ज्वल और व्यापक क्षितिज पर आधारित है। जिधर भी दुबेजी ने कलम चलाई सफलता हर क्षेत्र में मिली। कविता, कहानी, जीवनी आदि विविध आयामों से इन्होंने बाल-साहित्य जगत को सजाया, सँवारा है और उसे संवर्द्धित किया है। दुबेजी की भाषा अत्यन्त सरल पर भावों के संप्रेक्षण में मोहकता से परिपूरित है। इस साहित्य के माध्यम से बच्चों का मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास होता है। दुबेजी की इन कृतियों में विश्व-बालक के सच्चे निर्माण की सुन्दर सामग्री है। बाल कल्याण और बाल-उत्थान, बाल-विकास और बाल चरित्र निर्माण को उद्देश्य मानकर लिखा गया दुबेजी का बाल साहित्य आने वाले दिनों में बच्चों के लिए पर्याप्त प्रेरणा और चेतना का कार्य करेगा। रामेश्वर दयाल दुबे का लेखन बच्चों में स्नेह, सौहार्द और गुणों का समुचित नि:सन्देह विकास करने में सहयोगी भूमिका अदा करेगा।

[२४६ प्रभुटाउन, रायबरेली – १]

दुबेजी का पद्यानुवाद कार्य

एक समीक्षक

पंडित रामेश्वरदयाल दुबे के लेखन के विविध आयाम हैं। हिन्दी साहित्य की प्राय: सभी विधाओं पर आपका समान अधिकार है। आपकी ५० से अधिक पुस्तकें (काव्य संग्रह, नाटक, कहानी, खंडकाव्य, हास्य, बाल साहित्य आदि) प्रकाशित हो चुकी हैं। दुबेजी ने अनुवाद के क्षेत्र में भी यथेष्ट काम किया है, विशेषत: पद्यानुवाद के रूप में।

अनुवाद करना एक कठिन कार्य है। एक भाषा के भावों को दूसरी भाषा में लाना यों भी कठिन होता है, पद्यानुवाद में तो यह कार्य और कठिन बन जाता है। मूल भाव की छाया भी आ जाय, तो सन्तोष मानना पड़ता है।

दुबेजी पद्यानुवाद विधा की ओर कैसे अग्रसर हुए उसका एक इतिहास है। श्रद्धेय पुरुषोत्तम दास टण्डन की प्रेरणा से सन् १९३७ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के द्वारा हिन्दी प्रचार का कार्य करने आप वर्धा (महाराष्ट्र) पहुँचे।

वर्धा उन दिनों भारत की राष्ट्रीय राजधानी थी। दुबेजी वहाँ महात्मा गान्धी, आचार्य बिनोवा, काका कालेलकर, आर्यनायकम, महादेव भाई आदि के सम्पर्क में आये। सबसे अधिक निकट का सम्पर्क आचार्य काका साहेब कालेलकर से रहा। एक दिन उन्होंने मराठी भाषा में प्रयुक्त होने वाले 'मधुकरी' शब्द का भाव समझाया। जिसे सुनकर विभिन्न भाषाओं की सुन्दर रचनाओं को हिन्दी में पद्यानुवाद के रूप में देने की इच्छा दुबेजी के मन में जाग्रत हुई। फिर तो इस दिशा में आपने बहुत कुछ किया।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रान्तों के बीच घनिष्ट परिचय, घनिष्ट सम्बन्ध बढ़े। भारत को 'महामानवेर सागर' कहा गया है। इस सागर में अनुवाद की नौकायें चलने लगें, जिनमें बैठ-बैठकर प्रदेश के विचार और भावनायें दूसरे प्रान्तों में पहुँचे। अनुवाद के माध्यम से साहित्य का आदान-प्रदान हो, जिससे तथाकथित 'दूरी', 'निकटता' में बदल जावे। इस दिशा में भी दुबेजी ने स्तुत्य प्रयत्न किया है।

काका साहेब कालेलकर के सुझाव पर ही दुबेजी की पहली पुस्तक 'मधुकरी' प्रकाशित हुई। इसमें गुजराती, बगला, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, पंजाबी, उड़िया, सिन्धी, मराठी, संस्कृत, फारसी, अँग्रेजी, चीनी तथा जापानी की छोटी-छोटी सुन्दर रचनाएँ हिन्दी पद्यानुवाद के रूप में संग्रहीत हैं। पुस्तक की भूमिका स्वयं काका साहेब कालेलकर ने लिखी है। वे लिखते हैं—

"श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने अपने हिन्दी के छत्ते के लिए हिन्दीतर प्रदेशों से और बाहर से भी, जो सुन्दर मिला, उसको उन्होंने स्वादिष्ट हिन्दी बना दिया। पाठक मेरे साथ हमराय होंगे, कि इस 'दयाल' मधुकर का संग्रह 'रसाल' है।"

पद्यानुवाद की यह प्रवृत्ति चलती रही। तमिलनाडु के पुराने सन्त तिरुवल्लुवर का ग्रंथ 'तिरुक्कुरल' अत्यन्त प्रसिद्ध है। संसार की प्राय: सभी भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ है। इसमें तीन खंड हैं— धर्म, अर्थ और काम। धर्मखंड का, जो मूलत: नीतिपरक है, पद्यानुवाद श्री दुबेजी ने किया। इसकी भी भूमिका काका साहेब ने लिखी। उत्तर प्रदेश के हिन्दी संस्थान ने दुबेजी द्वारा रचित 'तिरुक्कुरल' को पुरस्कृत किया है।

श्री दुबेजी की अनुवादित और पद्यानुवादित पुस्तकों में मधुकरी, तिरुक्कुरल (जिनके सम्बन्ध में ऊपर कहा जा चुका है) 'गान्धी आश्रम प्रार्थना', 'सुमति शतक', 'धम्मपद शतक', 'भ्रमर गीतलु', साने गुरु जी तथा 'ज्ञान गंगा। आन्ध्र प्रदेश में 'सुमति' के पद विशेष लोकप्रिय हैं। नीतिपरक होने के कारण साधारण जनता भी उनका उपयोग नित्य व्यवहार में करती है। सुमति के १००

पदों का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है । इसी प्रकार धम्मपद के भी १०० पदों का पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ है ।

तेलुगु के महान् कवि श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के 'भ्रमरगीतलु' का भी पद्यानुवाद दुबेजी ने किया है । पुस्तक रूप में यह अब तक प्रकाशित नहीं हो पाया है, 'साने गुरुजी मराठी पुस्तक है, दुबेजी द्वारा किया गया इसका हिन्दी गद्य अनुवाद 'नेशनल बुक ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

पद्यानुवाद के रूप में जो विशाल ग्रंथ 'ज्ञानगंगा' के नाम से अभी हाल में प्रकाशित हुआ है, वह दुबेजी की २०-२५ वर्ष की सतत साधना का परिणाम है । इस ग्रन्थ में तमिलनाडु के सन्त तिरुवल्लुवर, आन्ध्र प्रदेश के सन्त वेमना, कर्नाटक के क्रान्ति दृष्टा सर्वज्ञ, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, महाराष्ट्र के सन्त पंचायतन, पंजाब गुरुओं की वाणी से १००-१०० सुन्दर पद छाँटकर उन्हें पहले देवनागरी में लिप्यन्तरण किया गया, फिर उनका भावानुवाद दोहे में प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी के महान् कवि कबीर, तुलसी और रहीम के १०० पद भी छाँटकर इसमें जोड़े गये हैं । विविध रत्न शतक में आर्ष वाणी, पारसी वाणी, बंगला, असमिया, कुरान तथा बाइबिल के सुन्दर पदों का पद्यानुवाद दिया गया है । इस 'ज्ञान गगा' में अवगाहन करने वाला पाठक निश्चय ही इसके भीतर बहने वाली एक-सी चिन्तनधारा का स्पर्श सुख अनुभव करेगा ।

पद्यानुवाद के रूप में हिन्दी को इतना विपुल साहित्य देने वाले श्री दुबेजी सम्भवत: प्रथम साहित्यकार हैं । इस दृष्टि से उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान मिलेगा, ऐसा विश्वास है । ❋ ❋

रामेश्वरदयाल दुबे के अप्रकाशित साहित्य का प्रकाश

गो० ना० श्री०

वैदिक खिल-सूक्तियों की भाँति प्रत्येक प्रतिबद्ध साहित्यकार के अक्षय कोष का एक महत्वपूर्ण भाग अनिवार्य रूप से अप्रकाशित रहकर उसके व्यक्तित्व एवम् कृतित्व की अजस्र मुख्य धारा से असम्पृक्त रहता है, किन्तु साहित्य निकष पर प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं के बीच कोई अन्तर भेद नहीं है । साहित्य के अनुसंधाता भली प्रकार अभिज्ञ हैं कि किस तरह प्रख्यात साहित्यकारों की अति मूल्यवान अप्रकाशित रचनायें रद्दी की टोकरी से भी अनायास मिल जाती

हैं । ऐसी स्थिति में किसी कृती साहित्यकार को कृतित्व पर विचार करते समय प्रकाशित साहित्य भण्डार के साथ ही साथ उसके अछूते एवम् अन्धकार में पड़े अप्रकाशित साहित्य पर दृष्टि निक्षेप करना भी सर्वथा समीचीन है । इसी उद्देश्य से प्रस्तुत लेख में प्रख्यात साहित्यसेवी एवम् साहित्यकार रामेश्वरदयाल दुबे, जन्म १९०८ ई०, की अद्यतन अप्रकाशित रचनाओं को समान-दृष्टि से देखने एवम् परखने का प्रयास हुआ है ।

रचनाक्रम की दृष्टि से रामेश्वरदयाल की उपलब्ध अप्रकाशित काव्य-कृतियों में 'केवट पुष्पांजलि' (रचना काल १९३१–३२) नामक लघु-काव्य सर्वाधिक प्राचीन है । रामचरित मानस के केवट प्रसंग का आलम्बन लेकर इसकी रचना कवि ने गीतिका एवम् दोहा छन्दों के अन्तर्गत अपने विद्यार्थी जीवन में रमेश दुबे के अभिधान से की थी । (१) यही कारण है कि भावपूर्ण होते हुये भी इसके शिल्प में लेखन का नयापन स्वाभाविक रूप से प्रकट हुआ है । इसी काल में पं० रामनरेश त्रिपाठी के प्रसिद्ध खण्ड-काव्य 'पथिक' से प्रभावित होकर कवि-दुबे ने स्वदेश-प्रेम एवम् राष्ट्रीयता की भावनाओं के प्रवर्तन हेतु एक काल्पनिक कथा का आधार लेकर काव्य रचना प्रारम्भ की । (२) किन्तु किशोरावस्था का उत्साह कार्य को चरम परिणति देने में असफल रहा । फलस्वरूप यह अनाम काव्य अद्यतन अधूरा पड़ा हुआ है । इसकी कतिपय काव्य पंक्तियाँ उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत हैं ।

दुखित पथिक को द्वारे लखकर उसे कुटी में लाया ।
व्यजन डुलाकर प्रेम सहित फिर शीतल सुजल पिलाया ॥
× × ×
रूपसि ! रूप-शिखा प्रिय बनकर शलभ न मुझे बनाओ ।
कंजमुखी मन-मधुप हमारे को न और भरमाओ ॥

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में संस्कृत वर्णवृत्तों के आधार पर खड़ी बोली हिन्दी में प्रणीत प्रख्यात कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय-प्रवास' नामक महाकाव्य की हिन्दी जगत में धूम मची हुई थी । कवि दुबे के मानस पर इसके भाव और शिल्प का व्यापक प्रभाव पड़ा । उन दिनों सामान्य जनों में तुलसी के रामचरितमानस के समानान्तर गायन की विशिष्ट शैली और तर्ज के कारण राधेश्याम - रामायण की लोक प्रियता भी शिखर पर थी । अत: तत्कालीन रस - धर्म की इस लोक प्रवृत्ति से उत्साहित होकर कवि दुबे ने १९३४ ई० में "प्रिय - प्रवास" काव्य का पद्यानुवाद राधेश्याम - रामायण की इस —

केवट तनिक संकोच तज तुम बात मन की तो कहो ।
क्यों हिचकिचाते हो सखे सानन्द कारण तुम कहो ।

पाकर सखा पद आज केवट के न सुख का पार है।
गदगद गिरा है लोचनों से बह रही जलधार है।

तर्ज पर पूर्ण कर एक उल्लेखनीय कार्य किया। कवि से ज्ञात हुआ कि यह सम्पूर्ण कार्य एक वृद्ध महिला के सन्तोष के लिए किया गया था, जो कृष्ण चरित्र को सरल भाषा में सुनना चाहती थी। सत्रह सर्गों का यह काव्य एक सजिल्द पृष्ठहीन पुस्तिका में लिपिबद्ध है, जिसका नामकरण भी कवि द्वारा नहीं किया गया है। राधेश्याम-रामायण की अनुकरण पद्धति का उदाहरण निम्न प्रकार है—

साकार मूर्ति वह सुषमा की थे माधव फन पर राज रहे।
उत्फुल्ल नेत्र सस्मित आनन फन पर सानन्द विराज रहे।

साहित्य सृजन के प्रारम्भिक काल में कवि दुबे ने रीतिकालीन काव्य-परम्परा का प्रभाव ग्रहण करते हुये अनेक घनाक्षरी एवम् कवित्त छन्दों की रचना की। इनमें से कतिपय छन्द ब्रजभाषा में प्रणीत हैं। शेष खड़ी बोली हिन्दी में रचे गये हैं। इनका संग्रह एक पृष्ठहीन डायरी में रचनाक्रम से हुआ है। यह भी एक प्रकार का अनाम मुक्तक काव्य है जिसमें विभिन्न विषयों पर एकाधिक छन्दों की रचना हुयी है। कहीं-कहीं पर समस्या पूर्ति एवम् चमत्कारपूर्ण प्रयोग भी इसमें उपलब्ध होते हैं। इस संग्रह में जिन प्रमुख शीर्षकों के अन्तर्गत छन्द रचे गये हैं, उनमें प्रेम, लालसा, रहस्य, चित्र, प्रश्न, दुःख, प्रमाद, हलचल, निश्चय, धारणा आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। निदर्शन हेतु "कल्पना" शीर्षक पर आधारित एक छन्द उद्धृत किया जा रहा है —

निज हीरक हार लिये कर में
करती हो विहार सुभामिनी सी।
कितनों को विभोर किया करती
हँस के नव आगत कामिनी सी।
निज भावुक कोष लिये फिरती
पर हेतु सदा उन्मादिनी सी।
वरदान में मंजुल भाव दिया
करती कवि को तुम स्वामिनी सी।

हिन्दी के प्रबन्धात्मक काव्यों का प्रणयन प्रारम्भ करने से पूर्व रामेश्वर-दयाल गीतकार के रूप में पूर्णत: स्थापित हो चुके थे। उनके द्वारा रचे गये शताधिक गीत आठ सजिल्द डायरियों में रचनाक्रम से संग्रहीत हैं। समय समय पर विभिन्न प्रेरणाओं एवम् मानसिक उद्वेगों के फलस्वरूप प्रणीत इन गेय कवि-

ताओं में विषय की एकरूपता का संधान आयासपूर्वक ही किया जा सकता है। कविता के इसी भण्डार से कतिपय देश-भक्ति सम्बन्धी गीत 'माटी की महक' शीर्षक संकलन के अंतर्गत प्रकाशित हो चुके हैं जिनका प्रकाशन से पूर्व साफ-स्वच्छ ढंग से क्रमिक रूप श्रीमती कान्ति शर्मा, बाराबंकी ने सँवारा था। कुछ अन्य गीत स्फुट रूप से विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी यथासमय छपते रहे हैं। इसके अतिरिक्त शेष सभी गीत अद्यतन अप्रकाशित हैं। इन्हीं में से विषय की एकरूपता का आधार लेकर 'मधु गीत' नामक एक अप्रकाशित काव्य-संग्रह की पाण्डुलिपि भी श्रीमती कान्ति शर्मा द्वारा तैयार की गई थी जिसमें छियालिस श्रृंगारपरक गीत संकलित हैं। इन कविताओं में विप्रलंभ का प्राधान्य है इसीलिये पूर्वराग, मान, प्रवास एवम् करुण के चित्रोपम वर्णन इसमें उपलब्ध होते हैं इन गीतों में कवि की पीड़ा स्मृतियों आदि के रूप में संवेदना का प्रमुख उपादान बनी है—

क्या जाने क्यों आज तुम्हारी
याद बहुत ही आई।

× × ×

भीगी मेरी आँख यहाँ तो वहाँ तुम्हारे
उर में निश्चय मेघ भाव के छाये होंगे।

गीतकार की प्रेम भावना अपनी चरम परिणति की अवस्था में मनुजत्व का संधान सा करती प्रतीत होती है। सामान्यतः कवि एवं गीतकार नारी को आलम्बन मानकर श्रृंगारी भावनाओं की सृष्टि करते आये हैं, जिसमें उनका अपना प्रच्छन्न व्यक्तित्व आश्रय रूप में अनिवार्यतः विद्यमान होता है। इसके विपरीत रामेश्वर दयाल के अनेक गीतों में पुरुष को आलम्बन मानकर नारी की ओर से प्रेम भावनाओं की मार्मिक अभिव्यंजना हुयी है। नारी मनोविज्ञान के प्रति कवि का यह 'साधारणीकरण' वस्तुतः श्लाघ्य है।

वर्धा जैसे प्रमुख स्थान में दीर्घकाल तक कार्यरत रहने की अवधि में अनेकानेक साहित्यकारों तथा अन्य महापुरुषों का साहचर्य दुबेजी को प्राप्त हुआ। ऐसे विशिष्ट एवम् अविशिष्ट व्यक्तित्व वाले रचनाधर्मियों, कलाविदों तथा महामतियों के साथ भोगे हुये क्षण अतीत की मधुर स्मृतियों के रूप में उनके जीवन की उपार्जित निधियाँ हैं, जिन्हें महज अनुभूति के धरातल पर जीकर उन्होंने निःशेष नहीं किया अपितु अभिव्यक्ति के माध्यम से उन अनुभूतिपरक स्मृत्याभास को हिन्दी संस्मरण विधा का विषय बनाया है। इनमें से कुछ संस्मरण स्फुट रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। रामेश्वरदयाल दुबे का यह सम्पूर्ण स्मृति-साहित्य दो संकलनों में संग्रहीत है। प्रथम संकलन में हिन्दी के एकादश साहित्यकारों से हुयी भेंट, वार्ता और उनके प्रभावाभास का सरल एवम् प्रवाह-

पूर्ण भाषा में वर्णन हुआ है । द्वितीय संकलन साहित्येतर अति विशिष्ट महापुरुषों के औदार्य, सारल्य और व्यक्तित्व-व्यंजक संस्मरणों से आपूर्ण है ।

चित्र-कविता (रचना काल १९३३–३४) के रूप में रामेश्वरदयाल की लगभग तीस अन्य कवितायें एक एलबम में संग्रहीत हैं। इस अनाम एवम् पृष्ठहीन संकलन में एक ओर कल्याण आदि पत्रिकाओं में अत्यधिक भावपूर्ण एवम् दुर्लभ चित्र करीने से काटकर चपका दिये गये हैं । इन चित्रों के दूसरी ओर कवि ने चित्र से सम्बंधित सम्पूर्ण परिवेश को शब्द चित्रों के माध्यम से स्थापित किया है। दृश्य-बिम्बों के काव्य रूपान्तरण का यह प्रयास प्रख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा के 'यामा' नामक काव्य की याद दिलाता है ।

इस एलबम के कतिपय स्थल अत्यधिक भावपूर्ण हैं । कृष्ण-सुदामा मिलन से संबंधित चित्र में विषयगत नवीनता न होने के अन्तर कवि के आत्म निरीक्षण द्वारा वर्णनान्तर्गत वस्तु एवम् व्यापार की जो संश्लिष्ट योजना हुयी है उसके कारण ही प्रसंग नवीन संभावनाओं के अनूठे क्षितिज मिलते हैं । यथा—

द्विज को द्विजराज है कृष्ण मिला अब रंकता के मुख पंक भरी ।
यह कृष्ण सुदामा मिले हैं नहीं, करुणा ने सनेह की अंक भरी ।।

आलोच्य एलबम के एक अन्य चित्र में मनुष्य के शिरोभाग्य का कंकाल विजन मरघट के समीप देखकर भीत एवम् स्तब्ध रूपगर्विता का अद्भुत भावांकन हुआ है । कवि ने इसी आधार पर उसे रूपमर्दिता का जो स्वरूप प्रदान किया है, वह चित्र के सम्पूर्ण पर्यावरण को परिवेशित करने में सफल हुआ है ।

"अगर रूप का यही अन्त है तो सचमुच यह जीवन भार ।
जीवन की जय नहीं जगत में है जीवन की हार ।।"

इसी प्रकार अनेक सुन्दर चित्रों का भाव चित्रण कवि ने अपनी कविताओं में किया है । प्रकाश्य होने की सारी गुणवत्ता के होते हुए भी यह चित्र काव्य अब तक अप्रकाशित है ।

कवि दुबेजी का बाल साहित्य अत्यधिक समृद्ध है और उत्तम है । यही कारण है कि उनका अधिकांश बालोपयोगी साहित्य प्रकाशित है, फिर भी अनेक पाण्डुलिपियाँ अप्रकाशित पड़ी हैं ।

भारतीय इतिहास के प्रख्यात वीर चरित्रों और सत्तावनी क्रांति के दुर्धर्ष उन्नायकों का आलम्बन लेकर काव्य-संवाद शैली में कवि दुबे ने बालकों एवम् किशोरों के लिये संक्षिप्त ऐतिहासिक वृत्तों की रचना की, जिसमें राणा प्रताप, शिवा जी, झाँसी की रानी एवम् कुँवर सिंह आदि का विरदैत अथवा भावक सरल भाषा में अभिव्यंजित हुआ है । इतिहास के इन वीर चरित्रों पर पूर्वापर रचे गये साहित्य के प्रचुर भण्डार के कारण ही सम्भवत: यह शीर्षक विहीन

लघु चरित्र काव्य (रचना काल १९४९–५०) अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका।

काव्य विधा की अप्रकाशित रचनाओं में दो बाल-गीत संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम संग्रह के अन्तर्गत लगभग सौ गीतों की रचना कालक्रमानुसार हुई है, जिसे कालावधि की निश्चित परिधि में सीमायित करना कठिन है। इनमें से कुछ गीतों को विषय के अनुक्रम से सम्पादित करने का अपूर्ण कार्य भी हुआ है, जिसमें 'बादल सा जीवन पा जाऊँ' तथा 'माँ की जय, मिट्टी की जय' प्रभृति गीत सरस एवम् भावपूर्ण हैं। द्वितीय संग्रह में बीस कवितायें हैं जो प्रकृति के जड़ एवम् मानवेतर चेतन प्राणियों की आत्माभिव्यक्ति के रूप में हैं। इन कविताओं में पशु-पक्षियों तथा वृक्षादि के आत्मकथन द्वारा प्रकृति के उदात्त स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण कवि का प्रमुख अभिप्रेत रहा है। उसने गाय, कोयल, गौरय्या, हिरन एवम् वृक्ष आदि का आलम्बन लेकर मानवीकरण द्वारा देश की भावी पीढ़ी को उन्हीं उपादानों के कथ्य रूप में जो सन्देश देने का आयात किया है, वह कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

बाल साहित्य की गद्य विधा में रामेश्वरदयाल ने कथाकार की भूमिका निभाई है। बाल कहानी के रूप में उनकी अप्रकाशित कथायें दो प्रकार की हैं। प्रथम कोटि की कहानियाँ बालकों के चरित्र-निर्माण से सम्बन्धित बोध कथायें हैं जो एक पृष्ठहीन रजिस्टर आकार की पुस्तिका में संग्रहीत हैं। सरल भाषा-शैली में लिखी गयी इन शताधिक बोध-कथाओं को पढ़कर किशोर, युवा और प्रौढ़ तक लाभान्वित हो सकते हैं। शबरी आश्रम, श्रावस्ती अकाल, सोने की थाली, गड़रिया मन्त्री, सड़क के किनारे की शिक्षा, शिव जी के कान में तेल आदि इस संग्रह की प्रमुख कथायें हैं। दूसरी कोटि में "क्यों श्रेणी (सिरीज)" (रचना काल १९७५) की लगभग इकतालिस अप्रकाशित कहानियाँ हैं। इस श्रेणी की अन्य कथायें "बगुला सफेद क्यों?" तथा "कौआ काला क्यों?" नामक संग्रहों के अन्तर्गत पहले प्रकाशित हो चुकी हैं। इन बाल कहानियों का उद्देश्य कौतूहलवर्द्धक प्रश्नवाचकों द्वारा बालकों की जिज्ञासा को उद्‌बुद्ध करना है ताकि उनके अन्दर पठन-पाठन की प्रवृत्ति जाग्रत हो सके। इस संग्रह की कहानियाँ मनोरंजक होने के साथ ही साथ शिक्षाप्रद भी हैं। खरगोश के कान लम्बे क्यों?, समुद्र खारी क्यों?, शिव जी के गले में साँप क्यों? आदि "क्यों सिरीज" की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। यह सम्पूर्ण अप्रकाशित कथा-साहित्य अत्यधिक उपयोगी एवम् प्रकाश्य हैं, इसे तीन छोटे-छोटे कथा संकलनों के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है।

रामेश्वरदयाल दुबे के साहित्यकार का चरमोत्कर्ष संवेदना के उन गहरे सन्दर्भों में स्थापित होता है जहाँ सच्चे भावुक मन की कल्पना से कविता

प्राणदान बनती है । दुबेजी के अनेक खंडकाव्य — कोणार्क, सौमित्र, नूपुर, चित्रकूट, गोकुल, विशेष चर्चित और प्रशंसा के पात्र बन चुके हैं । सन् १९९० में उन्होंने 'बेलूर' खंडकाव्य रचा है । बेलूर कर्नाटक का एक कलित कलापूर्ण मन्दिर है और उसके साथ वैसी ही सुन्दर कहानियाँ जुड़ी हुई हैं । सन् १९९२ में कवि ने मन्दिर को विशिष्ट भावग्राही दृष्टि से देखा था मैसूर विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त प्रो० एन० नागप्पा की प्रेरणा पर श्री दुबेजी ने 'बेलूर' खंडकाव्य पूर्ण किया है, जो शीघ्र प्रकाशित होगा ।

"बेलूर" खण्ड काव्य में प्राचीन वस्तु-शिल्पियों के चरित्र और कला के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का अनूठा चित्रण हुआ है । यहाँ जीवन अथवा कला के प्रति कला की उपादेयता पर कोई विमर्श नहीं है और ना ही कलायें कला पर कोई निष्कर्षपूर्ण चिन्तन है । इसके विपरीत कवि का उद्देश्य चरित्र के उच्चादर्शों को प्रतिष्ठित करना रहा है ।

विभिन्न मुद्राओं की अभिव्यंजक अनगिनत छोटी-छोटी उत्कीर्ण नारी मूर्तियाँ ही विशेष रूप से बेलूर की कला-प्रसिद्धि का प्रमुख आधार है । इनमें से कुछ चुनी हुई अनुपम भित्ति मूर्तियों के भावानुभावों को बेलूर खंडकाव्य के अन्तर्गत रूपायित करने का का प्रयास हुआ है । उदाहरण निम्न प्रकार है —

पट परिधान हेतु सुमुखी ने ज्यों ही साड़ी खोली ।
पीछे हटी सहज भयभीता लगता आकृति बोली ॥
हाय राम ! साड़ी में वृश्चिक प्रभु ने मुझे बचाया ।
भय का गहरा भाव उमड़कर आनन पर है आया ॥

रामेश्वरदयाल के बहुविध साहित्य का शिल्पगत सौष्ठव उनकी प्रकाशित रचनाओं में भली प्रकार उद्भासित है । इस संबंध में सुधी समीक्षकों द्वारा काफी कुछ लिखा जा चुका है । अप्रकाशित साहित्य केवल इस संदर्भ में भिन्न है कि इसका एकांश रचनाकार के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में हैं । इसीलिये "केवट-पुष्पांजलि" प्रभृत्ति रचनाओं में शिल्प का वह चरमोत्कर्ष दृष्टिगत नहीं होता, जो परवर्ती अप्रकाशित साहित्य में भली भाँति विद्यमान है । इसमें सन्देह नहीं कि साहित्यकार दुबे का शिल्प विधान उनकी प्रसाद गुण प्रियता समानान्तर उत्तरोतर भास्वर होता गया है । बेलूर नामक प्रबन्ध इसका अन्यतम प्रमाण है ।

[५३१/१३७, बड़ा चाँदगंज, लखनऊ]

श्री दुबे जी की नाट्य - कला

डॉ॰ राकेश शर्मा

किन्हीं अन्य पात्रों के रूपों - चरित्रों - आचरणों - कार्यों - हावों - भावों को अभिनय के द्वारा सबके समक्ष लाकर के स्तंभित करते हुए उदात्त गुणों का प्रसरण कर देना ही नाट्य है। शैव तन्त्र की ६४ कलाओं में यह भी एक प्रमुख कला है जो अध्ययन और अनुशीलन का विशेष अंग है जिससे हर व्यक्ति ज्ञानी - समर्थ तथा कर्म - पारायण बनकर अच्छी तरह से सक्षम हो सकता है।

महत् कर्तृत्व की उद्भावनाओं को आकर्षक और सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करके सबके लिए प्रभावी बना देना असाधारण कलाकार अथवा नाटककार का ही काम है।

वास्तव में जिस प्रकार के नाटकों का प्रचलन वर्तमान काल में है, उनके लिखे जाने का प्रारम्भ भारतेन्दु - युग से ही हुआ देखा जाता है। उससे पूर्व के नाटक संस्कृत भाषा के नाटकों के अनुरूप अनुप्रासों से परिपूर्ण पद्यबद्ध प्रणाली में ही हुआ करते थे।

भारतेन्दु जी के पिता श्री गिरधरदास जी से लेकर राजा लक्ष्मण सिंह, राय देबी प्रसाद 'पूर्ण', पं॰ प्रतापनारायण मिश्र, पं॰ बालकृष्ण भट्ट, बाबू श्रीनिवास दास तथा बाबू राधाकृष्ण दास आदि ने इस विधा में प्रशंसनीय कार्य करके हिन्दी - साहित्य के भंडार को भरने में भरपूर सहायता की है। आगे चलकर पं॰ लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ॰ रामकुमार वर्मा और पं॰ रामेश्वरदयाल दुबे आदि ने इस क्षेत्र में जो निधि सँजोकर रख दी है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

प्रसंगवश यहाँ हमें पं॰ रामेश्वरदयाल जी दुबे की नाट्य - कला की ही ओर विशेष ध्यान देना है, जिन्होंने भाषा - भगिनी, अगस्त्य, सप्तपर्ण, कुकुड़ूँ - कूँ, बाँसुरी और डंडा, साँची के स्वर, ऋतु - चक्र, नर्मदा, बहादुरशाह जफर आदि कृतियों को समर्पित करके हमारी सभी अवस्थाओं की भावनाओं को मार्जित करने का अच्छा प्रयास किया है।

'भाषा - भगिनी' शीर्षक लघु नाटिका के माध्यम से श्री दुबेजी ने भारत की प्रमुख भाषाओं की अपनी - अपनी विशेषताओं की बात एक - दूसरे के सम्मुख रखवाई है। अन्ततोगत्वा सभी भाषाओं ने हिन्दी की ही महत्ता को स्वीकार करके उसे गौरवान्वित किया है। हिन्दी का स्वभाव ही शालीन है। वह कहती है—

"सब भाषाएँ प्यारी बहनें, सब का स्नेह मिला करता है।
सबकी उन्नति देख - देख कर, मानस कमल खिला करता हैं।"

'अगस्त्य' के अन्तर्गत नाना चमत्कारों को वैज्ञानिक रूप देकर नाटक के इतिहास में एक नया मोड़ दिया गया है । 'सप्तपर्ण' के अन्तर्गत सात एकांकी हैं । इनकी पात्र परिकल्पना निराली है । इनका सम्बन्ध सोना, चाँदी, मिट्टी, रंगों, व्याकरण, विराम चिह्नों, गणित, रेखागणित तथा प्रकृति आदि से है । यह कृति नैतिक विचारों से ओतप्रोत है । बात की बात में गणित ने जो तर्क दिये हैं, उससे अभिभूत होकर उपस्थित लड़कियाँ गा उठती हैं—

बड़ा जगत में धन से जन !
जन का सुख सन्तोष बढ़ाए वही धन्य है धन ।
लोभ न इतना बढ़े कि जिससे होए कलुषित मन ।
धन साधन हो, प्रेम साध्य हो, तभी सफल जीवन ।।

क्या ही नमनीय भावना है । बाल-मानस को उद्बोधित करके उनके ज्ञान को विकसित करने-हेतु 'कुकुडूँ-कूँ' के अन्तर्गत १२ बाल एकांकियों की सर्जना की गई है, जिसमें बाल-रुचि का पर्याप्त ध्यान रखा गया है । यथा—

"चिड़िया बनकर जायेंगे हम, गेहूँ-चावल खायेंगे हम ।
मौसी जी ने कहा 'फुर्र' तो, भर्र-भर्र उड़ जायेंगे हम ।।"

बाँसुरी और डंडा, सूर्य और चन्द्र, कलम और तलवार, सिकन्दर और डाकू, सोना और लोहा, प्रताप और पगड़ी आदि के आपसी संलापों के बीच जो तर्क-वितर्क का सहारा लेकर विरोधी भावों का प्रकटीकरण किया गया है, वह स्तुत्य है । इस व्याज से बालकों की तर्क शक्ति बलवती हो सकती है और सामने महत्वपूर्ण परिणाम आ सकते हैं । पाँच एकांकियों से आबद्ध कृति "साँची के स्वर" में भी दुबेजी का व्यक्तित्व झलकता दिखाई देता है, जिसकी परछाइँ मात्र से मानव-मन में तरलता और प्रकाश का प्रादुर्भाव हो सकता है । जरा वर्तमान कृति में इनके संवादों को तो देखिए, कितनी उदात्तता और सुन्दरता है :

(१) प्यार जब किसी भार को उठाता है तब वह भार नहीं रह जाता है, पुष्प-हार बन जाता है ।
(२) दूसरों के प्रति सहनशील होना विनम्रता का ही एक अंग है ।
(३) शांति ही जीवन-संगीत का स्थायी स्वर है ।
(४) विधाता ने नारी को उतना क्षीर नहीं दिया जितना नीर दिया है ।
(५) प्रणय और वात्सल्य के बीच बहने वाली धारा को ही तो नारी कहते हैं ।
(६) शौर्य और प्रेम जब एकत्र होते हैं तभी सच्ची अहिंसा का जन्म होता है ।

साँची से लेकर प० जवाहरलाल नेहरू के काल तक का सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय उत्कर्ष का भावात्मक निरूपण इसमें देखने को मिल जाता है । डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार — "श्री दुबेजी सिद्ध-हस्त

नाटककार हैं । उन्हों ने सभी आयु के व्यक्तियों के लिए नाट्य - रचना की है ।''

'ऋतु - चक्र' भी दुबेजी का एक बालोपयोगी नाटक है । इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं— माँ के रूप में वसुमती (पृथ्वी), बड़े बेटे के रूप में 'ग्रीष्म', ग्रीष्म की छोटी बहन 'वर्षा', शरद - हेमन्त - शिशिर तीनों मंझले भाई हैं, 'बसन्त' सब से छोटा भाई । इन पात्रों का सहारा लेकर दुबेजी ने प्राणों में नव जीवन का संचार करने वाली संजीवनी भर दी है, इस नाटक में । यहाँ उनके अबोल भी बोलते रहे हैं । नाटक के अन्त में वसुमती अपने छोटे बेटे बसन्त से कहती है —

"बेटा ! केवल मुँह से नहीं, हृदय के अन्तरतल से माता अपने बच्चों को अहर्निशि आशीष दिया करती है । बेटा ! तू इसी तरह सदा फूलों में खेले और शूलों तक में शृंगार भरता रहे । कुसुम जैसी मुस्कराने वाली तेरी प्रत्येक कामना फलवती बने — यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है ।"

१४ एकांकियों का संग्रह है, 'नर्मदा' । इसके सभी पौराणिक एवं ऐतिहासिक एकांकी प्रभावशाली, शोधपूर्ण भावना से भावित होकर लिखे गए हैं । नवयुवकों के लिए यह परम उपयोगी हैं । इनका सरल ढंग से मंचन किया जा सकता है । एक स्थान पर दुबेजी के पात्र 'तात्या टोपे' कहते हैं — "जब आदमी दिल की गहराई में उतर जाता है, तब उसका हर शब्द रहस्यमय बन जाता है ।" यह बात स्वयं दुबेजी पर भी घटित होती है । उनका साहित्य भी इसका साक्षी है ।

'बहादुर शाह जफर' दुबेजी का नवीन ऐतिहासिक नाटक है । यह भी सबके लिए एकता, स्वाभिमान, देश - प्रेम का प्रतीक और सशक्त प्रेरणा का अजस्र स्रोत है । करुण प्रसंग वाले इस नाटक की प्रस्तुति दुबेजी की राष्ट्रीय - स्वातन्त्र्य की भावना का ज्वलन्त प्रमाण है ।

श्री दुबेजी के सम्पूर्ण एकांकी और नाटक साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि उसमें पर्याप्त मनोरंजन की प्राप्ति होती है । सूक्ष्मतर साहित्यिक और उद्देश्य की सिद्धि दृष्टिगोचर होती है तथा सौंदर्यानुभूति के साथ - साथ विशेष जीवन दृष्टि मिलती है । वातावरण और पृष्ठभूमि का पूरा विधान सामने आ जाता है । आँगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य आदि सभी अभिनय - तत्व इनके नाटकों में रंग मंचीय संकेत देते चलते हैं । नाटककारों के बीच श्री दुबेजी अपनी इस कला में निश्चय ही निष्णात माने जाएँगे । मेरा यह एकान्त मत है ।

[हिन्दी विभाग, सैनिक विद्यालय, तिलैया, बिहार]

शुभ कामनाएँ

स्वस्तिकृत

जो महात्मा विद्वानों में पूजनीय हैं और जो पुरुषों में ज्ञान एवं प्रेरणा देने वाले; अमर कीर्ति वाले तथा धर्मज्ञ हैं, वे हमें उत्तम ज्ञान का उपदेश करते रहें और परमात्मा उन्हें अनेक सुखों से युक्त करता हुआ चिरजीवी करे ।

[ऋग्० ७ – ३५ – १५]

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा संचालित अध्यापन मंदिर के अध्यापक तथा व्यवस्थापक का काम श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी प्राय: पाँच वर्षों तक करते रहे हैं । इनकी विद्वता, परिश्रम और उत्साह से पूरा-पूरा लाभ मंदिर को मिला। समिति द्वारा संचालित परीक्षाओं में भी दुबेजी परीक्षक और निरीक्षक का काम करते रहे हैं और इसमें भी उन्होंने अपनी योग्यता और अध्यवसाय का पूरा प्रमाण दिया है । मुझे यह लिखते बड़ी प्रसन्नता होती है कि दुबेजी ने अपने कर्तव्य-पालन से उन सब लोगों को, जिनका संबंध उनके काम से आता रहा है, बराबर संतोष देते रहे हैं ।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद
१४-४-४२

श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी ने हमारे अध्यापन मंदिर में करीब-करीब पाँच साल काम किया । इस मुद्दत में उन्होंने मुख्यतया अध्यापक तथा व्यवस्थापक का काम किया । संस्था का हेतु और कार्य समझकर उसके साथ तदाकार बनने का इनका प्रयत्न ही इनकी सफलता की कुंजी थी । इनके सहयोग से मुझे हमेशा संतोष और सहायता मिलती रही । साहित्य का अध्ययन हमेशा बढ़ाते रहना चाहिए, यह बात इनके ध्यान में प्रथम से बैठी है । इस कारण दुबेजी प्रगतिशील अध्यापक रहे हैं ।

काका साहब कालेलकर
१०-५-४२

आप जल्दी में कोई काम मत कीजिए । मेरे पास आपके लिए दूसरे काम भी हैं, किन्तु राष्ट्रभाषा प्रचार से आपका हटना मुझे उचित नहीं लगता। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के काम को आगे बढ़ाने में आपका विशेष हाथ रहा है । काम करने वालों को प्राय: अनुचित आक्षेपों का सामना करना पड़ता है ।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन
१५-३-४६

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जी से प्रेरणा प्राप्त कर सन् १९३७ में श्री रामेश्वरदयाल दुबे हिन्दी का प्रचार करने वर्धा पहुँचे, जहाँ उन्हें राष्ट्रीयता महात्मा गान्धी, आचार्य बिनोवा भावे, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, काका साहब कालेलकर आदि

महान् व्यक्तियों का सान्निध्य मिला और विभिन्न पदों पर रहकर आपने चालीस वर्ष तक हिन्दी का प्रचार किया। साथ ही साहित्य साधना करते हुए अनेक पुस्तकें लिखीं। यह बहुत ही प्रशंसनीय और गौरव की बात है।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है, जिसे उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में श्री दुबेजी के योगदान को सदैव याद रखा जायेगा।

राज्यपाल
उत्तर प्रदेश

बी० सत्यनारायण रेड्डी
२६ – ७ – ९१

लगभग ५० वर्ष पहले श्री रामेश्वरदयाल दुबे के साथ मिलकर काम करने का सौभाग्य मुझे मिला था। वे दिन मुश्किल से भूल सकता हूँ। पूज्य राजा जी के बुलावे पर मैं वापस मद्रास चला गया। अगर दुबेजी के साथ दो-चार साल वर्धा रह जाता तो मेरी साहित्यिक रुचि बढ़ जाती। उनके सम्पर्क में रहकर मैं एक भाषा शिक्षक और छोटा-मोटा साहित्यकार माने-जाने की कोशिश में रहता। किंतु वे दिन मैं भूला नहीं हूँ जब श्री दुबेजी, श्री श्रीमन्नारायण जी तथा अन्य कुछ साथी मिलकर समिति के भविष्य के सम्बंध में (१९३६-१९३८) निरंतर विचार विनिमय में लगे रहते थे।

विगत वर्षों में श्री दुबेजी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा को अपनी सेवा का माध्यम बनाकर शिक्षा साहित्य और संगठन के क्षेत्र में जो मौलिक कार्य किया है, उसके महत्व को मैं पहचानता हूँ, उसकी बड़ी तारीफ करता हूँ।

आदि मंत्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

मो० सत्यनारायण
२० – १० – ९०

श्री दुबेजी देश के उन इनेगिने रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं में से हैं, जिन्होंने अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य हिंदी द्वारा राष्ट्र की अविरल सेवा करने का बनाया है। इस महत्वपूर्ण कार्य में उनकी एकाग्रता व निष्ठा अत्यंत सराहनीय रही है। यह राष्ट्रीय प्रवृति उनके जीवन का अभिभाज्य अंग बन गयी है। हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति उनकी आत्मा सचमुच अद्भुत है।

भूतपूर्व राज्यपाल
गुजरात

श्रीमन्नारायण
२४ – ५ – ४२

'भारत जननी एक हृदय हो' के मूलमंत्र को अपनाकर राष्ट्रभाषा प्रचार मिति, वर्धा अपनी स्थापना से लेकर आज तक समस्त भारतीयों के मन में ष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने तथा एकता और अखंडता की भावना उत्पन्न रने का काम अविरल रूप से कर रही है। श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने मानसा चा, कर्मणा, बड़ी श्रद्धा, निष्ठा तथा समझ-बूझ से समिति के जन्म से लेकर क लम्बी अवधि (४० वर्ष) तक उसकी सेवा की है। एक तरह से वे समिति-य हो गये। समिति के सहायक मंत्री तथा परीक्षा मंत्री के रूप में राष्ट्रभाषा चार समिति के कार्य को विशाल, व्यापक तथा सशक्त बनाने में आपका श्रेष्ठ-म योगदान रहा है।

श्री दुबेजी एक अच्छे साहित्यकार हैं। विविध विधाओं में आपने बहुत छ लिखा है। आपका प्रसिद्ध हिंदी-गीत 'भारत जननी एक हृदय हो' सर्वो-खी हो गया है। समिति की स्वर्ण जयंती के अवसर पर समिति के ५० वर्षों कार्यकलापों का दिग्दर्शन कराने वाले वृहत ग्रंथ—'स्वर्णांकिता' आपने ही यार किया है। श्री दुबेजी जैसे समर्पित और सेवाभावी कार्यकर्त्ता का सहयोग मिति को मिला, आज भी मिल रहा है — यह समिति का अहोभाग्य है।

अध्यक्ष — **मधुकर राव चौधरी**

हाराष्ट्र विधान सभा — १२ – ११ – ९०

श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी ने अपने जीवन में दीर्घकाल तक हिंदी की जो रिश्रमपूर्वक सेवा की है और अभी भी कर रहे हैं उसके लिये वे धन्यबाद के ात्र हैं। हर हिंदी सेवी आपके प्रति विनम्रता से आदरांजलि समर्पित करता हेगा। श्री दुबेजी के द्वारा रचित लोकप्रिय 'हिन्दी-गीत' न केवल राष्ट्रभाषा चार समिति में वरन् सभी हिंदी सेवी संस्थाओं के कार्यक्रमों में गाया जाता । 'हिन्दी-गीत' ने श्री दुबेजी को अमर कर दिया है। यह गीत राष्ट्रीय भावना ी प्रेरणा देता रहेगा।

कोषाध्यक्ष — **शंकरराव लोंढे**

ाष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा — ५ – १ – ९१

भाई श्री रामेश्वरदयाल दुबे के कर्मठ जीवन से मैं भलीभाँति परिचित । किसी विवरणिका की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वारा लिखा गया 'हिन्दी-ीत' प्रांत-प्रांत में उनका परिचय कराये है।

महान् व्यक्तियों का सान्निध्य मिला और विभिन्न पदों पर रहकर आपने चालीस वर्ष तक हिन्दी का प्रचार किया । साथ ही साहित्य साधना करते हुए अनेक पुस्तकें लिखीं । यह बहुत ही प्रशंसनीय और गौरव की बात है ।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है, जिसे उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में श्री दुबेजी के योगदान को सदैव याद रखा जायेगा ।

राज्यपाल
उत्तर प्रदेश

बी० सत्यनारायण रेड्डी
२६ – ७ – ९१

लगभग ५० वर्ष पहले श्री रामेश्वरदयाल दुबे के साथ मिलकर काम करने का सौभाग्य मुझे मिला था । वे दिन मुश्किल से भूल सकता हूँ । पूज्य राजा जी के बुलावे पर मैं वापस मद्रास चला गया । अगर दुबेजी के साथ दो-चार साल वर्धा रह जाता तो मेरी साहित्यिक रुचि बढ़ जाती । उनके सम्पर्क में रहकर मैं एक भाषा शिक्षक और छोटा-मोटा साहित्यकार माने-जाने की कोशिश में रहता किंतु वे दिन मैं भूला नहीं हूँ जब श्री दुबेजी, श्री श्रीमन्नारायण जी तथा अन्य कुछ साथी मिलकर समिति के भविष्य के सम्बंध में (१९३६–१९३८) निरंतर विचार विनिमय में लगे रहते थे ।

विगत वर्षों में श्री दुबेजी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा को अपनी सेवा का माध्यम बनाकर शिक्षा साहित्य और संगठन के क्षेत्र में जो मौलिक कार्य किया है, उसके महत्व को मैं पहचानता हूँ, उसकी बड़ी तारीफ करता हूँ ।

आदि मंत्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

मो० सत्यनारायण
२० – १० – ९०

श्री दुबेजी देश के उन इनेगिने रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं में से हैं, जिन्होंने अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य हिंदी द्वारा राष्ट्र की अविरल सेवा करने का बनाया है । इस महत्वपूर्ण कार्य में उनकी एकाग्रता व निष्ठा अत्यंत सराहनीय रही है । यह राष्ट्रीय प्रवृति उनके जीवन का अभिभाज्य अंग बन गयी है । हिंदी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति उनकी आत्मा सचमुच अद्भुत है ।

भूतपूर्व राज्यपाल
गुजरात

श्रीमन्नारायण
२४ – ५ – ४२

'भारत जननी एक हृदय हो' के मूलमंत्र को अपनाकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा अपनी स्थापना से लेकर आज तक समस्त भारतीयों के मन में राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने तथा एकता और अखंडता की भावना उत्पन्न करने का काम अविरल रूप से कर रही है। श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने मानसा वाचा, कर्मणा, बड़ी श्रद्धा, निष्ठा तथा समझ-बूझ से समिति के जन्म से लेकर एक लम्बी अवधि (४० वर्ष) तक उसकी सेवा की है। एक तरह से वे समिति-मय हो गये। समिति के सहायक मंत्री तथा परीक्षा मंत्री के रूप में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्य को विशाल, व्यापक तथा सशक्त बनाने में आपका श्रेष्ठ-तम योगदान रहा है।

श्री दुबेजी एक अच्छे साहित्यकार हैं। विविध विधाओं में आपने बहुत कुछ लिखा है। आपका प्रसिद्ध हिंदी-गीत 'भारत जननी एक हृदय हो' सर्वो-मुखी हो गया है। समिति की स्वर्ण जयंती के अवसर पर समिति के ५० वर्षों के कार्यकलापों का दिग्दर्शन कराने वाले वृहत ग्रंथ —'स्वर्णांकिता' आपने ही तैयार किया है। श्री दुबेजी जैसे समर्पित और सेवाभावी कार्यकर्त्ता का सहयोग समिति को मिला, आज भी मिल रहा है — यह समिति का अहोभाग्य है।

अध्यक्ष
महाराष्ट्र विधान सभा

मधुकर राव चौधरी
१२ – ११ – ९०

श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी ने अपने जीवन में दीर्घकाल तक हिंदी की जो परिश्रमपूर्वक सेवा की है और अभी भी कर रहे हैं उसके लिये वे धन्यबाद के पात्र हैं। हर हिंदी सेवी आपके प्रति विनम्रता से आदरांजलि समर्पित करता रहेगा। श्री दुबेजी के द्वारा रचित लोकप्रिय 'हिन्दी-गीत' न केवल राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में वरन् सभी हिंदी सेवी संस्थाओं के कार्यक्रमों में गाया जाता है। 'हिन्दी-गीत' ने श्री दुबेजी को अमर कर दिया है। यह गीत राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा देता रहेगा।

कोषाध्यक्ष
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

शंकरराव लोंढे
५ – १ – ९१

भाई श्री रामेश्वरदयाल दुबे के कर्मठ जीवन से मैं भलीभाँति परिचित हूँ। किसी विवरणिका की आवश्यकता नहीं है। उनके द्वारा लिखा गया 'हिन्दी-गीत' प्रांत-प्रांत में उनका परिचय कराये है।

श्री दुबेजी ने एकनिष्ठ होकर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के माध्यम से एक पवित्र उद्देश्य को लेकर हिंदी की सेवा की है। उनका यह अविराम सेवा-भाव सराहनीय है हिन्दी साहित्य एवं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संसार में उनका स्वनाम धन्य है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

सभापति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सन् १९४२ से ५२ के आरंभ तक दो सहयोगी बैल एक साथ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के जुए में जुते रहे। जब एक कंधे का भार बहुत बढ़ गया तो वह अपने कंधे का भार सहयोगी श्री रामेश्वरदयाल दुबे के कंधे पर डालकर और अपने स्थान पर एक और सहयोगी बैल जुटाकर भाग खड़ा हुआ। जब कभी किसी को उस बैल की याद आयेगी तो यह दो गाथायें भी साथ याद आ जायेंगी।

अवकोपेन जिने कोधं
असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं समेत
सच्चेय अलीक वादितं ॥ धम्मपद ॥

माता यथा तियं पुत्रं
आयुसा एक पुत्र मनुरक्खे।
एवम्पि सण्व भूयेसु
मानसं भावये अपरिभाषं ॥ सुत्तनिवात ॥

पूर्व मंत्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

भदंत आनंद कौसल्यायन
६ – १ – ५२

श्री रामेश्वरदयाल दुबे हिन्दी के वरिष्ठ प्रचारक, साहित्य की विविध विधाओं के सुधी लेखक, खंडकाव्यों तथा बाल-साहित्य के निष्णात कृतिकार हैं। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन जी की प्रेरणा से हिन्दी-प्रचार का महामन्त्र लेकर, स्वतन्त्रता संघर्ष एवं राष्ट्रीय भावधारा से अनुप्रेरित होकर निष्ठापूर्वक राष्ट्रभाषा का प्रचार कार्य किया है। श्री दुबेजी "भारत जननी एक हृदय हो" गीत के गायक तथा हिन्दी भाषा और साहित्य के अनन्य साधक हैं।

प्रधान मन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

डॉ० प्रभात शास्त्री
२३ – ११ – ८६

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के विकास, विस्तार एवं अस्तित्व, उसकी महत्ता एवं विश्व व्यापक ख्याति में जिन व्यक्तियों ने समर्पित भाव से काम किया है, उनमें श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी का योगदान अनुपम रहा है । वास्तव में देखा जाय तो वे समिति के एक कार्यकर्ता या पदाधिकारी ही नहीं, बल्कि उसके आधार-स्तम्भ थे ।

सन् १९४२ से १९५४ तक की विषम परिस्थितियों को कभी भुलाया नहीं जा सकता । उस अवधि में समिति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया था, तब दुबेजी ने राष्ट्रभाषा एवं समिति के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा रखकर रात-दिन काम किया था । हिन्दी प्रचार के लिये वे जहाँ भी गये, उन्होंने आत्मीयता के भाव से ऐसा मधुर सम्बन्ध स्थापित किया कि अनगिनत व्यक्ति उनके परिवार के अंग बन गये । राष्ट्रभाषा प्रचारकों के लिये वे सदा प्रेरणा के स्रोत रहे । समिति की आज की समृद्धि एवं उसकी विशालता एवं महत्ता के मूल में श्री दुबेजी का त्याग असाधारण है ।

मन्त्री-संचालक
प्रा० राष्ट्रभाषा सभा, बम्बई

कान्तिलाल जोशी
२६-१०-९०

श्री दुबेजी ने पिछले अनेक वर्षों से राष्ट्रभाषा प्रचार के रचनात्मक कार्य में अपना सक्रिय सहयोग देकर गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की बहुत बड़ी सेवा की है । उसके लिये समिति हार्दिक धन्यवाद देती हुई उनका अभिनन्दन करती है ।

मंत्री-संचालक
प्रा० रा० भा० प्र० समिति, गुजरात

जेठालाल जोशी

बनाना आसान नहीं । बिगाड़ना तो सब जानते हैं । सन् १९४२-१९४६ और ९९५१ में समिति पर जब संकट आया तो परीक्षामंत्री श्री दुबेजी ने बड़ी सूझ-बूझ से अपने कार्यकर्ताओं के सहयोग से समिति को जिंदा रखा । परीक्षा विभाग का काम ही प्रधान है, उसे जिस प्रकार श्री दुबेजी ने सम्हाला है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई है ।

मंत्री-संचालक
राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, उत्कल

अनुसूया प्रसाद पाठक
१५-३-५२

कोई व्यक्ति कभी किसी ममता भरे घर में ४ दिन बिताता है तो वह उसके लिए स्वर्ग बन जाता है, तब जब हम दशकों वर्ष दुबेजी की स्नेह भरी क्रोड़ में पले-पुसे, तब उनको कैसे भुलाया जा सकता है ।

मंत्री-संचालक — पं० मु० डाँगरे
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, महारष्ट्र — २५ – ८ – ७८

जहाँ तक वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के निर्माण में योगदान का प्रश्न है, वहाँ दुबेजी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने ४० वर्षों के कार्यकाल में समिति को प्रगति की ओर ले जाते हुए सुदृढ़ संस्था के रूप में खड़ा कर दिया है । परीक्षा प्रणाली की जो परम्परायें आपने स्थापित की हैं, वे वर्धा समिति को सदैव बुराइयों से बचायें रखेंगी ।

मंत्री संचालक — बैजनाथ प्रसाद दुबे
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, म०प्र० — २० – ५ – ७७

अब तो वे लखनऊ में,हम वृन्दाबन में पर-बात १९४२ की है । मैं उन दिनों पूज्य बापू के सेवाग्राम-आश्रम में रहता था और उनके हरिजन-सेवक (हिन्दी साप्ताहिक) के सम्पादन में सहयोग देता था । आश्रम से वर्धा जाना-आना होता था । वहीं भाई रामेश्वरदयाल दुबे से परिचय हुआ । यह परिचय इतना घनिष्ट हो गया कि मैं उनके प्रेम-परिवार का एक सदस्य बन गया । एक साहित्य रसिक-विनोदी मित्र पाकर मेरी वर्धा-यात्रा अत्यन्त आनन्ददायक रही ।

भाई दुबेजी की अपनी एक दुनिया थी जिसमें वे हमेशा खोये-खोये से मस्त रहते थे । मेरे विशेष आग्रह पर आश्रम को निकट से देखने के लिए एक बार वे सेवाग्राम-आश्रम में तीन दिन रहे थे । पहली रात का अनुभव अनोखा रहा । खाट न मिलने से हम लोग नीचे चट्टानों पर लेटे थे । रात्रि में उनकी नींद खुली, अचानक उन्होंने देखा कि उनकी चटाई पर एक बड़ा बिच्छू उन्हें निकट से दर्शन दे रहा है । कुशल हुई कि उसने काटने का प्रसाद नहीं दिया फिर तो कई बार मेरे कहने पर भी वे कभी आश्रम में रहने को राजी न हुए। उनका उत्तर था — "ना बाबा ना" ।

पडित दुबेजी को राष्ट्रभाषा प्रचार की लम्बी-चौड़ी दुनिया में कौन नहीं जानता । राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के हर कागज-पत्र पर उनकी मुस्कान भरी मुहर रहती थी ।

जीवन के उत्तर काल में भी वे निरन्तर हिन्दी की निष्ठापूर्वक सेवा कर रहे हैं। उन्हें कौन भूल सकता है ? आज भी वे याद आते हैं — बहुत याद आते हैं।

प्रबंधक
प्रेम महाविद्यालय, वृन्दाबन

कमलेश भारतीय

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सहायक मंत्री तथा परीक्षामंत्री श्री रामेश्वर-दयाल दुबेजी ने समिति के प्रारंभ काल से समिति की जो सेवा की है, वह इस संस्था के ही नहीं अपितु हिंदी-प्रचार के इतिहास में भी अविस्मरणीय रहेगी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और हिन्दी के तपस्वी संत श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के आदर्श चरण चिन्हों पर चलते हुए दुबेजी ने "सादा जीवन उच्च विचार" के सूत्र को चरितार्थ कर दिखाया है। श्री दुबेजी विनम्र व्यक्ति हैं और विनोदी भी।

दक्षिण अफ्रीका निवासी हम राष्ट्रभाषा प्रेमी, विद्यार्थी, परीक्षार्थी, परीक्षक, निरीक्षक, और केन्द्र व्यवस्थापकों के लिये तो दुबेजी का नाम समिति का पर्याय रहा है। भारत भूमि से सहस्रों मील दूर बैठे हुए हम हिंदी-प्रेमी लोग हिंदी के इस पुनीत पुजारी के प्रति हार्दिक कृतज्ञ बने रहेंगे।

अध्यक्ष
हिन्दी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ्रीका

नरदेव वेदालंकार
१ – ११ – ७९

श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी स्वभाव से अत्यन्त सरल और मृदुल हैं। उनके साथ क्षणिक सम्पर्क में भी आने वाला व्यक्ति उन्हें आत्मीय जानने लगता है।

सन् १९४२ में वे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के सहायक मंत्री और परीक्षामंत्री बने। उनके कार्यकाल में समिति का परीक्षा विभाग सन्तुलित और व्यवस्थित ही नहीं हुआ बल्कि उसने एक मानदंड बनाया और समिति का कार्य क्षेत्र बढ़ा।

संस्था संघ की ओर से संस्थाओं के लिए परीक्षा नियमावली बनाने के लिए एक समिति गठित की गई थी, जिसके दुबेजी एक सदस्य थे। दुबेजी के सुझाव इतने सुलझे हुए और उपयोगी थे कि उनके सहयोग से समिति का काम सरल हो गया। संस्था संघ के सदस्य के नाते भी उनके सुझावों का लाभ संघ को मिलता रहा। हिन्दी के प्रति दुबेजी की निष्ठा और लगन प्रेरणाप्रद है।

हिन्दी संस्थान
नई दिल्ली

जगदीश प्रसाद शर्मा

सौम्यता और सादगी की प्रतिमूर्ति पं० रामेश्वरदयाल दुबे एक कर्मठ कार्यकर्ता हैं । राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के महत्वपूर्ण पदों पर रहकर बड़ी सूझ-बूझ, परिश्रम और निष्ठा से हिन्दी का प्रचार तो उन्होंने किया ही, साथ ही माँ सरस्वती के मन्दिर में विविध विधाओं द्वारा साहित्य - सुमन भी अर्पित किये हैं ।

मेरे लिये तो पंडित जी सदा प्रेरणा के स्रोत रहे हैं । उनका अपार स्नेह पाकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ । हिन्दी प्रचार के क्षेत्र में जो भी कुछ मैं कर रहा हूँ या कर सकूँगा, उसके प्रेरक - मार्गदर्शक पंडित जी ही हैं ।

मंत्री - संचालक
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, विदर्भ

कृष्णवीर चौहान
२५ – १२ – ९०

हिन्दी साहित्य की विपुल सेवा तथा दीर्घकाल तक हिन्दी - प्रचार का कार्य करने वाले श्री दुबेजी से मैं पिछले २५ वर्षों से परिचित हूँ । अपनी बहन अथवा पुत्री के समान मान कर वे मुझे स्नेह देते रहे और हमारी संस्था को उनका अमूल्य मार्गदर्शन सदैव मिलता रहा है । हमारी संस्था - पत्रिका में उनके लेख लगातार ग्यारह वर्ष से सतत छपते रहे हैं, जिसके कारण पत्रिका लोकप्रिय बनी है । निश्चय ही दुबेजी की हिन्दी - सेवाओं के लिये हिन्दी - संसार चिर ऋणी रहेगा ।

सचिव
कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति

वी० एस० शांताबाई

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा संचालित राष्ट्रभाषा अध्यापन मन्दिर में सम्मिलित होने के लिये सन् १९३७ में वर्धा पहुँचा था । श्री दुबेजी मन्दिर में शिक्षक और व्यवस्थापक थे । दुबेजी निकट अतीत में कश्मीर से लौटे थे और मैं आध्यात्मिक क्षेत्र नील सागर की बेलाभूमि (पुरी) से वहाँ पहुँचा था । मणि कंचन जैसे हम दोनों के हृदय मिल गये । वयस, रंग, अनुराग, योग्यता ग्राहकता, कलाप्रेम और हास्यरस दोनों के हृदयों को एक साल तक प्लावित करते रहे । परस्पर प्रीति हो गई ।

यह प्रीति प्रस्फुटित कमल के समान अब भी हम दोनों के हृदय में सुरभि फैला रही है । ऐसा लगता है कि हम दोनों अगले जन्म में भी फिर मिलकर कहीं जन्म लेंगे ।

सचिव
ओड़िसा राष्ट्रभाषा परिषद्, पुरी

नरसिंह नन्द शर्मा

आपने अपने राष्ट्रभाषा - प्रचार के कर्त्तव्य - पथ में खूब देखा, खूब समझा, खूब सहा है, आपके धैर्य और श्रम ने। आप अपने इस श्रम को तप:पूत बनाते जायँ — यही प्रभु से प्रार्थना है। बहुत दिनों से आप से बातचीत नहीं हुई। एक बार खंडवा ही आ जाइये।

माखनलाल चतुर्वेदी
७ – ८ – ४६

कोणार्क पढ़ लिया। अच्छा लगा, इसका कहना ही क्या। बीच - बीच में सुन्दर उक्तियाँ और भी आकर्षक लगीं।

आपको एक उलाहना भी देना है। आपका घर आना जाना इसी ओर से होता है परन्तु आपने कभी यहाँ रुकने की कृपा नहीं की। ऐसा क्यों? ब्राह्मण की सेवा करने का मौका तो दीजिए।

मैथिलीशरण गुप्त
२५ – १२ – ५१

कोणार्क मिला। सच मानिये कि प्रथम सर्ग खोलते ही पथिक की याद आ गई। काव्य सरस, सरल और सुबोध है। पृष्ठ ३५, ३६, ३७, आदि की कवितायें इतनी अच्छी हैं कि हृदय आनंद से भर जाता है किन्तु यही रस सर्वत्र छलकता है।

देखता हूँ, आपका बुढ़ापा कविता में ही परिपाक खोज रहा है।

रामधारी सिंह दिनकर
५ – ५ – ६२

आपकी कलम का लोहा मैं बहुत दिनों से मानता हूँ। मैं क्या सारा हिन्दी-जगत मानता है। आप के एकांकियों को बड़े चाव से पढ़ता हूँ। आपने राष्ट्रभाषा समिति द्वारा हिन्दी-प्रचार का जो कार्य किया है, वह सदा स्मरणीय रहेगा।

व्योहार राजेन्द्र सिंह
१७ – ४ – ७३

आप लखनऊ आये, पर दुर्भाग्यवश भेंट नहीं हो सकी। आपकी साहित्यिक सेवा निरंतर होती है — यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होती है। आपके दोनों खण्ड-

काव्य अभी तक तो मुझे नहीं मिले हैं, लेकिन आशा है कि मिल जायेंगे । आपने हिन्दी-सेवा का निरंतर कार्य किया है, इसकेलिये हिन्दी-जगत आपका चिर ऋणी रहेगा ।

हजारीप्रसाद द्विवेदी
२५ – ८ – ७५

आपकी पुस्तकों पर लिखूँगा । ये कृतियाँ स्वयं ही इतनी सशक्त हैं कि मेरे सर्टीफिकेट की मुखापेक्षी नहीं हैं । आप तो स्वयं सिद्ध साहित्यकार हैं, सम्मतियों से ऊपर । आपका नाम ही समालोचना का प्रमाणपत्र है ।

सोहनलाल द्विवेदी
१ – १ – ८०

श्री रामेश्वरदयाल दुबे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से जुड़े हुए बड़े कर्मठ, विनम्र, साहित्यप्रेमी, शिक्षक, पत्रकार, और रचनात्मक कार्यकर्ता रहे हैं । गांधी-नीति में वे विश्वास करते रहे । स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया । बापू और आचार्य विनोवा की सन्निकटता पाई । काका कालेलकर, जमनालाल बजाज दादा धर्माधिकारी, हरिहर शर्मा, आशा देवी तथा आर्यनायकम, प्यारेलाल, महादेव भाई देसाई आदि अनेक कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आये ।

आगे चलकर दुबेजी ने विपुल साहित्य की रचना भी की है । हिन्दी प्रचार के साथ दुबेजी का नाम सदा जुड़ा रहा है और जुड़ा रहेगा ।

भारतीय भाषा परिषद्
कलकत्ता

प्रभाकर माचवे

पं० रामेश्वरदयाल दुबे के सरल, सरस एवं कर्मठ व्यक्तित्व से मैं लगभग ५० वर्ष से परिचित हूँ । दुबेजी के कृश दिखने वाले शरीर में बलिष्ठ आत्मा का निवास है । उनकी सीधी साधु वाणी हास्य के सीकर बिखेरती चलती है । बच्चों के बीच वह अपने सही रूप में होते हैं ।

राष्ट्रभाषा को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने में दुबेजी का महत्वपूर्ण हाथ है । देश में राष्ट्रभाषा प्रचार के वे जीवंत इतिहास है । 'भारत जननी एक हृदय हो' गीत के गायक दुबेजी की कर्मभूमि वर्धा रही है और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के भवनों की ईंट-ईंट पर उनके श्रम बिंदुओं के चिन्ह मैंने पढ़े हैं । कोई भी पढ़ सकता है ।

जाने कितनी उद्दाम तितिक्षा और वाग्देवी के प्रति श्रद्धा है उनमें, कि 'कोणार्क' सौमित्र, नूपुर, चित्रकूट, गोकुल, के बाद भी हर वर्ष कुछ न कुछ नया - और वह भी सात्विक उदात्त साहित्य देते ही जा रहे हैं ।

राष्ट्रभाषा, राष्ट्रमाता और सरस्वती देवी को समर्पित उनका तन - मन स्वस्थ रहकर इसी प्रकार अपना मुक्त हास्य बिखेरता रहेगा ।

कुलपति
जबलपुर विश्वविद्यालय

प्रभुदयाल अग्निहोत्री

रामेश्वरदयाल दुबे जी ने अपने जीवन में राष्ट्रभाषा की जो सेवा की है, वह अभूतपूर्व है । उनका जीवन एक प्रकार से उसी के लिये समर्पित रहा है । वस्तुत: राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा आदि इतनी उन्नति कर सकी और उसका इतना विकास हो सका । इसका मुख्य श्रेय श्री दुबेजी को ही है । समिति की परीक्षाओं का उन्होंने जिस कुशलता तथा दूरदर्शिता से संचालन किया, सुचारु रूप से उन परीक्षाओं की व्यवस्था की, वास्तव में वह विस्मयजनक है । दुबेजी ने जो कार्य किया, वह एक व्यक्ति नहीं, संस्था ही कर सकती है ।

एक संस्था के प्रति समर्पित होकर भी दुबेजी ने अपने लेखक को निरंतर जीवित रखा । समयाभाव के कारण वे अधिक नहीं लिख पाये, लेकिन उन्होंने जो कुछ लिखा है, हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि है ।

दुबेजी अत्यन्त संवेदनशील, मिलनसार और मधुर स्वभाव के व्यक्ति हैं । वे जितने परिश्रमशील हैं, उतने ही कर्मठ व्यक्ति भी हैं । प्रलोभन उन्हें डिगा नहीं पाते, कीर्ति की आकांक्षा उन्हें मार्ग च्युत नहीं कर पाती । उनसे मिलने के अवसर पर मैंने सदा यह अनुभव किया मानो अपने किसी बहुत ही प्रिय जन से मिल रहा हूँ ।

सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

यशपाल जैन

श्री दुबेजी ने कितना कुछ किया है, अब भी कर रहे हैं वह हमारे लिये प्रेरणादायक है । उन्होंने अपना सारा जीवन ज्ञान की तथा साहित्य की आराधना और साधना में लगा दिया । उनका कार्य ही हमारा दिशा - निर्देशक है ।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
स० प० विश्वविद्यालय, गुजरात

डॉ० शिवकुमार मिश्र

साहित्य देवता के प्रति श्री दुबेजी का समर्पित जीवन हमारे लिये एक आदर्श एवं प्रेरक रूप है । सागर के अन्तराल में पड़ी हुई अमूल्य रत्नराशि को क्या सभी लोग देख पाते हैं ? यदि नहीं, तो सागर की उस महत्वपूर्ण स्थिति में क्या कभी-अभाव आ सकता है ?

आर्यनगर — डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
कानपुर (उ० प्र०)

श्री दुबेजी गांधी की तपोभूमि के एक साधक हैं । उन्होंने बाल-साहित्य को अपनी अक्षय निधियाँ दी हैं । वे हर तरह मेरे प्रणम्य हैं, स्तुत्य हैं, अभिन्न हैं । उनके कृपा पत्र से मुझे बहुत बड़ा सम्बल मिलता है । जब वयोवृद्ध होकर भी वे किसी को जीने का इतना साहस दे सकते हैं तो वास्तव में वे कितना आत्मबल संजोये हुए हैं, सहज अनुमान किया जा सकता है । सच कहता हूँ, बड़ी प्रेरणा मिली है, उत्साह मिला है, संजीवनी भी मिली है, उनसे ।

विष्णुकांत पाण्डेय
५ – १० – ८४

श्री दुबेजी ने हिन्दी प्रचार के यज्ञ में अपने जीवन के सुनहले वर्ष समर्पित कर दिए हैं । यह देखकर हृदय आभार एवं कृतज्ञता से परिपूर्ण हो जाता है । उनकी तपस्या का फल हम भोग रहे हैं ।

निदेशक — डॉ० राधेश्याम अग्रवाल
ब्रज साहित्य-संस्कृति अकादमी, मथुरा

दुबेजी हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वानों में से एक हैं । आपका पूरा जीवन ही हिन्दी सेवार्थ समर्पित रहा है । वर्धा में हिन्दी-सेवा हेतु ही आपने अपने जीवन के ४० वर्ष व्यतीत किये हैं । महात्मा गांधी और हिन्दी के परम सेवी पुरुषोत्तमदास टंडन के सम्पर्क में आने के बाद आपने उनके आदर्शों पर चलते हुए हिन्दी के प्रचार में अखिल भारत का भ्रमण किया । हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आपका कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा ।

शकुन्तला सिरोठिया

व्यक्तिगत महत्व और लाभ का त्याग करते हुए श्री दुबेजी ने हिन्दी की जो सेवा की है, वह अविस्मरणीय है । चालीस वर्षों की दीर्घकालीन सेवा एक बार राजर्षि टंडन का स्मरण करा देती है ।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा

मदनगोपाल गुप्त
२४ – ३ – ७६

श्री रामेश्वरदयाल दुबे के प्रति मेरे मन में जो छवि बसी हुई है, वह एक सात्विकता प्रधान सेवापरायण व्यक्ति की है । अवश्य ही उनके व्यक्तित्व में महात्मा गाँधी की अमिट छाप है, जिनके सानिध्य में रहने का सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ ।

मुझ पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा दुबेजी के दो प्रकाशनों का "आप के बच्चे" और "बाल स्मारिका" । इन प्रकाशनों की छपाई, कागज, टाइप, सुन्दर चित्र और छोटे-छोटे सूत्रों द्वारा आकर्षक बनाने में जो कौशल प्रदर्शित किया गया है, उसे देखकर मेरी आँखें खुल गईं और मुझे ऐसा लगा कि बाल आन्दोलन के संचालन में आरम्भ से ही मुझे दुबेजी के सानिध्य और सहयोग का अवसर मिलता तो कितना अच्छा होता ।

मुझे आश्चर्य है कि उत्तर प्रदेश एवं केन्द्र के प्रौढ़ शिक्षा विभागों ने दुबेजी के कौशल एवं प्रावीण्य का उपयोग क्यों नहीं किया ?

श्री दुबेजी की जो बाल-साहित्य रचनायें हैं उनसे प्रकट होता है कि उन्होंने बालकों के मन की अच्छी परख की है और बच्चों में बच्चा बनकर ही उनके भाव व्यक्त किये हैं ।

श्री दुबेजी ने जो सेवा-कार्य किया है, अथवा साहित्य-निर्माण किया है, उसकी सुगन्ध सदैव महकती रहेगी और आनन्द प्रदान करती रहेगी ।

बाल शिक्षा विशेषज्ञ
बाल संघ, कानपुर

कृष्ण विनायक फड़के
१३ – ३ – ८१

श्री रामेश्वरदयाल दुबे एक विशिष्ट भाव-बोध के कवि हैं । पौराणिक सन्दर्भों और आत्म-संघर्षों के आधार पर उन्होंने जिन काव्यों का सृजन किया, उनमें उनके हृदय की उदारता और दृष्टिकोण की विशालता दृष्टिगत होती है । आपके काव्यों में जन-जीवन के संघर्षों के प्रति करुणा ही व्यंजित नहीं हुई, वरन् शोषण और दुर्दशा के विरुद्ध क्रांति का स्वर भी गूँजा है । उनका क्रान्तिराग

निर्माण युक्त है, ध्वंस का भैरवी नहीं । गांधीवादी चिन्तन, मानवतावादी सौंदर्यबोध और सम्पूर्ण मानवीय चेतना का साक्षात्कार उनके काव्यों में परिलक्षित होता है । वे पुरातत्व के आधुनिक कवि हैं ।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

डॉ० चक्रवर्ती

पं० दुबेजी के व्यक्तित्व को निकट से निरखने का अवसर तब मिला, जब उस समिति के हम दोनों सदस्य थे, जिसे महाराष्ट्र सरकार ने महाराष्ट्र की स्वैच्छिक संस्थाओं का अवलोकन कर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये बनाया था । सरल हृदय के सदा हँसमुख, राष्ट्रभाषा हिन्दी के एक सजग प्रहरी के रूप में मैंने उन्हें पाया । राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने अखिल भारत के स्तर पर जो प्रचार कार्य किया, पं० दुबेजी उस कार्य की रीढ़ रहे ।

आपका परीक्षा - विभाग एक आदर्श विभाग रहा । परीक्षाओं की पवित्रता को बनाये रखने में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया । पत्र - व्यवहार में वे कितने कुशल हैं — सब जानते हैं ।

दुबेजी का साहित्यकार रूप भी कम विलोमनीय नहीं है । हिन्दी साहित्य की उन्होंने विपुल सेवा की है, जो प्रशंसा की पात्र बनी है ।

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, धारवाड़

डॉ० चन्दूलाल दुबे

श्री रामेश्वरदयाल दुबे से अधिक मिलने का सौभाग्य तो मुझे नहीं मिला है, फिर भी मैं उनकी सहृदयता, समझदारी और साहित्यानुराग के प्रति आकर्षित रहा हूँ । उन्होंने अपना समग्र जीवन हिन्दी और हिन्दी साहित्य के माध्यम से देश - सेवा को ही समर्पित कर दिया है । आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो दीर्घकाल तक सेवा की है, वह स्तुत्य और अनुकरणीय है । जब - जब मैंने उनके व्यवितत्व का निरीक्षण किया है, तो मुझे लगा है कि उनका जीवन बाहर से अत्यन्त सादा होते हुए भी उनमें एक आंतरिक ज्योति अत्यन्त प्रकाशित है, जो उनके समीप रहने पर और उनसे वार्तालाप करने पर ही प्रस्फुटित होती है । हिन्दी प्रेमी एवं हिन्दी का अध्यापक होने के कारण समय - समय पर मैं उनकी कविताएँ पढ़ता रहता हूँ, परन्तु उनके द्वारा रचित 'कोणार्क' पढ़कर तो मैं उनका कायल हो गया हूँ । भाव और भाषा का ऐसा सुन्दर सामंजस्य मैंने

बहुत कम काव्यों में देखा है । मुझे पूरा विश्वास है कि उनकी रचनाएँ आने वाली पीढ़ी के लिये प्रेरक बल बनी रहेंगी ।

महादेव नगर, सूरत

डॉ० अरविन्द देसाई

'राष्ट्रभाषा' की राष्ट्रीय सेवा करके श्री दुबेजी ने जनमानस पर जो छाप अंकित की है, वह स्वर्णाक्षरों से इतिहास-पृष्ठों में निर्दिष्ट रहेगी । कुछ धन को जुटा लेना ही जीवन का चरम लक्ष्य नहीं है । आपने साहित्य-सर्जन, राष्ट्रभाषा की सेवा एवं अन्यान्य राष्ट्रीय कार्यों-द्वारा जो भी किया है, वह प्रशस्य एवं उल्लेखनीय है और सर्वदा रहेगा ।

राजनाथ पाण्डेय
२३-१-७७

मैं अध्यापक हूँ यह बात सही है, पर श्री दुबेजी अध्यापकों के भी अध्यापक हैं । यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है । जिस लगन से आप राष्ट्रभाषा के प्रचार द्वारा देश की सेवा करते रहे हैं, उससे सारा भारतवर्ष परिचित है ।

डॉ० अरविन्द जोशी
१-१-७३

हिन्दी के प्रति समर्पित व्यक्तित्व का ही दूसरा नाम है — प० रामेश्वर-दयाल दुबे । सन् १९३५ में पूज्य बापूजी एवं श्रद्धेय टंडन जी की भावना एवं प्रेरणा पाकर श्री दुबेजी समिति में आये और समिति के हो गये । देश के जाति-धर्म-भाषा के विभिन्न स्वरों को हिन्दी के एक राग में सजाने का जो मंगलमय कार्य इन्होंने हिन्दी के माध्यम से किया, उसको इतिहास सदा याद रखेगा ।

जलगाँव, महाराष्ट्र

प्रा० रा० वा० पाटील

जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से सेवा कार्य में संलग्न रहता है और मनसा, वाचा, कर्मणा सच्चे हृदय से सेवा करता है, उसके श्रम की कद्र विलम्ब से ही सही, की अवश्य जाती है । श्री दुबेजी ने भी सारा जीवन राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसार एवं साहित्य-सृजनादि में ही व्यतीत किया है ।

हिन्दी भाषा के ऐसे अनन्य सेवक एवं माँ सरस्वती के वरद पुत्र का सम्मान किसी व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु उसकी जीवन-साधना का सम्मान है।

हर्ष कुमार नायक

बिलीमोरा, गुजरात

३० – १ – ८४

श्री दुबेजी की तपस्या का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ। समिति के लिये आपने दधीचि की तरह आत्मदान दिया है। वह सेवा अपने आप में महत्वपूर्ण है।

डॉ० श्रीराम शर्मा

१२ – २ – ७५

श्री दुबेजी सफल साधक साहित्यकार हैं। उन्होंने जीवन में जो कुछ किया है अथवा जो कुछ लिखा है, वह श्रेष्ठ और सार्थक है। दुबेजी का आशीर्वाद पाकर मेरा लेखन धन्य हुआ है।

शंभुप्रसाद श्रीवास्तव

विरले मानव ही अपनी अन्तर आत्मा की आवाज पर आत्मचिन्तन एवं सतत प्रयास के द्वारा अपने जीवन को विकसित बनाया करते हैं। श्री दुबेजी इसी प्रक्रिया के द्वारा मानव से महामानव बने हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए आपने अपना जीवन समर्पित कर दिया है।

लगभग तीस वर्ष तक उनके निकटतम सम्पर्क में रहा हूँ। वे परीक्षामंत्री थे और मैं परीक्षा विभाग व्यवस्थापक। अपने काल में उन्होंने जो व्यवस्थायें प्रस्थापित की थीं वे लगभग यथावत चल रही हैं, कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

श्री दुबेजी के जीवन के विचित्र पहलू हैं। वे एक कुशल साहित्यकार तथा बालकों के अनन्य प्रेमी हैं। जीवन के उत्तारकाल में भी आप में युवकों जैसा उत्साह और साहित्य सृजन-शक्ति देखकर किसे सन्तोष और प्रसन्नता न होगी ?

देवीदास चौधरी

वर्तमान परीक्षामंत्री
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

एक कार्यकर्ता के नाते राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से मेरा सम्बन्ध ४३ वर्षों से रहा है । जब कभी समिति का कोई विषय छिड़ता है तो उसके प्रतिनिधि रूप से सिर्फ दुबेजी — सिर्फ रामेश्वरदयाल दुबे की ही आकृति सामने आ खड़ी होती है । यद्यपि दुबेजी अनेक वर्ष पूर्व समिति से अलग हो चुके हैं, पर आज भी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति दुबेजी के बिना समिति हो गई है । यह अत्युक्ति नहीं, ध्रुव सत्य है ।

वर्धा, महाराष्ट्र

बलदेव सिंह

परीक्षामंत्री श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी के साथ एक कार्यकर्ता के नाते ४१ वर्ष काम करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था । कार्य करने में पंडितजी ऐसे रत होते हैं कि न खुद आराम करते न दूसरे को आराम करने देते हैं । दिन हो, चाहे रात, काम पूरा ही होना चाहिये, यह उनकी धुन रहती है ।

उन ४१ वर्षों को कैसे भूल सकता हूँ । दुबेजी ने अपने स्नेह में ऐसा जकड़ा है कि ४५ वर्ष बीत गये फिर भी उनमें जरा सी भी शिथिलता नहीं आयी । अब तो वह स्नेह - सम्बन्ध आत्मीय - सम्बन्ध बन गया ।

माडलसे

कृ० पा० पाटिल

श्री पं० रामेश्वरदयाल दुबेजी के मार्गदर्शन में मैंने ३३ वर्ष काम किया है । मेरे सुलेखन पर प्रसन्न होकर सुलेखाचार्य का पद देकर मेरी हिन्दी - सेवा का जो आदर उन्होंने किया है, वह मेरे लिये गौरव की बात है । आदरणीय पंडित जी के नेतृत्व में समिति ने अनेक कठिनाइयों का मुकाबला करते हुए धैर्य एवं गर्व के साथ मस्तक ऊँचा किए हुए प्रगति की है । हिन्दी - प्रचार के विशाल क्षेत्र में अपनी मृदु वाणी से हजारों व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधकर राष्ट्र-भाषा हिन्दी की जो अनमोल सेवा की है एवं उसे दृढ़ता प्रदान की है वह सर्वोत्तम रही है । श्रद्धेय श्री दुबेजी की हिन्दी सेवा सदैव स्मरण रहेगी ।

वर्धा, महाराष्ट्र

सुदर्शन कुमार सिंह

पं० रामेश्वरदयाल दुबे ने मुझे कलम दी । साहित्य के दरवाजे से अन्दर धकेल दिया । मुझसे किताबें, ग्रन्थ लिखवा लिये । पंडित जी ने ही मुझे अह-सास दिया, प्रतीति दी । जो भी ग्रन्थ मैंने लिखे, सम्पादित किये, टिप्पणियाँ

तैयार कीं, उनका पूरा श्रेय केवल एक व्यक्ति को ही है, और वह हैं पंडित रामेश्वरदयाल दुबे ।

वर्धा, महाराष्ट्र — रतनलाल बाजोरिया

स्वनामधन्य पं० दुबेजी ने हिन्दी प्रचार के द्वारा राष्ट्र की जो सेवा की है, उसकी कोई मिसाल नहीं । राष्ट्रीय नवचेतना का बीज बोकर यद्यपि वे वैधानिक दृष्टि से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से मुक्त हो गये हैं, पर उनकी लगन में कोई कमी नहीं आई है । पं० ऋषीकेश शर्मा और श्री दुबेजी के आशीर्वाद से ही मैं निष्ठापूर्वक राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार आज तक करता आ रहा हूँ । दुबेजी का स्नेह पाकर मैं धन्य हुआ हूँ ।

खामगाँव — भँवरलाल सेवक

मेरे कथन में किसी को अतिशयोक्ति लग सकती है, पर मेरा मानना है कि राष्ट्रभाषा परिवार के सदस्य होने के नाते श्री दुबेजी ने जो त्याग किया है, उसे देखकर कोई भी व्यक्ति उन्हें 'महात्मा' ही कहेगा ।

राष्ट्रभाषा प्रेस, वर्धा — राजीव बुटे

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के परीक्षा मन्त्री श्री रामेश्वरदयाल दुबे ने हिन्दी की सेवा खूब की है । वे हिन्दी के विद्वान हैं, साहित्य - सर्जक हैं । हिन्दी सेवी प्रचारक, हिन्दी विस्तारक, न्याय - नीति विस्तारक समिति के स्तम्भ हैं । परिचित बन्धुजन तथा हिन्दी प्रेमियों के साथ इन पंक्तियों का लेखक श्री दुबेजी का वन्दन - अभिनन्दन करता है ।

सियाना, राजस्थान — कविरत्न वैद्य देवकरण सारस्वत

दुबेजी ने जाते - जाते पत्र में एक वाक्य लिखा है— "लगता है आपका ही रास्ता मुझे भी अपनाना चाहिए ।" इससे मुझे कुछ चिन्ता होने लगी । मुझ जैसे गोपालों की कई लकड़ियाँ आती जाती रहेंगी लेकिन वर्धा समिति का गोवर्धन उठाने वाली उँगली यदि डगमगाने लगी तो क्या होगा ?

बम्बई, २९–५–६५ — रामचन्द्र निमकर

समिति के माध्यम से दुबेजी ने राष्ट्रभाषा की ४० वर्षों से ऊपर जो सेवा की है, वह बेजोड़ है। आपकी निस्वार्थ तथा बेजोड़ सेवा से ही समिति इतनी प्रगति कर सकी। यह समिति दुबेजी का चिरंतन स्मारक है, ऐसा मैं मानता हूँ।

बम्बई

दा० गो० मुले

कच्छ प्रदेश में आकर इतने कम समय में श्री दुबेजी ने सौजन्य और प्रेम हम सबको जताया, उसको हम उनके हृदय के औदार्य का प्रतीक मानते हैं। हमारे लिये दुबेजी जैसे विद्वान् एवं मधुर व्यक्ति का आगमन एक आनंद का अवसर बन गया था।

भुज कच्छ

प्रेमजी भवानजी ठक्कर

आज से ३३ वर्ष पूर्व राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित कोविद परीक्षा की मैं एक सामान्य परीक्षार्थिनी थी। परीक्षा संबंधी एक कठिनाई मेरे सामने पैदा हुई। उसे हल कराने के लिये मैं अमरावती से वर्धा पहुँची। सहमते हुए मैं परीक्षामंत्री श्री दुबेजी से मिली। उनकी सादगी, ममता भरा व्यवहार और सहज भाव से सहायता करने की वृति देखकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुई। उन्होंने हमारी समस्या हल करा दी, इतना ही नहीं, समिति के अतिथि भवन में ठहरने की व्यवस्था कर मधुर आतिथ्य भी दिया। परीक्षार्थियों के प्रति इतनी ममता रखने वाले परीक्षामंत्री को कैसे भुलाया जा सकता है।

अमरावती, महाराष्ट्र

कु० मधुकांता मेहता

सहज सरल प्रांजल भाषा में जीवन को प्रेरणा देने वाले चरित्र-निर्माण हेतु लेख लिखने वाले साहित्यकारों के बारे में यदि मुझसे कोई पूछे, तो अविलम्ब श्री रामेश्वरदयाल दुबे का नाम लूँगा। जीवन की समस्याओं एवं जीवन के गुणों को उदाहरण सहित सुलझाते-समझाते समय श्री दुबेजी की लेखनी के साथ पाठक तादात्म्य स्थापित कर लेता है। मैं 'जैन जगत' में वर्षों से आपके लेख प्रकाशित कर रहा हूँ।

श्री दुबेजी गांधीवादी विचाधारा के तपे-तपाये चरित्रनिष्ठ व्यक्ति हैं, जिनके लेखन में उनकी तपस्या बोलती है और उनका अनुभव मुखर होता है।

संपादक, 'जन जगत'

बम्बई

चन्दनमल

१५-१०-९०

पं० दुबेजी मात्र परीक्षामंत्री नहीं, विद्यार्थियों के लिए प्रेणा स्रोत भी रहे हैं। उनके ही मार्ग दर्शन में, सन् १९७८ में मैंने राष्ट्रभाषा आचार्य उपाधि प्राप्त की। उनका बार बार प्रोत्साहन न मिलता तो इस लाभ से वंचित रह जाता।

बरोडा

केशन मु लाण्डगे

श्री रामेश्वरदयाल दुबेजी की हिन्दी साधना समस्त हिन्दी जगत के लिए प्रेरणा का स्रोत है, उनके द्वारा रचित यह गीत— जो अब 'हिन्दी का गीत' बन गया है, हर भारतीय मन को छू सकेगा और भिगोता रहेगा।

जापान

एक पूर्व छात्र

हिन्दी सीखने की इच्छा रखने वाले जापानी विद्यार्थियों के प्रति श्री रामेश्वर दयाल दुबे का स्नेह विशेष रहा है। लगभग दो वर्ष तक उनके सम्पर्क से वर्धा में रहकर उनका स्नेह पाया था। उसी से खिचकर मैं उनसे मिलने लखनऊ पहुँचा था।

श्री दुबेजी ने ४० वर्ष तक हिन्दी का प्रचार तो किया ही है उसके साथ ही उन्होंने जापान-भारत मित्रता के लिए कई जापानी छात्रों को हिन्दी सिखाने का काम किया है। मै भी हिन्दी भाषा के द्वारा जापान-भारत मित्रता को बढ़ाने का काम करूँगा।

जापान

शिचिरो सौमा

मेरे श्रेष्ठ ज्येष्ठ, पूज्य श्री दुबेजी मेरे लिए प्रणम्य हैं। वन्दनीय हैं। वे एक सधे काव्य-साधक, कुशल नाटककार, व्यसनी लेखक, मौलिक अनुवादक, प्रवीण पत्रकार, हिन्दी-हितैषी, अपने विशाल हृदय की प्रभा को शिष्य में उतार देने वाले शिक्षक, अपराध को क्षमा करके आत्म तथा परमात्म-बोध करा देने वाले परीक्षा मंत्री तथा अपने नियमों पर अडिग रहने वाले प्रशासक ही नहीं है, इन सबसे बढ़कर वे एक अच्छे आदमी हैं। हमारे-उनके परिचय के १४ वर्ष बीत गये हैं, इतने दिनों में उनके शताधिक पत्र हमारे घर पर आ चुके हैं, उनमें से कोई भी तो ऐसा पत्र नहीं है, जिसमें उन्होंने परिवार के प्रत्येक सदस्य के अलग-अलग समाचार न पूछे हों। इस युग में ऐसे शुभ-चिंतक ढूंढे नहीं मिलते हैं। उन्हें साधुवाद।

मधु-निवास
सत्यप्रेमी नगर, बाराबंकी

(श्रीमती) कान्ति शर्मा

श्री दुबे जी की रचनाएँ

प्रकाशित साहित्य–

काव्य

१– कोणार्क २– सौमित्र ३– नूपुर ४– चित्रकूट
५– निःश्वास ६– अबोल के बोल ७– पंच प्रभा
८– माटी की महक ९– सप्त किरण १०– बैठे ठाले

नाटक

१– अगस्त्य २– साँची के स्वर ३– ऋतु चक्र
४– सम्राट बहादुरशाह जफर

एकांकी

१– सप्तपर्ण २– नर्मदा

कहानी

१– बात तो थी २– भारत की प्रणय कथाएँ

जीवनी

१– महात्मा गांधी पुरस्कार प्राप्तकर्ता २– बड़े जब छोटे थे
३– भारत के रत्न

हास्य

१– आलूचना २– पिकनिक

पद्यानुवाद

१– मधुकरी २– तिरुक्कुरल ३– भ्रमर गीतलु
४– सुमति शतक ५– धम्मपद शतक ६– वेमना शतक

सम्पादित

१– गाँधी आश्रम प्रार्थना २– रहीम के दोहे
३– मुहावरे - कहावतें ४– श्री राम कथा

गांधी - साहित्य

१– बापू की बातें   २– जीवन की बूंदें   ३– गांधी जीवन झलक
४– गांधी जीवन दर्शन

अन्य - कृतियाँ

१– धर्म अनेक हम सब एक   २– अंधविश्वासों की आँधी
३– श्रम की कथाएँ   ४– दक्षिण दर्शन   ५– सर्वमान्य हिन्दी
६– भाषा भगिनी (नाटिका)   ७– स्वर्णांकिता (राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति का इतिहास)

अप्रकाशित साहित्य -

१– भारत के बाहर भारत   २– मराठी सन्त पद शतक
३– गुरुवाणी शतक   ४– महावीर शतक   ५– विविध रत्न-शतक   ६– हिन्दी शतक   ७– मधु गीत   ८– बेलूर
९– बाल कविता संग्रह   १०– 'क्यों' माला (दो संग्रह)

विशेष -

अन्य कई पुस्तकें अधूरी और अव्यवस्थित पड़ी हैं। जिनको पूरी तथा व्यवस्थित करने के लिए श्री दुबेजी प्रयत्नशील हैं।

त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु'
मधु - निवास
सत्यप्रेमी नगर, बाराबंकी (उ०प्र०)

सम्मान

१ तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन (दिल्ली १९८३) में
महादेवी वर्मा के हाथों माँ सरस्वती की प्रतिमा के साथ सम्मान

२ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (१९८६) के द्वारा
'साहित्य महोपाध्याय' उपाधि प्राप्त

३ उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ (१९७६) द्वारा
(१) 'नूपुर' खंड काव्य पर 'निराला पुरस्कार'
(२) 'तिरुक्कुरल' अनुवाद पर पुरस्कार

४ उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा
'चित्रकूट' खंडकाव्य पर पुरस्कार

५ मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल (१९६९) में
'हिन्दी गीत' के लेखक के रूप में सम्मानित

६ भारतीय बाल कल्याण संस्थान, कानपुर से
'देवीप्रसाद तिवारी स्मृति पुरस्कार'

७ श्री पर्व लखनऊ (१९८५) 'काव्य श्री' उपाधि

८ विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर (१९८६) सम्मान

९ विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर (१९८७) सम्मान

१० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा स्वर्णजयन्ती (१९८७) सम्मान

११ बाल साहित्य संस्थान, लखनऊ (१९८८) सम्मान

१२ केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा रजत जयन्ती समापन समारोह (१९९१) में उपराष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा 'हिन्दी गीत' के लेखक के रूप में सम्मानित।

१३ अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ के रजत जयन्ती समारोह (१९९२) में उपराष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा द्वारा हिन्दी - सेवा के लिए सम्मानित।

१४ उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से मुख्यमंत्री श्री कल्याण सिंह द्वारा नव घोषित 'बाल साहित्य भारती पुरस्कार' से सम्मानित।

परिशिष्ट

आर्थिक सहयोगी

नाम	पता	रुपया
श्रीमती कान्ति शर्मा	मधु - निवास, बाराबंकी	५११ रु०
श्री द्वारकादास वेद	मंत्री, रा० भा० प्र० समिति, वर्धा	५०१ रु०
श्री गिरधारी लाल शराफ	शराफ सदन, अहमदाबाद	५०० रु०
श्रीमती सरला राका	धनतोली, नागपुर	५०० रु०
श्री एम० के० वेलायुधन	त्रिवेंद्रम, केरल	२५१ रु०
श्रीमती शांती खन्ना	लखनऊ	२२० रु०
श्री राम अवतार सिंग	हॉलैण्ड	२०१ रु०
श्री रघुनाथ भट्ट	प्रिंसिपल, देहगाम	२०० रु०
श्री कृ० पा० पाटील	पाडलसे, महाराष्ट्र	१२५ रु०
श्री एन० पाण्डेय	गुड़गाँव, हरियाणा	१०१ रु०
श्री राम अवधेश त्रिपाठी	अहमदाबाद	१०१ रु०
डॉ० अरविन्द देसाई	सूरत, गुजरात	१०१ रु०
डॉ० राधेश्याम अग्रवाल	घीया मंडी, मथुरा	१०१ रु०
श्री उद्धव मेश्राम	वर्धा	१०१ रु०
डॉ० गिरिजाशंकर त्रिवेदी	सम्पादक 'नवनीत'	१०१ रु०
श्रीमती विमल टंडन	बेंगलोर	१०१ रु०
श्री रामकृष्ण बजाज	बम्बई	१०१ रु०
श्री लक्ष्मीदत्त पंडित	राजुला सिटी, गुजरात	१०१ रु०
श्री डॉ० सोमनाथ राव	हैदराबाद	१०१ रु०
श्री मंत्री विदर्भ रा० भा० प्र० समिति	नागपुर	१०१ रु०
श्री मंत्री, हैदराबाद हिन्दी प्र० सभा	हैदराबाद	१०१ रु०
श्री रघुवीर शरण दिवाकर	रामपुर, उ० प्र०	१०१ रु०
श्री एन० नागप्पा	बेंगलोर	१०१ रु०
श्री कल्पकम	दुबई	१०१ रु०
श्री मंत्री, महाराष्ट्र रा० प्र० समिति	पुणें	१०१ रु०
श्री देवजी मल पानाचन्द बरेड	अहमदाबाद	१०१ रु०
श्री बालकृष्ण जी	महू, म० प्र०	१०१ रु०
श्री नरसिंहनन्द शर्मा	जगन्नाथ पुरी	१०१ रु०
श्री बलदेवराज 'शान्त'	मोहना, हरियाणा	१०१ रु०

श्री सतीश चन्द्र	गाजियाबाद, उ० प्र०	१०१ रु०
श्री कुमारी मेहता	अमरावती, महाराष्ट्र	१०१ रु०
श्री जयसिह राजपूत	अहमदाबाद	१०१ रु०
श्रीमती शान्ताबाई	बेंगलोर	१०१ रु०
श्री पुरुषोत्तम दौलत राव बुटे	यवतमाल	१०१ रु०
श्री मंत्री, द० भा० हिंदी प्र० सभा	मद्रास	१०१ रु०
श्री उमाशंकर शुक्ल, पत्रकार	वर्धा	१०१ रु०
श्री कृष्णवीर सिंह चौहान	वर्धा	१०१ रु०
श्रीमती रमा बहन रुइया	वर्धा	१०१ रु०
श्रीमती मदालसा बहन	वर्धा	१०१ रु०
श्री डॉ० रामकुमार गुप्त	अहमदाबाद	१०१ रु०
श्रीमती सावित्री देवी चौहान	वर्धा	१०१ रु०
श्री सुशील कुमार शर्मा	लखपेड़ा बाग, बाराबंकी	५१ रु०
श्री भूपसिंह	नई दिल्ली	५१ रु०
श्री शालिग्राम शर्मा	महानगर लखनऊ	५१ रु०
श्री डॉ० डी० शंकर	हैदराबाद	५१ रु०
श्री रामानन्द सिन्हा	जोरहट, असम	५१ रु०
श्री भँवरलाल सेवक	खामगाँव, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री सुदर्शन कुमार शाह	वर्धा	५१ रु०
श्रीमती स्नेह प्रभा शाह	वर्धा	५१ रु०
श्री बैतुले जी	नागपुर	५१ रु०
श्री शिवशंकर मिश्र	निराला नगर, लखनऊ	५१ रु०
श्री तोताराम पंकज	नई दिल्ली	५१ रु०
श्रीमती माया देवी शागा	औरंगाबाद, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री डॉ० रमेशचन्द्र मेहरा	औरंगाबाद, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री जयन्त स० लालसरे	औरंगाबाद, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री डॉ० नन्द किशोर शागा	औरंगाबाद, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री वेरेनेस बैस्टीयन	पुसद, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री वैद्य देवकरण सारस्वत	जालोर, राजस्थान	५१ रु०
श्री सु० ल० पाटील	भुसावल, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री केशव० मु० लाण्डगे	वरोडा, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री कर्णपाल भारद्वाज	शहाद, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री डॉ० मो० दि० पराड़कर	बम्बई	५१ रु०

श्री सुरेन्द्र राज गौर	भुज कच्छ, गुजरात	५१ रु०
श्री मनसुख लाल बदामिया	जामनगर, गुजरात	५१ रु०
श्री जयेन्द्र प्रसाद जुगुल प्रसाद मिश्र	बड़ौदा	५१ रु०
श्री शंकर राव लोंढे	अमरावती, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री रमेश चन्द्र भट्ट	डीग, भरतपुर, राजस्थान	५१ रु०
श्री पवन कुमार मिश्र	कानपुर, उ० प्र०	५१ रु०
श्री उम्मरजे	सोलापुर, महाराष्ट्र	५१ रु०
श्री डॉ० शीलम	हैदराबाद	५१ रु०
श्री देवीदास चौधरी	वर्धा	५१ रु०
श्री सारंगमठ	—	५१ रु०
श्री मनोहर आर्टिस्ट	नागपुर	५१ रु०
श्री महेन्द्र शर्मा	वर्धा	५१ रु०
श्री कान्तिलाल शुक्ल	अहमदाबाद	५१ रु०
श्री नरदेव विद्यालंकार	दक्षिण अफ्रीका	
श्री बाल गणेश	,, ,,	
डॉ० आर० हेमराज	,, ,,	
श्री के० पट्टुन दीन	,, ,,	
श्री बैजनाथ	,, ,,	
श्री हरिश्चन्द्र आर्य	,, ,,	
श्री हरी शंकर	,, ,,	
श्री RAMIE LUTCHMAN	,, ,,	सबका एक साथ १४९१ रु०
	कुल प्राप्त रुपये	९४५९ रु०